महाकविकालिदास विरचितम्

मेघदूतम्

(पूर्वमेघः)

[प्रथम भाग]

सम्पादक एवं व्याख्याकार—
प्रो० शिवबालक द्विवेदी
एम० ए० (गोल्डमेडलिष्ट) शास्त्री
संस्कृत विभाग
डी० ए० वी० कालेज, कानपुर
एवम्
प्रो० सुशीला पाण्डेय
एम० ए०
संस्कृत विभाग
श्रीनारायण गर्ल्स डिग्री कालेज, उन्नाव



ग्रन्थम
रामबाग, कानपुर

प्रकाशक
ग्रन्थम, रामबाग, कानपुर–२०८०१२



संस्करण
१९७६

मूल्य
५.५०



मुद्रक
आराधना प्रेस, कानपुर–२०८०१२
उदय प्रिंटिंग प्रेस, कानपुर–१

समर्पण

देववाणी के मनीषी

डॉ० शिवशेखर मिश्र

अध्यक्ष—संस्कृत विभाग

लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

को

"इदं कविभ्यः पूर्वेभ्यो नमोवाकं प्रशास्महे ।
विन्देम देवतां वाचममृतामात्मनः कलाम् ॥"

के

सहज-भाव

से

सादर

—लेखक

प्रस्तावना

संस्कृत भाषा हमारे देश की प्राचीनतम भाषा है। हमारा पुरातन सर्वविधवैभव इसी भाषा में विद्यमान है। यह भाषा अत्यन्त पूर्ण एवं सशक्त है। यह युग-युगों से प्रवाहित होने वाली भारतीयचिन्तन की वह अक्षुण्ण धारा है जो कि अनेक संक्रमण-व्युत्क्रमणों को पार करती हुई आज भी वहती चली जा रही है। भारतीय संस्कृति, धर्म, दर्शन, विज्ञान आदि का तात्त्विक अनुशीलन करने के लिए इस भाषा का अध्ययन हम भारतीयों के लिए सुतराम् अपेक्षित है। महाकवि कालिदास भारत के ही नहीं अपितु विश्व के श्रेष्ठ कविरत्न हैं। उनकी कृतियों में मानवजीवन का कलात्मक ढंग से संयोजन हुआ है। यही कारण है कि उनकी कृतियों का रसास्वादन करते हुये सरस सुधीजन तृप्ति का अनुभव नहीं करते और उनकी कृतियों से नितनूतन आनन्द की अनुभूति करते हैं। आचार्य प्रवर उद्भट का कथन सर्वथा समीचीन है—

"माहिषं दधि सशर्करं पयः कालिदासकविता नवं वयः।
शारदेन्दुरबला च कोमला स्वर्गशेषमुपभुञ्जते जनाः॥"

महाकवि कालिदास का मेघदूत गीतिकाव्य संस्कृतजगत् में सर्वश्रेष्ठ स्थान रखता है। यही कारण है कि मेघदूत प्रायः सभी विश्वविद्यालयों के संस्कृत के पाठ्यक्रमों में अनिवार्य रूप में रक्खा गया है। यद्यपि इस ग्रन्थ पर अनेक टीकायें हुई हैं फिर भी प्राध्यापकों एवं विद्यार्थियों के अनुरोध से नातिविस्तृत तथा नातिसंक्षिप्त टीका लिखने के आग्रह से हम लोग इस मार्ग में प्रवृत्त हुये।

मेघदूत की इस व्याख्या में प्रत्येक श्लोक का अन्वय्, पदच्छेद, अन्वय, शब्दार्थ, भाषानुवाद, संस्कृतव्याख्या, पदव्याख्या, व्याकरण, समास, कोष, व्युत्पत्ति, गुण, रीति, रस, अलङ्कार, छन्द के साथ ही साथ काव्यशास्त्रीय सौन्दर्य एव ध्वनितत्व के चमत्कार को दिखलाया गया है। भूमिकाभाग में संस्कृत भाषा का महत्त्व, संस्कृतकाव्य का उद्भव एव विकास, काव्य का प्रयोजन, स्वरूप एवं लक्षण, काव्यभेद, महाकाव्य का लक्षण, गीतिकाव्य तथा खण्डकाव्य की मीमांसा, गीतिकाव्य का उद्भव एवं विकास, महाकवि कालिदास

का जीवनवृत्त एवं स्थितिकाल, मेघदूत का साहित्यिक मूल्याङ्कन आदि विषयों की विस्तारपूर्वक समीक्षा की गई है। परिशिष्ट भाग में मेघदूत में आये हुये भौगोलिक स्थानों की मीमांसा, महाकवि कालिदास विषयक प्रशस्तियाँ एवं सुभाषित पदों को प्रस्तुत किया गया है। इस प्रकार इस व्याख्या को छात्रों के लिये पूर्णरूप से उपयोगी बनाने के लिये प्रयत्न किया गया है। छात्रजनों के साथ ही साथ अन्य संस्कृतानुरागी भी इससे लाभान्वित हो सकेंगे —ऐसी आशा है। प्रयत्न करने पर भी इस व्याख्या में यदि त्रुटि रह गई है तो उसके लिये कहना ही पड़ता है—

'दुर्मोषो दोषसङ्घः क्षणमपि न दृढा मानुषी शेमुषीयम्
प्रूफोऽसौ द्विस्त्रिवारं नयनविषयतां यातवान् नैव शुद्धः।
विद्वांसो दोषदृष्टौ दधति च नितरां तुष्टिपुष्टिं तदावाम्
जोषं जोषं विदोषं कलयितुमखिलं जोषमेवानतौ स्वः॥'

प्रस्तुत कृति के प्रणयन में जिन विद्वानों के ग्रन्थों से सहायता ली गई है लेखक उनके प्रति चिर ऋणी रहेंगे। इस सन्दर्भ में लेखकीय कार्य के प्रेरक आदरणीय विद्वद्वर डा० हरिदत्त शास्त्री, प्रो० राजदेव मिश्र, डा० वासुदेव कृष्ण चतुर्वेदी, प्रो० कृष्णकुमार अवस्थी, डा० विजयलक्ष्मी त्रिवेदी, प्रो० कमला श्रीवास्तव प्रभृति संस्कृत मनीषी सर्वथा श्रद्धा के भाजन है जिन्होंने लेखक को सदैव प्रोत्साहित किया है। यहाँ यह भी स्मरणीय है कि प्रो० जगदीश प्रसाद निगम, डा० शारदा सेठ, प्रो० सत्यनारायण त्रिवेदी, प्रो० रिपुसूदन लाल शास्त्री, श्री भूपेन्द्र प्रसाद पाण्डेय प्रभृति मित्रजनों का हार्दिक अनुराग हम लेखकों को सदैव मिलता रहा है। इसके लिये ये लोग धन्यवाद के भाजन हैं। अन्त में हम ग्रन्थम् परिवार के लोगों को अनेकशः धन्यवाद देते हैं जिन्होंने इस पुस्तक को शीघ्र ही प्रकाशित करने की व्यवस्था की है। विद्वानों से विनम्र निवेदन है कि वे इस व्याख्या में रही त्रुटियों के विषय में हमें इङ्गित करने की कृपा करें ताकि उन्हें दूर किया जा सके।

विद्वदाश्रवौ

श्रीकृष्णजन्माष्टमी वि० सं० २०३३। लेखकौ

विषय-सूची

उदाहार

संस्कृत काव्य का उद्भव एवं विकास

'संस्कृतं नाम दैवीवागन्वाख्याता महर्षिभिः ।'

संस्कृत भाषा विश्व की सभी भाषाओं से श्रेष्ठ, सम्पन्न एवं प्राचीनतम है। इसका वाङ्मय अपने अद्वितीय वैशिष्ट्य के द्वारा आज भी महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। भारतीय संस्कृति से अनुप्राणित सुरभारती–मन्दाकिनी की पियूषधारा में अवगाहन कर हृदय को परमविश्रान्ति प्राप्त होती है। यह युगों-युगों से प्रवाहित होने वाली भारतीय चिन्तन की वह अक्षुण्ण धारा है जो कि अनेक संक्रमण-व्युत्क्रमणों को पार करती हुयी आज भी अपने अनवद्य वपु के द्वारा बहती चली जा रही है। भारत तथा भारतीयता से स्नेह रखने वाले सुधीजन जिसे सम्मान की दृष्टि से देखते हुए जिसके उपदेशामृत को पीकर तृप्ति का अनुभव नहीं करते हैं, उस विश्वविश्रुत सुरभारती की उपासना से ही भारतीय संस्कृति धर्म, दर्शन आदि का तात्त्विक अनुशीलन किया जा सकता है। भारत की समस्त मौलिक निधि संस्कृत में ही निहित है। भारतीय दर्शन, धर्मशास्त्र, विधिशास्त्र, अर्थशास्त्र, कामशास्त्र, स्थापत्य, गणित, फलित, ज्योतिष, आयुर्वेद, विज्ञान, मन्त्र तन्त्र, यन्त्र, संगीतशास्त्र, समाजशास्त्र, इतिहास, पुराण, काव्यशास्त्र, नाट्यशास्त्र, कलायें आदि संस्कृत में ही हैं। अतः भारत के मौलिक रूप को देखने के लिए संस्कृत का ज्ञान अत्यावश्यक है। 'साहित्य समाज का दर्पण है'—इस सदुक्ति को लेकर संस्कृत साहित्य का अध्ययन वस्तुसापेक्ष ही होगा। संस्कृत काव्य के अनुशीलन से पूर्व यह जिज्ञासा स्वभावतः होती है कि इसके उद्भव एवं विकास का मार्ग

ज्या रहा है ? अतः उसके उद्भव और विकास की चर्चा करना यहाँ अप्रासङ्गिक न होगा ।

यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता है कि भारतीय काव्यधारा की सृष्टि कब और किस प्रकार हुई ? विद्वान् इस तथ्य की अनेक प्रकार से मीमांसा करते हैं, परन्तु प्रामाणिक पहलुओं के अभाव में उक्त प्रश्न के सन्दर्भ में अन्तिम निर्णय लेना कठिन है । फिर भी इतना तो कहा ही जा सकता है कि भारतीय काव्यधारा की सृष्टि सहस्रों वर्ष पूर्व हो चुकी थी जो आज भी अपने नवीन स्वरूप को लेकर प्रवाहित होती चली आ रही है । किसी विशेष निश्चितनिमित्त को काव्य में कारण के रूप में दे सकना असम्भव है, पर सामान्य रूप से हम यह कह सकते हैं कि मानवीय भावनाओं का प्रतिनिधित्व करने के कारण काव्यसृष्टि मानव-जाति की सृष्टि के साथ ही हुयी है । कारण यह है कि काव्य में मानवीय भावनाओं की प्रधानता है । इसीलिए काव्य को सहृदयसंवेद्य, सहृदयाह्लादक आदि कहा जाता है । मानव-मानस को जब सहसा सुख, दुःख, क्रोध, करुणा, भय, विभ्रम, विलास आदि की मार्मिक अनुभूति होती है तो सहसा ही वह उस अनुभूति से अनुस्यूत होकर उन भावों को प्रकट करना चाहता है । जब वह भावसम्पृक्त मानस होकर झूमने लगता है तो उसी दशा में उसके बहिर्निर्गत छलकते हुए भाव काव्यधारा के रूप में प्रवाहित होने लगते हैं । इस प्रकार जब आनन्दातिरेक से मन आप्यायित हो जाता है तो वह रस रूप में कविता के स्वरूप को लेकर लोक के समक्ष प्रकट होता है । लौकिक संस्कृत काव्य के जन्म के सन्दर्भ में उपर्युक्त तथ्य ही कारण रूप में रहता है । लौकिक संस्कृत के आदि काव्य रामायण के प्रणयन में यही भावात्मकता मूल में है । एक समय जब महर्षि वाल्मीकि माध्यन्दिन सवन के लिए तमसा नामक नदी पर पहुँचते हैं तो वहाँ व्याध के द्वारा मारे गये क्रौञ्चयुगल में से एक को विलाप करते हुए देखते हैं । उसे देखकर सहसा ही उनके मानसिक भाव निकल पड़ते हैं—

"मा निषाद ! प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः ।
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम् ॥"

(अर्थात् निषाद ! तू अधिक समय तक प्रतिष्ठा को नहीं प्राप्त कर सकेगा जो तूने क्रौञ्चयुगल में से काम से मोहित एक को मार डाला हैं ।)

ये वस्तुतः वाल्मीकि के मानस के उद्गार हैं जो कि उनके शोकाकुल हृदय से सहसा निकल पड़ते हैं। महर्षि वाल्मीकि का यह शोक ही कविता है जो कि उनके हृदय का स्पर्श कर उन्हें कुछ बोलने के लिए विवश कर देता है। यह उनकी रागात्मिका वृत्ति ही है जो उन्हें काव्य व्यापार में प्रवृत्त करती है। उनका यह अनिर्वचनीय शोक ही श्लोक (काव्य) का रूप धारण कर लेता है :--

"सोऽनुव्याहरणाद् भूयः शोकः श्लोकत्वमागतः ।"

और वे सोचने लगते हैं :--

पादबद्धोऽक्षरसमः तन्त्रीलयसमन्वितः ।
शोकार्त्तस्य प्रवृत्तो मे श्लोको भवतु नान्यथा ॥

यहाँ यह विशेषता है कि चाहे सुख का भाव हो अथवा दुःख का, निर्वेद अथवा ग्लानि का, परन्तु ये सभी भाव आनन्द देने वाले होते हैं। यहाँ यह आशङ्का की जा सकती है कि करुणादि रस के दुःखमय होने पर उनमें आनन्दत्व कैसे रह सकता है ? इसका समाधान करते हुए कविराज आचार्य विश्वनाथ जी कहते हैं-

करुणादावपि रसे जायते यत्परं सुखम् ।
सचेतसामनुभवः प्रमाणं तत्र केवलम् ॥

(अर्थात् करुण आदि रसों में भी जो परमानन्द प्राप्त होता है, उसमे केवल सहृदयों का अनुभव ही प्रमाण है ।)

काव्य की सम्यक् अनुभूति केवल सहृदय को ही होती है। सहृदयता से रहित हृदय काव्यमार्ग में प्रवृत्त नहीं हो सकता है। अतएव कहा भी है--

"सवासनानां सभ्यानां रसस्यास्वादनं भवेत् ।
निर्वासनास्तु रङ्गान्तः काष्ठकुड्याश्मसन्निभाः ।।"

(अर्थात् वासना से युक्त सहृदय रसिकों को ही रस का आस्वादन होता है। वासना से रहित पुरुष तो नाट्यशाला में काष्ठ, दीवार तथा पत्थर के समान जड़वत् पड़े रहते हैं।)

भारतीय विचारधारा काव्य को आनन्दस्वरूप मानती है। आनन्दस्वरूप होने के कारण ही रस को ब्रह्म कहा गया है। उसी को वेदान्ती सच्चिदानन्द कहते हैं। इसी आनन्द की प्राप्ति करने के लिए काव्य का विकास हुआ है। प्रसिद्ध संस्कृत काव्यालोचक आचार्य मम्मट कविता को ह्लादैकमयी कहकर उसे नवरसरुचिरा बतलाते हैं।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि काव्य की सृष्टि में भावना का महत्त्वपूर्ण स्थान है। मानव की सुख-दुःखात्मक अनुभूति ही कविता का रूप धारण कर लेती है। इस तथ्य के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि कविता का मानव-जीवन के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। मानव जीवन से उनके भावों को पृथक् नहीं किया जा सकता है। अतः मानव जाति के उद्भव के साथ ही साथ कविता का उद्भव स्वीकार किया जा सकता है तथा मानव जाति के विकास के साथ ही साथ कविता का भी विकास होता आया है। संस्कृत साहित्य के विकास क्रम को हम निम्नलिखित रूप से विभाजित कर सकते हैं :—

(१) वैदिक काल
(२) वेदोत्तर काल या आर्ष काव्यकाल
(३) महाभारत काल या पुराण काल
(४) कालिदास के पूर्व का काल
(५) कालिदासोत्तर काल

(१) वैदिक काल—वेदों में अत्युत्कृष्ट कोटि का काव्यत्व मिलता है। वैदिक साहित्य के विषय में यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता है कि यह साहित्य कब निर्मित हुआ ? वैदिककाल के प्रारम्भ के विषय में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। इस काल का आरम्भ संहिता साहित्य से स्वीकार किया

जाता है तथा ऋग्वेद संहिता को सर्वप्राचीन माना जाता है। समस्त शास्त्रों के उद्भव स्थान वेद हैं—भारतीय मनीषियों की ऐसी अवधारणा है। इस प्रकार काव्य का भी उद्भव वेद से ही माना जाता है। वैदिक साहित्य में हमें उच्चकोटि की काव्यशास्त्रीय विधाओं के दर्शन होते हैं। वेद में देवस्तुतियों के अतिरिक्त तत्कालीन राजाओं की कीर्ति का भी गायन हुआ है। संहिता तथा ब्राह्मण ग्रन्थों में अनेक यशस्वी राजाओं की कथायें आती हैं। रसराज शृंगार तथा उपमादि अलंकार इस साहित्य में अपनी छटा को यत्र-तत्र छिटका रहे हैं। देवी उषा के वर्णनों में हमें जो सरसता, स्वाभाविकता, मधुरता, रमणीयता एवं कमनीयता मिलती है, वह सहसा ही हृदय को चूम लेती है। वैदिक ऋचाओं की नैसर्गिक, रागात्मिक एवं कामनीयक सहज वृत्ति पाठकों के चित्त को बिना चुराये नहीं रहती। वैदिक गीतिविधान की सरस पियूषधारा मानव-मानसमराल को मुखरित कर देती है। उदाहरण के लिए देखें—

"सूर्यो देवीमुषसं रोचमानां मर्यो न योषामभ्येति पश्चात्।"

(अर्थात् कान्तियुक्त स्वरूपवती) देवी उषा का सूर्य उसी प्रकार अनुगमन करते हैं (उसके पीछे-पीछे चलते हैं) जिस प्रकार मनुष्य स्त्री के पीछे-पीछे चलते हैं (स्त्री का अनुगमन करते हैं।)

वेद में उषा देवी की तुलना एक सुन्दर नर्तकी अथवा प्रेमी के लिए वक्षःस्थल प्रदर्शित करने वाली कुमारी से की है। इस प्रकार वेद में अनेक रसमयी उक्तियों के दर्शन होते हैं। काव्यशास्त्रीय अनेक तत्त्वों का सुन्दर समन्वय हमें वैदिक साहित्य में मिलता है। अतः हम यह कह सकते हैं कि सुसम्बद्ध काव्य का प्रारम्भ वैदिक काल से ही हो जाता है। इस साहित्य के चार प्रमुख अङ्ग है–(१) संहिता, (२) ब्राह्मण, (३) आरण्यक और (४) उपनिषद्। यही वैदिक काव्य धारा अविच्छिन्न रूप से प्रवाहित होती हुई लौकिक साहित्य तक पहुँचती है और वहाँ से लौकिक रूप को धारण कर आज भी प्रवाहित होती चली जा रही है।

(२) वेदोत्तरकाल या आर्ष काव्यकाल—वैदिक काल के पश्चात् आर्ष काव्य काल आता है। इस काल में संस्कृत काव्य जगत् का महत्त्वपूर्ण ग्रन्थरत्न

रामायण का निर्माण हुआ है। इस ग्रन्थ के रचयिता महर्षि वाल्मीकि को भारतीय मनीषी आदि कवि मानते हैं। लौकिक संस्कृत काव्य का यह आद्य ग्रन्थ परवर्ती साहित्य का उपजीव्य है। इस ग्रन्थ में काव्य रसों का उल्लेख मिलता है।

"रसैः शृंगारकरुणहास्यरौद्रभयानकैः ।
वीरादिभिरसंयुक्तम्··· ··· ··· ···।"

इसी ग्रन्थ को लक्ष्य में रखकर लक्षण ग्रन्थकारों ने काव्य लक्षणादि विषयों का प्रतिपादन किया है। करुण रस तो इस काव्य का बीज है। इस काव्य का जन्म करुण रस के वातावरण में ही हुआ है। महाकवि कालिदास ने 'रघुवंश'[1] भवभूति ने 'उत्तररामचरित'[2] तथा आनन्दवर्धनाचार्य ने 'ध्वन्यालोक'[3] में इस विषय का उल्लेख किया है।

रामायण में हमें विकसित काव्यशैली के दर्शन प्राप्त होते हैं। काव्य की दृष्टि से यह एक उत्तम काव्य है। सारा का सारा कथानक करुणार्णव में निमज्जित है। रामायण की भाषा में सरसता तथा प्रवाह है। कवि की भाषा भामिनी अपने सरस रस विलास से भावुक सहृदय को अपनी ओर आकृष्ट किये बिना नहीं रहती। पाठक उसकी मुसकान मिठाई के लिए उत्तरोत्तर लालायित ही होता चला जाता है। वह उसी भाव को तत्काल प्रस्तुत कर देती है जिसके लिए पाठक उत्कण्ठित दिखाई पड़ता है। ऋतु, पर्वत, नदी,

---

१. निषादविद्धाण्डजदर्शनोत्थ श्लोकत्वमापद्यत यस्य शोकः ।
—रघुवंश १४।२७ ॥

२. अथ स ब्रह्मर्षिरेकदा माध्यन्दिनसवनाय नदीं तमसामनुप्रपन्नः । तत्र युग्मचारिणोः क्रौञ्चयोरेकं व्याधेन विध्यमानं ददर्श । आकस्मिकप्रत्यवभासां च देवीं वाचमव्यक्तानुष्टभेन छन्दसा परिणतामभ्युदैरयत् ।
—उत्तररामचरित २।४ श्लोक के बाद का गद्य

३. काव्यस्यात्मा स एवार्थस्तथा चादिकवेः पुरा ।
क्रौञ्चद्वन्द्ववियोगोत्थः शोकः श्लोकत्वमागतः ॥ —ध्वन्यालोक १।५ ॥

सन्ध्या, रजनी आदि का वर्णन अत्यन्त सजीव एवं हृदयाकर्षक हुआ है। विविध प्रकार के छन्दों का प्रयोग छन्दोविषयक परिपूर्णता की ओर सङ्केत करता है। अलङ्कारों का भी समुचित प्रयोग हुआ है। लक्षण ग्रन्थकारों ने अपने ग्रन्थों में इस महाकाव्य से अनेक उदाहरण दिये हैं। आचार्य आनन्दवर्धन ने अपने ध्वन्यालोक में वाल्मीकि का निम्नलिखित पद्य उद्धृत किया है--

"रविसङ्क्रान्तसौभाग्यतुषारावृतमण्डलः ।
निःश्वासान्ध इवादर्शश्चन्द्रमा न प्रकाशते ।।"

इसकी काव्य शैली मनोरम एवं गम्भीर है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि वेदों में प्रस्फुटित काव्यशैली का विकसित रूप वेदोत्तरकालीन रामायण काव्य में देखने को मिलता है। इस काव्य का सम्बन्ध ऋषि वाल्मीकि से है। अतः इस काव्य को आर्षकाव्य भी कहा जाता है तथा इस काव्य के काल को आर्षकाव्य काल भी कहा जाता है।

(३) महाभारत काल या पुराण काल--रामायण के पश्चात् महाभारत का समय आता है। सम्भवतः इसी युग में पुराणों का भी प्रणयन हुआ है। अतएव इसे पुराणकाल की संज्ञा से भी अभिहित करते हैं। इस युग में विशाल कलेवर वाले ग्रन्थों का निर्माण हुआ है। भारत का सर्वस्व महाभारत अपनी विशिष्टता के लिए जगत् प्रसिद्ध है। परवर्ती कवियों ने इस ग्रन्थ से पर्याप्त सामग्री प्राप्त की है। इस काव्यरत्न ने अनेक महाकाव्यों, नाटकों तथा गीतिकाव्यों को जन्म दिया है। लक्षण ग्रन्थकारों ने अपने लक्षण ग्रन्थों में इससे अनेक उद्धरण दिये हैं। इसका निम्नलिखित श्लोक तो अत्यधिक प्रसिद्ध है--

"अयं स रशनोत्कर्षी पीनस्तनविमर्दनः ।
नाभ्यूरुजघनस्पर्शी नीवीविस्रंसनः करः ।।"

महाभारत ग्रन्थ के अतिरिक्त श्रीमद्भागवत आदि महापुराणों में भी हमें विकसित काव्य-शैली के दर्शन होते हैं। श्रीमद्भागवत में भक्ति तथा शृंगार की सरस रस धारा प्रवाहित हुई है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित पद्य देखें--

"पादन्यासैर्भुजविधुतिभिः सस्मितैर्भ्रूविलासै-
र्भज्यन्मध्यैश्चलकुचपटैः कुण्डलैर्गण्डलोलैः ।

स्विद्यन्मुख्यः कबंररसनाग्रन्थयः कृष्णवध्वो
गायन्त्यस्तं तडित इव ता मेघचक्रे विरेजुः ।।"

उक्त पद में शृंगार को सरस धारा प्रवाहित हुई है। भक्ति-भावना से परिपूर्ण निम्नलिखित श्लोक रत्न को देखें---

"केतुस्त्रिविक्रमयुतस्त्रिपतत्पताको
यस्ते मया भयकरोऽसुरदेवचम्वोः ।
स्वर्गाय साधुषु खलेष्वितराय भूमन्
पादः पुनातु भगवान् भजतामघं नः ।।"

अग्निपुराण तो लक्षण ग्रन्थ का स्वरूप ही धारण कर लेता है। इसमें अनेक काव्यशास्त्रीय रहस्यों का उद्‌घाटन किया गया है। काव्य के स्वरूप का विश्लेषण करते हुए कहा गया है---

'संक्षेपाद् वाक्यमिष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदावली।
काव्यं स्फुरदलङ्कारं गुणवद्दोषवर्जितम् ।।"

(अर्थात् इष्ट अर्थ को संक्षेप में अभिव्यक्त करने वाली ऐसी पदावली को काव्य कहते हैं जो कि दोष रहित अलङ्कार तथा गुणों से युक्त हो)

(४) कालिदास से पूर्वकाल---रामायण तथा पुराणकाल से उत्तर एवं कालिदास से पूर्व का समय संस्कृत काव्य के लिए अन्धकारमय है। महाकवि कालिदास की कृतियाँ साहित्यिक दृष्टि से पर्याप्त विकसित हैं। उनमें काव्य-शास्त्रीय समस्त गुण अनुस्यूत हैं। कवि का व्यञ्जना-विलासपूर्ण विकास पर पहुँचा है। उनकी रचनाओं में विभिन्न छन्दों तथा अलङ्कारों का बड़ी चतुरता से प्रयोग किया गया है। वे सभी कविता के कमनीय कलेवर को कान्त बना रहे हैं।

कालिदास की उत्कृष्टतम शैली के अनुशीलन से यह स्पष्ट हो जाता है कि पुराण काल से उत्तर तथा कालिदास से पूर्व निश्चित ही महाकाव्यों की रचना हुई है। परन्तु दुःख की बात यह है कि सम्प्रति इस काल में रचे गये काव्य उपलब्ध नहीं हैं। सुभाषित ग्रन्थों के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि पाणिनि ने पातालविजय और जाम्बवतीविजय नामक काव्य लिखे हैं। कतिपय

विद्वान् वैयाकरण पाणिनि को काव्यप्रणता पाणिनि से भिन्न मानते हैं, परन्तु अधिकांश विद्वान् इससे सहमत नहीं हैं। विद्वानों का विचार है कि पाणिनि वैयाकरण होते हुए भी सरस हृदय थे तथा वे सहृदयसंवेद्य काव्य रचना में पूर्ण सक्षम थे। सदुक्तिकर्णामृत में कवि प्रशंसा के सन्दर्भ में दिये गये एक पद्य[1] में सुवन्धु, कालिदास, भारवि, भवभूति के साथ दाक्षीपुत्र (पाणिनि) का भी उल्लेख है। महाभाष्यकार पतञ्जलि ने पाणिनि को दाक्षीपुत्र[2] के रूप में सम्बोधित किया है। पाणिनि का काव्य अत्यन्त सरस, रोचक एवं मधुर है। उनके काव्य में उत्प्रेक्षादि अलङ्कारों की छटा दर्शनीय है। प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन सजीव एवं हृदयग्राही है। पाणिनि की एक सरस तथा सुन्दर रचना को देखें—

'गतेऽर्धरात्र परिमन्दमन्दं गर्जन्ति यत्प्रावृषिकालमेघाः ।
अपश्यती वत्समिवेन्दुबिम्बं तच्छर्वरी गौरिव हुंकरोति ।।"

पतञ्जलि के महाभाष्य से भी यह स्पष्ट होता है कि वररुचि (कात्यायन) ने भी एक काव्य लिखा था। पिङ्गल ने छन्दःशास्त्र पर छन्दः सूत्र लिखा है। इस ग्रन्थ में प्रयुक्त छन्द प्रायः प्रेयसी के विशेषण के रूप में (कुटिलगति, मञ्जुभाषिणी, सुन्दरी, वियोगिनी, चारुहासिनी) विद्यमान हैं जो कि काव्यात्मक लालित्य को अभिव्यञ्जित कर रहे हैं।

इन उपर्युक्त तथ्यों से ऐसा ज्ञात होता है कि महाकवि कालिदास के पूर्व संस्कृत काव्य कला अत्यधिक समुन्नत हो चुकी होगी, परन्तु वे कवि तथा उनके काव्य विशेष कारणों से विस्मृत हो गये होंगे। अनेक काव्य-ग्रन्थों के नष्ट हो

---

१. सुबन्धौ भक्तिर्नः क इह रघुकारे न रमते,
धृतिर्दाक्षीपुत्रे हरति हरिचन्द्रोऽपि हृदयम् ।
विशुद्धोक्तिः शूरः प्रकृतिमधुरा भारविगिर–
स्तथाप्यन्तर्मोदं कमपि भवभूतिर्वितनुते ।।

२. सर्वे सर्वपदादेशा दाक्षीपुत्रस्य पाणिनेः ।
—महाभाष्य १।१०२।।

जाने से यह कहा जा सकता है कि ईसा के २०० वर्ष पूर्व से २०० ई० तक के समय में काव्य विकसित होता चला आया है। तत्कालीन शिलालेखों से भी काव्य के विकास पर प्रकाश पड़ता है। शिलालेखों में लिखे गये श्लोक अत्युत्तम काव्य शैली के प्रतीक हैं। इनमें कठिन शब्दों से युक्त समस्त पदावली के दर्शन होते हैं। रुद्रदामन् का गिरनार का लेख तथा हरिषेण लिखित समुद्रगुप्त प्रशस्ति इस क्षेत्र में अपना अद्वितीय महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। वत्सभट्टि तो अलंकृत काव्यशैली के प्रतिनिधि कवि हैं। इन्होंने गौड़ी रीति का प्रयोग किया है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित पद्य को देखें—

चलत्पताकान्यबलासनाथान्यत्यर्थशुक्लान्यधिकोन्नतानि ।
तडिल्लताचित्रसिताभ्रकूटतुल्योपमानानि गृहाणि यत्र ॥

इस श्लोक की तुलना कालिदास कृत मेघदूत के निम्नलिखित श्लोक से करें—

विद्युत्वन्तं ललितवनिताः सेन्द्रचापं सचित्राः,
सङ्गीताय प्रहतमुरजाः स्निग्धगम्भीरघोषम् ।
अन्तस्तोयं मणिमयभुवस्तुङ्गमभ्रंलिहाग्राः,
प्रासादास्त्वां तुलयितुमलं यत्र तैस्तैर्विशेषैः ॥

इस प्रकार उपर्युक्त तथ्यों से यह पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है कि कालिदास की रचना अपने पूर्ववर्ती कवियों से प्रभावित है।

(१) कालिदासोत्तरकाल—संस्कृत काव्य की सरस, सरल, सहज, रमणीय एवं सुकुमार शैली का चरम उत्कर्ष कालिदास की काव्य कला में मिलता है। डॉ० राजवली पाण्डेय, प्रो० जी० सी० झाला, प्रो० चट्टोपाध्याय आदि विद्वानों ने कालिदास का समय ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी माना है। कालिदास संस्कृत साहित्य के सर्वश्रेष्ठ, अद्वितीय, अनुपम महाकवि माने जाते हैं। अतः विद्वानों ने इन्हें कविताकामिनी का विलास बतलाया है। भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों ने उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है। उनका काव्य-सौष्ठव, नाट्यकला का लालित्य और गीतिकाव्य की सरसता सर्वथा श्लाघ्य है।

उनकी कवितावनिता वैसी ही सरस एवं सुन्दर है जैसी कि शाकुन्तल की नायिका शकुन्तला है। शकुन्तला के सदृश उनकी कविता सुन्दरी भी किसी दूसरे कवि के द्वारा सम्पर्कित न होने के कारण अनाघ्रात-प्रसून, अलून किसलय, अनाविद्धरत्न, अनास्वादित नवीन मधुर रस के सदृश है जिसे कोई सुकृती बड़े ही सुकृत से प्राप्त कर सकता है। डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने कालिदास को 'राष्ट्रिय कवि' की पदवी से विभूषित किया है। वस्तुतः उनके काव्यों में राष्ट्रिय सांस्कृतिक चेतना मुखरित हो रही है। वे भारतीयता के सच्चे पुजारी हैं। उनके काव्यरत्न भारतीयता का प्रतिनिधित्व करते हुए पाये जाते हैं।

महाकवि कालिदास ने अपने काव्य में पावन भारतभूमि का भव्य वर्णन, प्रकृति सुन्दरी का चारु चित्रण, मानव-मानस की सूक्ष्मतम अनुभूतियों का सुन्दर अभिव्यञ्जन और शृंगार आदि रसों का सुमधुर संयोजन अत्यन्त ही आकर्षक रूप में प्रस्तुत किया है। उनका अलंकार प्रयोग कविता को अलंकृत करने के लिए हुआ है। उपमा तो उनकी कविता की सच्ची सहचरी बन गई है। छन्दों का प्रयोग उसकी आह्लादकता को संगुम्फित कर रहा है जिससे वह मन्दस्मिता होती हुई सुशोभित हो रही है। प्रसाद, माधुर्य एवं वैदर्भी की त्रिवेणी से संयुक्त होती हुई ध्वन्यात्मकता उनकी सरस काव्य कला में चमत्कार ला देती है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित पद्य को देखें—

"अनाघ्रातं पुष्पं किसलयमलूनं कररुहै-
रनाविद्ध रत्नं मधु नवमनास्वादितरसम्।
अखण्डं पुण्यानां फलमिव च तद्रूपमनघं
न जाने भोक्तारं कमिह समुपस्थास्यति विधिः॥"

उनके प्रकृतिवर्णनों में मानवीकरण एवं मानवीय भावनाओं का सुन्दर समन्वय देखने को मिलता है। कहीं-कहीं तो प्राकृतिक उपादान मानवीय सौन्दर्य वर्णन में उपकरण के रूप में प्रस्तुत होने लगता है। शकुन्तला के सहज सौन्दर्य को प्रस्फुटित करने के लिए कवि प्राकृतिक उपकरणों का आश्रय लेता है—

"अधरः किसलयरागः कोमलविटपानुकारिणौ बाहू ।
कुसुममिव लोभनीयं यौवनमङ्गेषु सन्नद्धम् ॥"

कालिदास के पश्चात् अश्वघोष, मातृचेट, आर्यशूर आदि बौद्ध कवि आते हैं। ये बहुत अंशों में कालिदास के ऋणी हैं। यद्यपि इन लोगों ने कालिदास की अलंकृत सुकुमार काव्य-शैली का ही अनुसरण किया है परन्तु बौद्ध कवि होने के कारण इनके काव्यों में काव्यकला की अपेक्षा धर्म एवं दर्शन को स्थान-स्थान पर अधिक प्रश्रय मिला है। तथापि काव्य की सरसता सुन्दरता एवं स्वाभाविकता सराहनीय है। सौन्दरनन्द के उपमा अलंकार से युक्त एक उदाहरण को देखें—

"तं गौरवं बुद्धगतं चकर्ष भार्यानुरागः पुनराचकर्ष ।
सोऽनिश्चयान्नापि ययौ न तस्थौ तरंस्तरङ्गेष्विव राजहंसः ॥"

बौद्ध रचनाओं के अतिरिक्त महाकवि भर्तृमेण्ठ का अनुपलब्ध 'हयग्रीववध' महाकाव्य इसी काल की रचना मानी जाती है।

इसके पश्चात् शनैः शनैः कृत्रिम काव्य शैली का विकास होने लगता है। कवियों में पाण्डित्य प्रदर्शन की प्रवृत्ति दिखाई पड़ने लगती है। कोई अलंकारों के प्रयोग में प्रवीणता दिखलाता है तो कोई शब्दाडम्बर में ही उलझा है, कोई अपने व्याकरण वैदुष्य को दिखलाता है तो कोई दार्शनिकता के चक्कर में ही फँसकर कविता की स्वाभाविकता एवं सुन्दरता को विनष्ट कर देता है। फलतः कालिदास जैसा काव्य विलास इस समय में नहीं रह जाता है। इस परम्परा के प्रथम कवि भारवि हैं। यद्यपि ये कालिदास की काव्यशैली से प्रभावित है परन्तु वैदुष्य का व्यामोह इन्हें स्थान-स्थान पर अपनी ओर खींच लेता है। अर्थ की गम्भीरता, स्पष्टार्थता तथा साभिप्राय व्यञ्जनापूर्ण मुहाविरों से युक्त भारवि की भाषा है। उन्होंने स्वयं ही काव्य शैली का वर्णन किया है—

"स्फुटता न पदैरपाकृता न च न स्वीकृतमर्थगौरवम् ।
रचिता पृथगर्थता गिरां न च सामर्थ्यमपोहितं क्वचित् ॥"

भारवि ने जहाँ एक ओर सरल, सुबोध एवं अलंकृत सुकुमार शैली का

आश्रय लिया है वहीं दूसरी ओर सर्वतोभद्र, यमक, एक वर्ण आदि की कृत्रिम काव्य रचना की प्रवृत्ति से वे वञ्चित नहीं रह पाते हैं। वैदुष्य प्रदर्शन के लिए उन्होंने सम्पूर्ण श्लोक में एक ही व्यञ्जन का प्रयोग किया है--

"न नोननुन्नो नुन्नोनो नाना नानानना ननु ।
नुन्नोऽनुन्नो ननुन्नेनो नानेना नुन्ननुन्ननुत् ।।

इसके पश्चात् महाकवि भट्टि आते हैं। भट्टि का 'रावणवध' नामक महाकाव्य 'भट्टिकाव्य' के नाम से प्रसिद्ध है। यह काव्य वस्तुतः व्याकरण प्रधान है। व्याकरण की प्रधानता होने के कारण इसमें काव्यगत सुन्दरता व सरसता का अभाव है। इस सन्दर्भ में उन्होंने स्वयं ही कहा है--

"दीपतुल्यः प्रबन्धोऽयं शब्दलक्षणचक्षुषाम् ।
हस्तामर्ष इवान्धानां भवेद् व्याकरणादृते ।।"

महाकवि कुमारदास का 'जानकीहरण' कालिदास के रघुवंश से प्रभावित है। इनके काव्य में सरसता एवं मधुरता के दर्शन होते हैं। उदाहरण के लिए निम्नलिखित श्लोक को देखें--

"दृष्टो हतं मन्मथबाणपातैः शक्यं विधातुं न निमील्य चक्षुः ।
ऊरू विधात्रा नु कृतौ कथं तावित्यास तस्यां सुमतेर्वितर्कः ।।"

(अर्थात् विद्वान् व्यक्ति भी इस विषय में वितर्क करने लगता है कि ब्रह्मा ने दशरथ की पत्नी की सुन्दर सुडौल जघनों का निर्माण किस प्रकार किया होगा ? क्योंकि यदि वे जघनों को देखते हुए बनाते तो कामदेव के बाणों से घायल हो जाते और आँखें बन्द करके जघनों की रचना नहीं हो सकती थी।)

महाकवि माघ अपनी एकमात्र रचना 'शिशुपालवध' नामक महाकाव्य से संस्कृत जगत् में परम प्रतिष्ठित हुये हैं। अलंकारसौष्ठव, अर्थगाम्भीर्य एवं पदलालित्य इन तीनों ही विशेषताओं का सुन्दर समावेश होने के कारण इसे सर्वाङ्गपूर्ण महाकाव्य माना जाता है।

"उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम् ।
दण्डिनः पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयो गुणाः ।।"

महाकवि माघ ने अपने सम्पूर्ण महाकाव्य में नूतन मौलिकता, कल्पना की उर्वरता, प्रौढ़ोक्ति की विशेषता एवं सुन्दर सरसता को सरसाया है। परन्तु कहीं-कहीं वैदुष्य प्रदर्शन की प्रवृत्ति ने कविता की सरसता को विनष्ट कर दिया है। उनका शब्दाडम्बर अत्यन्त प्रसिद्ध है। उनके विषय में कहा जाता है– "नवसर्गगते माघे नवशब्दो न विद्यते।" माघ के निम्नलिखित श्लोक से प्रभावित होकर उन्हें 'घण्टामाघ' की उपाधि से विभूषित किया गया है :–

"उदयति विततोर्ध्वरश्मिरज्जा–
वहिमरुचौ हिमधाम्नि याति चास्तम्।
वहति गिरिरयं विलम्बिघण्टा–
द्वयपरिवारित– वारणेन्द्रलालाम्॥"

रत्नाकर का हरविजय हरिश्चन्द्र का धर्मशर्माभ्युदय पद्मगुप्त का नवसाहसाङ्कचरित, विल्हण का विक्रमाङ्कदेवचरित तथा कल्हड़ की राजतरंगिणी संस्कृत के प्रसिद्ध ग्रंथरत्न हैं।

महाकवि माघ के पश्चात् 'नैषधीयचरित' के प्रणेता श्री हर्ष संस्कृत काव्य प्रणेताओं की प्रतिष्ठित परम्परा में आते हैं। भारतीय समालोचक संस्कृत काव्य पयम्परा में 'नैषधीयचरित' को सर्वश्रेष्ठ मानते हैं। अत एव कहा गया है :–

तावद्भा: भारवेर्भातियावन्माघस्य नोदय:।
उदिते नैषधे काव्ये क्व माघ: क्व च भारवि:॥"

नैषधीयचरित की कोमलकान्त पदावली, सुन्दर शब्द चयन, भाव भंगिमा युक्त भाषा-भामिनी, सरस एवं रमणीय रसधारा तथा संगीतमयी सुमधुर छन्दोयोजना को देखकर विद्वन्मण्डली मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करने लग गयी– 'नैषधे पदलालित्यम्।'

यह युग वस्तुत: संस्कृत साहित्य का लब्ध प्रतिष्ठित युग रहा है। इसमें भारवि से लेकर श्री हर्ष तक सुप्रसिद्ध महाकाव्य, खण्डकाव्य, मुक्तक, कथा, आख्यायिका, नाटक आदि विभिन्न काव्य विधाओं का सम्यक् विकास हुआ है। इसी समय में भारवि, माघ, कुमारदास, भट्टि, जयदेव, विल्हण, सुबन्धु, दण्डी

वाण, भवभूति, क्षेमेन्द्र जैसे कविरत्न अपनी दिव्यवाणी के द्वारा सुर भारती की सेवा करते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि संस्कृत की दिव्य काव्यधारा अनादिकाल से प्रवाहित होती हुयी आज भी सहृदयों को रससिक्त करती हुयी अविच्छिन्न रूप में प्रवाहित होती चली जा रही है।

काव्य-प्रयोजन

मनुष्य की यह स्वाभाविक प्रवृति है कि वह दुःख से निवृत्त होकर सुख-शान्ति को प्राप्त करना चाहता है। इस सुखोपलब्धि के लिए हमारे यहाँ अनेक प्रकार से सोचा-विचारा गया है। यद्यपि वेदाध्ययन, तपश्चर्या, दर्शन आदि अनेक साधन उस सुख सिद्धि में हेतु हैं, परन्तु मानव जाति की यह स्वाभाविक वृत्ति है कि वह सरल से सरल साधन के द्वारा अपना प्रयोजन सिद्ध कर सके, उसे कठिन परिश्रम इष्ट नहीं है। एतदर्थं उसने एक ऐसे मार्ग का अनुसंधान किया है, जो कि सरल, सरस एवं जनसाधारण को प्राप्तव्य है– यही 'काव्य' नाम से प्रसिद्ध है।

हमारे यहाँ काव्यप्रयोजन के विषय में प्राचीन काल से ही विचार होता चला आ रहा है। यहाँ पाश्चात्त्य काव्य समीक्षकों के 'Art for Aits srke' (कला केवल कला के लिए) के सिद्धान्त को स्वीकार नहीं किया गया है। हमारे मनीषियों ने कला को पर्याप्त महत्त्व दिया है। उसका सम्बन्ध केवल भौतिकता तथा वाह्य विषयों तक ही सीमित नहीं है अपितु वह हृदय पक्ष से सम्वन्ध रखती है। अतएव कहा गया है–

"विश्रान्तिर्यस्य सम्भोगे सा कला न कला मता।
लीयते परमानन्दे ययात्मा सा परा कला॥"

(अर्थात् जिसकी उपयोगिता सम्भोग में ही समाप्त हो जाती है वह कला कला नहीं है, अपितु जिसके द्वारा आत्मा को परम आनन्द की अनुभूति होती है, वही उत्कृष्ट कोटि की कला है।)

भरतमुनि का अभिमत है कि काव्य का प्रयोजन लोक का मनोरंजन एवं शोकपीड़ित तथा परिश्रान्तजनों को विश्रान्ति प्रदान करता है :–

वेद–विद्येतिहासानामाख्यानपरिकल्पनम् ।
विनोदजननं लोके नाट्यमेतद् भविष्यति ।।
दुःखार्त्तानां श्रमार्त्तानां शोकार्त्तानां तपस्विनाम् ।
विश्रामजननं लोके नाट्यमेतद् भविष्यति ।।

काव्य प्रयोजन की मीमांसा करते हुए कविराज विश्वनाथ कहते हैं कि काव्य के द्वारा अल्पबुद्धि मानव भी सुखपूर्वक धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष रूप पुरुषार्थ चतुष्टय को प्राप्त कर सकता है–

"चतुर्वर्गफलप्राप्तिः सुखादल्पधियामपि ।
काव्यादेव यतस्तेन तत्स्वरूपं निरूप्यते ।।

काव्य की उपादेयता के विषय में अग्निपुराण में कहा गया है कि संसार में मनुष्य होना दुर्लभ है, विद्या प्राप्ति इससे भी दुर्लभ है, उससे भी दुर्लभ है कवित्वशक्ति और कविप्रतिभा तो अत्यन्त दुर्लभ है–

'नरत्वं दुर्लभं लोके विद्या तत्र सुदुर्लभा ।
कवित्वं दुर्लभं तत्र शक्तिस्तत्र सुदुर्लभा ।।"

काव्य-प्रयोजन पर आचार्य मम्मट ने विस्तारपूर्वक विचार किया है। वे लिखते हैं–

"काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये ।
सद्यः परनिर्वृतये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे ।।"

अर्थात् काव्य रचना यश प्राप्ति के लिये, धनार्जन के लिए, व्यवहारज्ञान के लिए, अमंगल विनाश के लिये, सद्यः परमानन्द की प्राप्ति के लिये तथा प्रियतमा के समान उपदेश देने के लिये होता है। प्रस्तुत संदर्भ में मम्मट ने[1]

---

१. "प्रभुसम्मितशब्दप्रधानवेदादिशास्त्रेभ्यः सुहृत्सम्मितार्थतात्पर्यवत्पुराणादीतिहासेभ्यश्च शब्दार्थयोर्गुणभावेन रसाङ्गभूतव्यापारप्रवणतया विलक्षणं यत्काव्यं लोकोत्तरवर्णनानिपुणकविकर्म तत् कान्तेव सरसतापादानेनाभिमुखीकृत्य रामादिवद्वर्तितव्यं न रावणादिवदित्युपदेशं च यथायोगं कवेः सहृदयस्य च करोतिनि सर्वथा तत्र यतनीयम् ।

–काव्यप्रकाश

कान्तासम्मित उपदेश की मीमांसा करते हुये कहा है कि किसी कार्य का सम्पन्न करने के लिये (१) प्रभुसम्मित (२) मित्रसम्मित और (३) कान्तासम्मित उपदेशों से प्रेरणा प्राप्त होती है। (१) वेद-शास्त्रों का उपदेश राजा या स्वामी की आज्ञा के समान होता है, इसमें शब्द की प्रधानता रहती है। आज्ञा प्रधान होने के कारण लोग इस उपदेश को उस भाव से नहीं ग्रहण करते हैं जिस प्रकार अन्य उपदेशों को। (२) पुराणादि का उपदेश मित्र के समान है। जिस प्रकार कोई मित्र किसी मित्र को प्रयोजन समझाकर उसे किसी कार्य के लिये प्रेरित करता है उसी प्रकार पुराणादि उचित मार्ग दर्शन कराके किसी को कार्य में प्रवृत्त करते हैं। (३) तीसरे प्रकार का उपदेश कान्ता के समान है। जिस प्रकार सरसता के साथ कोई प्रियतमा अपने प्रियतम को अपनी बात सुनाने के लिये उसे आकृष्ट कर किसी कार्य के लिये प्रेरित करती है, उसी प्रकार काव्य भी श्रोता को सरसता के द्वारा आकृष्ट कर उसे समुचित शिक्षा देता है। इस प्रकार काव्य का उपदेश कान्तासम्मित उपदेश है।

पाश्चात्त्य समीक्षकों का काव्यप्रयोजन के सम्बन्ध में इस प्रकार का अभिमत है–

To teach, to please, these are the poet's aim or at once to profit and to amuse.
—Horace

इस प्रकार हम देखते हैं कि मम्मट का काव्य प्रयोजन पाश्चात्त्य समीक्षकों से एक विचित्र साम्य रखता है।

काव्य के द्वारा ही वाल्मीकि, व्यास, भास, कलिदास, भवभूति, भारवि, माघ, श्रीहर्ष आदि अनेक महाकवि अत्यधिक यश प्राप्त कर सके हैं। ऐसे ब्रह्मानन्द सहोदर काव्यशास्त्र के अनुशीलन में मानव प्रवृत्ति का अनुरक्त होना स्वाभाविक ही है।

अतः हम कह सकते हैं कि परम विश्रान्ति लाभ के लिए लोग इस सुकुमार मार्ग का आश्रय लेकर प्रवृत्त हुये ताकि सहज ही में लक्ष्य प्राप्ति तक पहुँचा जा सके।

काव्य का स्वरूप

भारतीय समालोचकों ने 'कवि' को 'प्रजापति' की पदवी से विभूषित किया है।[1] महावैयाकरण श्री भानुजी दीक्षित ने कवि शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार की है– 'कवते श्लोकान् ग्रथते वर्णयति वा कविः' अर्थात् वर्णन करने वाले को कवि कहते हैं और 'कवेर्भावः कर्म वा काव्यम्' अर्थात् कवि के भाव या कर्म को 'काव्य' कहते हैं।

काव्य शरीर की रचना शब्द और अर्थ से होती है। ये दोनों परस्पर सम्पृक्त रूप में रहते हैं। एक के विना दूसरे की स्थिति ही नहीं। यही कारण है कि कविकुल गुरु कालिदास ने मंगलाचरण के श्लोक में शब्द और अर्थ की एकता वतलाई है–

"वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ॥

इस प्रकार शब्द तथा अर्थ का परस्पर अटूट सम्बन्ध है। शब्द तथा अर्थ से काव्य वनता है। काव्य लक्षण के सम्वन्ध में सभी आचार्य एकमत नहीं हैं। कोई अलंकार को काव्य की आत्मा मानता है, कोई रीति को, कोई रस को कोई ध्वनि को तो कोई वक्रोक्ति को ही काव्य का जीवन मानता है। संक्षेप में विभिन्न आचार्यों के मतों को छः सम्प्रदायों में विभक्त किया जा सकता है–

१. अलंकार सम्प्रदाय
२. रस सम्प्रदाय
३. रीति सम्प्रदाय
४. ध्वनि सम्प्रदाय
५. वक्रोक्ति सम्प्रदाय
६. औचित्य सम्प्रदाय

(१) **अलंकार सम्प्रदाय**– इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक आचार्य भामह माने

---

१. अपारे काव्यसंसारे कविरेकः प्रजापतिः।
यथास्मै रोचते विश्वं तथेदं परिवर्तते॥

जाते हैं। भामह के अतिरिक्त दण्डी, भोज आदि इसके प्रमुख आचार्य हैं। इन आचार्यों ने अलङ्कारों को काव्य के लिए अनिवार्य माना है। आचार्य भामह ने तो यहाँ तक कहा है–

न कान्तमपि निर्भूषं विभाति वनिताननम्।'

अर्थात् सुन्दर होते हुए भी अलङ्कारों से रहित सुन्दरी का मुख शोभा नहीं देता है। जयदेव ने तो चन्द्रालोक में यहाँ तक कहा है कि अलंकार रहित काव्य को काव्य कहना उष्णता से रहित अग्नि (राख) को अग्नि कहने के समान है–

"अङ्गीकरोति यः काव्यं शब्दार्थावनलङ्कृती ।
असौ न मन्यते कस्मादनुष्णमनलङ्कृती ॥"

(२) रस सम्प्रदाय–इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक भरत मुनि माने जाते हैं। उनका कथन है–'नहि रसाद् ऋते कश्चिदर्थः प्रवर्तते।' रस के अस्तित्व को सभी आचार्यों ने स्वीकार किया है। परन्तु कविराज विश्वनाथ ने तो 'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्' लिखकर काव्य में रस की महत्ता को स्पष्ट उद्घोषित किया है।

(३) रीति सम्प्रदाय—आचार्य वामन ने रीति को काव्य की आत्मा स्वीकार किया है—'रीतिरात्मा काव्यस्य' विशिष्ट पद रचना को रीति कहते हैं।[1]

(४) ध्वनि सम्प्रदाय—ध्वनि सम्प्रदाय के प्रवर्तक आचार्य आनन्दवर्धन माने जाते हैं। उन्होंने अपने ध्वन्यालोक में लिखा है–

'काव्यस्यात्मा ध्वनिरिति बुधैर्यः समाम्नातपूर्वः।'

ध्वनि की परिभाषा करते हुए वे लिखते हैं कि जहाँ अभिधा का अर्थ व्यञ्जना से दब जाता है वहाँ उस रचना में ध्वनि रहती है—

'यत्रार्थः शब्दो वा तमर्थमुपसर्जनीकृतस्वार्थौ ।
व्यङ्क्तः काव्यविशेषः स ध्वनिरिति सूरिभिः कथितः ॥'

---

१. विशिष्टपदरचना रीतिः।

आचार्य मम्मट ने भी ध्वनि काव्य को उत्तमकोटि का काव्य माना है--'इदमुत्तममतिशयिनि व्यंग्ये वाच्याद् ध्वनिर्बुधैः कथितः ।' इस सम्प्रदाय का साहित्यशास्त्र में अत्यधिक महत्त्वपूर्ण स्थान है ।

(५) वक्रोक्ति सम्प्रदाय--इस सम्प्रदाय के प्रधान आचार्य कुन्तक हैं। इनके अनुसार काव्य की परिभाषा इस प्रकार है--'कवि के वक्रोक्ति वाले व्यापार से युक्त जिस बन्ध में शब्द और अर्थ उस वक्रता के उपकारक होकर गुँथे रहते हैं, उस बन्ध को काव्य कहते हैं--

'शब्दार्थौ सहितौ वक्रकविव्यापारशालिनि ।
बन्धे व्यवस्थितौ काव्यं तदविदाह्लादकारिणि ॥'

(६) औचित्य सम्प्रदाय--इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक क्षेमेन्द्र माने जाते हैं। इन्होंने औचित्य को काव्य का मूल तत्त्व माना है और रस का जीवन बतलाया है--

'औचित्यस्य चमत्कारकारिणश्चारुचर्वणे ।
रसजीवितभूतस्य विचारं कुरुतेऽधुना ।'

इसके अतिरिक्त अग्निपुराण में अभीष्ट अर्थ व्यक्त करने वाला, दोषरहित एवं गुणसहित वाक्य विधान को काव्य कहा गया है--

'संक्षेपाद्वाक्यमिष्टार्थं व्यवच्छिन्ना पदावली ।
काव्यं स्फुरदलङ्कारं गुणवद् दोषवर्जित ।'

आचार्य मम्मट ने उस शब्दार्थ को काव्य माना है जो दोषों से रहित, गुणों से युक्त तथा कहीं अलङ्कार से रहित भी हो--

'तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृती पुनः क्वापि ।'

रसगङ्गाधर के प्रणेता पण्डितराज जगन्नाथ ने रमणीय अर्थ के प्रतिपादक शब्द को काव्य माना है--

'रमणीयार्थप्रतिपादकः शब्दः काव्यम् ।'

उपर्युक्त मतों की समीक्षा करने से यह निष्कर्ष निकलता है कि चमत्कार पूर्ण, रसात्मक, गुणालंकारयुक्त निर्दोष वाक्य को 'काव्य' कहते हैं ।

काव्य के भेद

दृश्य तथा श्रव्य के भेद से काव्य दो प्रकार का होता है।[1] दृश्य काव्य को रूपक कहते हैं।[2] यह नाटक, प्रकरण, भाण, व्यायोग, समवकार, डिम, ईहामृग, अङ्क, वीथी और प्रहसन के भेद से दश प्रकार का होता है—

'नाटकमथ प्रकरणं भाणव्यायोगसमवकारडिमाः ।
ईहामृगाङ्कवीथ्यः प्रहसनमिति रूपकाणि दश ॥'

श्रव्य काव्य के भी पद्य, गद्य एवं चम्पू (पद्य और गद्य मिश्रित) ये तीन भेद होते हैं।[3] इनमें भी पद्यकाव्य के सात भेद होते हैं[4]—(१) महाकाव्य[5] (२) खण्डकाव्य[6] (३) कुन्तक (४) कलापक (५) सन्दानितक, (६) युग्मक और (७) मुक्तक। मिश्र (चम्पू) काव्य भी विरुद तथा करम्भक के भेद से दो प्रकार का होता है।

कथा तथा आख्यायिका के भेद से गद्य काव्य के दो भेद होते हैं। कविराज विश्वनाथ ने गद्य के चार प्रकार बतलाये हैं—(१) मक्तक (२) वृत्तगन्धि,

---

१. दृश्यश्रव्यत्वभेदेन पुनः काव्यं द्विधा मतम् । सा० द० ६ ।१॥
२. तद्रूपारोपात्तु रूपकम् । सा० द० ६ ।१॥
३. श्रव्यं श्रोतव्यमात्रं तत् पद्यगद्यमयं द्विधा । सा० द० ६ । ३१३
गद्यंपद्यञ्च मिश्रञ्च काव्यादित्रिविधं स्मृतम् । अग्निपुराण ३३७/८
गद्यपद्यमयं काव्यं चम्पूरित्यभिधीयते । सा० द० ६ । ३३६
४ छन्दोबद्धपदं पद्यं तेन मुक्तेन मुक्तकम् ।
द्वाभ्यां तु युग्मकं संदानितकं त्रिभिरिष्यते ॥
कलापकं चतुर्भिश्च पञ्चभिः कुलकं मतम् । सा० द० ६ । ३१४-१५
५ महाकाव्य का लक्षण आगे दिया गया है।
६. खण्डकाव्यं भवेत्काव्यस्यैकदेशानुसारि च । सा० द० ६ । ३२९

(३) उत्कलिकाप्राय और (४) चूर्णक[1]।

महाकाव्य

संस्कृत के काव्यशास्त्रियों ने महाकाव्य का अत्यन्त विस्तृत लक्षण प्रस्तुत किया है। शास्त्रीय नियमों के अनुसार महाकाव्य उसे कहते हैं-जिसमें सर्ग बन्ध होता है। इसमें किसी एक देवता या उत्तमवंश में जन्म लेने वाले धीरोदात्त क्षत्रिय अथवा एक कल में उत्पन्न अनेक राजाओं का चरित्र चित्रित किया जाता है। शृंगार, वीर, शान्त इन रसों में से कोई एक रस प्रधान(अङ्गी) रहता है। शेष रस अङ्ग (अप्रधान) के रूप में रहते हैं। इसमें नाटक की सभी सन्धियाँ रहती हैं। कोई भी ऐतिहासिक अथवा किसी भी महापुरुष के जीवन से सम्बद्ध कोई लोकप्रसिद्ध वृत्त वर्णित होता है। यद्यपि महाकाव्य में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों पुरुषार्थों का निरूपण किया गया है परन्तु परम फल के रूप में किसी एक का ही सर्वतोभद्र उपनिबन्ध युक्ति-युक्त माना गया है। ग्रन्थ के प्रारम्भ में नमस्कारात्मक, वस्तुनिर्देशात्मक या आशीर्वादात्मक मंगलाचरण का विधान है।

महाकाव्य में कहीं कहीं खलों की निन्दा और सज्जनों की प्रशंसा की जाती है। प्रत्येक सर्ग में किसी एक छन्द को लेकर रचना की जाती है और सर्ग के अन्त में उस छन्द के अतिरिक्त अन्य छन्दों में रचना की जाती है। इसमें आठ से कम सर्ग नहीं हुआ करते हैं और ये सग भी न तो बहुत छोटे होते हैं और न ही बहुत बड़े। किसी-किसी महाकाव्य में एक ही सर्ग में भिन्न-भिन्न छन्दों का प्रयोग होता है। प्रत्येक सर्ग के अन्त में आने वाले वृत्त के द्वारा अगले सर्ग के वृत्तान्त की सूचना दे दी जाती है। इसमें निम्नलिखित

---

१. वृत्तगन्धोज्झितं गद्यं मुक्तकं वृत्तगन्धि च ।
भवेदुत्कलिकाप्रायं चूर्णकं च चतुर्विधम् ।।
आद्यं समासरहितं वृत्तभागयुतं परम् ।
अन्यद्दीर्घसमासाढ्यं तुर्यं चाल्पसमासकम् ।। (सा० द० ३२९-३३२)

विषयों का सांगोपांग वर्णन किया जाता है :-(१) सन्ध्या (२) सूर्य (३) चन्द्रमा (४) रात्रि (५) प्रदोष (६) अन्धकार (७) दिवस (८) प्रातःकाल (९) मध्याह्न (१०) मृगया (११) पर्वत (१२) ऋतु (१३) वन (१४) सागर (१५) संयोग (१६) वियोग (१७) मुनि (१८) स्वर्ग (१९) नगर (२०) यज्ञ (२१) संग्राम (२२) यात्रा (२३) विवाह (२४) मन्त्र (२५) पुत्रजन्म आदि ।

इस महाकाव्य का नामकरण संस्कार कवि के नाम पर, वर्ण्य विषय के आधार पर, नायक के नाम के अनुसार अथवा इनके अतिरिक्त किसी अन्य आधार पर किया जाता है। इनके सर्ग का नाम भी रखा जाया करता है जो कि उस सर्ग में वर्ण्य विषय के अनुसार होता है। जैसा कि कहा गया है—

सर्गबन्धो महाकाव्यं तत्रैको नायकः सुरः ।
सद्वंशः क्षत्रियो वापि धीरोदात्तगुणान्वितः ॥१॥
एकवंशभवा भूपाः कुलजा बहवोऽपि वा ।
अङ्गानि सर्वेऽपि रसाः सर्वे नाटकसन्धयः ॥२॥
इतिहासोद्भवं वृत्तमन्यद्वा सज्जनाश्रयम् ॥३॥
चत्वारस्तस्य वर्गाः स्युस्तेष्वेकं च फलं भवेत् ।
आदौ नमस्क्रियाशीर्वा वस्तुनिर्देश एव वा ॥४॥
क्वचिन्निन्दा खलादीनां सतां च गुणकीर्तनम् ।
एकवृत्तमयैः पद्यैरवसानेऽन्यवृत्तकैः ॥५॥
नातिस्वल्पा नातिदीर्घा सर्गा अष्टाधिका इह ।
नानावृत्तमयः क्वापि सर्गः कश्चन दृश्यते ॥६॥
सर्गान्ते भाविसर्गस्य कथायाः सूचनं भवेत् ।
सन्ध्यासूर्येन्दुरजनीप्रदोषध्वान्तवासराः ॥७॥
प्रातर्मध्याह्नमृगयाशैलर्तुवनसागराः ।
सम्भोगविप्रलम्भौ मुनिस्वर्गपुराध्वराः ॥८॥
रणप्रयाणोपयममन्त्रपुत्रोदयादयः ।
वर्णनीया यथायोगं साङ्गोपाङ्गा अमी इह ॥९॥

कवेर्वृत्तस्य वा नाम्ना नायकस्येतरस्य वा ।
नामास्य सर्गोपादेयकथया सर्गनाम तु ॥१०॥

उपर्युक्त लक्षणों से युक्त रघुवंश, किरातार्जुनीय, शिशुपाल-वध, नैषधीयचरित आदि प्रमुख महाकाव्य हैं।

खण्डकाव्य—खण्डकाव्य में महाकाव्य के एक भाग का अनुसरण किया जाता है। कहने का भाव यह है कि खण्डकाव्य में किसी राजा आदि का सम्पूर्ण चरित्र चित्रित नहीं होता है। इसमें उसके एक ही भाग का वर्णन होता है, जैसे—मेघदूत, ऋतुसंहार आदि। मेघदूत में यक्ष के जीवन के एक भाग का चित्रण हुआ है, अतः मेघदूत खण्डकाव्य है। खण्डकाव्य को ही गीतिकाव्य भी कहते हैं क्योंकि इसमें गीति की प्रधानता रहती है। इसमें संगीतात्मकता का सुन्दर पुट रहता है। यह आकार में लघु. संरचना में मृदु एवं भावात्मकता में भव्य होता है। गीतिकाव्य प्रायः शृङ्गार, धर्म या नीति प्रधान होते हैं। श्री वरदाचार्य ने ठीक ही लिखा है—"गीतिकाव्य प्रेम, शोक या भक्ति के भावों, विचारों या अनुभवों का प्रकाशन है। यह मानव हृदय का स्वाभाविक प्रवाह है। यह हृदयगत भावों का स्वतःसिद्ध प्रकाशन है। यह सामान्य कविता की अपेक्षा भावनाओं को अधिक प्रभावित करता है।" इस प्रकार हम देखते हैं कि गीतिकाव्य मानव हृदय का वह सुमधुर मधु है जो कि अपने माधुर्य से सहृदयों को विलक्षण एवं अनुपम सरसता की अनुभूति करवाता है।

मुक्तक गीति—अग्निपुराण में मुक्तक काव्यों में चमत्कार की प्रधानता मानी गयी है-'मुक्तकं श्लोक एवैकश्चमत्कारक्षमः सतां।' आचार्य आनन्दवर्धन ने मुक्तक काव्य में रस की स्थिति उद्घोषित की है—

प्रबन्धे मुक्तके वापि रसादीन् बद्धुमिच्छता।
तत्र मुक्तकेषु रसबन्धाभिनिवेशिनः कवेस्तदाश्रयमौचित्यम् ॥

शब्दकल्पद्रुम में मुक्तक का लक्षण इस प्रकार दिया गया है—

विनाकृतं विरहितं व्यवच्छिन्नं विशेषितम् ॥
भिन्नं स्यादंशनिर्व्यूहे मुक्तं यो वातिशोभनः ॥२४॥

मुक्तक के भेद––मुक्तक काव्य दो प्रकार का होता है–(१) कोष और (२) संघात।

(१) कोष–जिसमें दूसरे कवियों के भी विषय क्रम या विना क्रम से रक्खे जाते हैं, उसे कोष कहते हैं।

(२) संघात––जिसमें एक ही कवि के एक ही विषय से सम्बन्धित छन्द संकलित होते हैं, उसे संघात कहते हैं।

गीतिकाव्य का स्वरूप––गीतिकाव्य का लक्षण हमें संस्कृत काव्यशास्त्र में नहीं मिलता है। यह शब्द अँग्रेजी के लिरिक शब्द का भाषान्तर है जिसका प्रधान तत्त्व गेयता है। लिरिक शब्द की निष्पत्ति ग्रीक भाषा के लायर(वाद्य) से हुई है। लायर पर प्रायः एक ही व्यक्ति के द्वारा गीत गाये जाते थे। संस्कृत साहित्य में प्रारम्भ से ही गीतिकाव्य की प्रधानता रही है। यहाँ की संगीतात्मक भाषा योजना सहृदयों को अपनी ओर आकृष्ट करने में पूर्ण सक्षम रही है। गीति की महत्ता निम्नलिखित श्लोक से द्योतित होती है–

सामगीतिरतो ब्रह्मा वीणासक्ता सरस्वती।
किमन्ये यक्षगन्धर्वदेवदानवमानवाः ॥

छन्दःशास्त्र में गीति नामक एक विशेष वृत्त है जो कि अत्यन्त ही सरस रोचक एवं आह्लादक है। नाट्यशास्त्र में भी गीतिशब्द का प्रयोग एक विशिष्ट गायन के रूप में हुआ है। इस प्रकार हम देखते हैं कि संस्कृत साहित्य में गीति शब्द का प्रयोग अत्यन्त प्राचीनकाल से होता चला रहा है। सम्प्रति गीति शब्द का प्रयोग जिस अर्थ में होता है उसमें मानव-मानस की आन्तरिक निगूढ, गेय एवं सहज स्फुरित अनुभूति युक्त भाव निहित है।

गीतिकाव्य के प्रमुख तत्त्व––भावमयता गीतिकाव्य का प्रमुख तत्त्व है। भावाकुल मानव सहसा ही अपने हृदय के मार्मिक रहस्य का उद्घाटन करने के लिये किसी विशिष्ट राग का सहारा लेकर अलापता है। उसके इस रागालाप में उसकी मानसिक मर्मानुभूति अनुस्यूत रहती है। इस प्रकार उसकी तीव्र एवं रागात्मक अनुभूति से सुन्दर, सरस गीति रचना होती है। इस प्रकार भावमयता के साथ-ही-साथ भावान्विति भी इसका महत्त्वपूर्ण तत्त्व है।

इसके अतिरिक्त संक्षिप्तता, गेयता, सरसता, मधुरता, कोमलता, भावगम्भीरता, ध्वन्यात्मकता एवं भावुकता आदि गीतिकाव्य के प्रमुख तत्त्व हैं।

गीतिकाव्य का उद्भव एवं विकास

गीतिकाव्य के आधारभूत तत्त्वों के दर्शन हमें ऋग्वेद से ही मिलने लगते हैं। ऋग्वेद में कतिपय ऐसे स्थल मिलते हैं जहाँ हमें गीतिकाव्य के दर्शन होते हैं। देवी उषा की प्रशंसा में गाये गये मन्त्र गीतिकाव्य के सुन्दर उदाहरण हैं। उदाहरण के लिये निम्नलिखित मन्त्र को देखें–

अभ्रातेव पुंस एति प्रतीची गर्तारुगिव सनये धनानाम् ।
जायेव पत्य उशती सुवासा उषा हस्रेव निरीणीते अप्सः ॥

अर्थात् उषा अपने शुभ्र उज्ज्वल रूप को धारण करती हुई स्नान करने वाली सुन्दरी की भाँति आकाश में प्रकट होती है। कभी वह भाई से रहित बहिन के समान अपने दाय भाग को लेने के लिये पितृस्थानीय सूर्यदेव के पास आती है। कभी वह सुन्दर वस्त्रों को पहनकर पति को अपने प्रेमपाश में बाँधने के लिये मचलने वाली सुन्दरी के समान अपने पति के समक्ष सुन्दर रूप को प्रकट करती है।

उषा का वर्णन एक सुन्दर मानवी के रूप में इस प्रकार किया गया है– "हे प्रकाशवती उषा तुम कमनीय कन्या की तरह अत्यन्त आकर्षणमयी बनकर अभीष्ट फलदाता सूर्य के समीप जाती हो तथा उनके समक्ष स्मितवदना युवती की भाँति अपने वक्ष को आवरणरहित करती हो–

कन्येव तन्वा शाशदाना एषि देवि देवमियक्षमाणम् ।
संस्मयमाना युवतिः पुरस्तादाविर्वक्षांसि कृणुषे विभाती ॥"

एक स्थान पर व्याकरण को जानने वाले की वाणी की तुलना सुसज्जित सुन्दरी से की गई है–

उत त्वः पश्यन् न ददर्श वाचं
उत त्वः शृण्वन् न शृणोत्येनाम् ।
उतो त्वस्मै तन्वं विसस्रे
जायेव पत्य उशती सुवासाः ॥

महर्षि पतञ्जलि ने इस मन्त्र की मीमांसा इस प्रकार की है कि 'व्या-, करण से अनभिज्ञ व्यक्ति एक ऐसे प्राणी (व्यक्ति) के समान है जो कि वाणी को देखता हुआ भी नहीं देखता है। सुनता हुआ भी नहीं सुनता है परन्तु व्याकरणज्ञ के लिए वाणी अपना रूप उसी प्रकार प्रकट कर देती है जिस प्रकार सुन्दर वस्त्र से सुसज्जित कामिनी अपने आपको अपने पति के समक्ष समर्पित कर देती है।"

वाल्मीकि रामायण में अनेक स्थानों पर सुन्दर गीतितत्त्व पाये जाते हैं। यदि गम्भीरता से विचार किया जाये तो गीतिकाव्य के द्वारा ही लौकिक कविता की उत्पत्ति सिद्ध होती है। करुणरसाक्रान्त मानस महर्षि वाल्मीकि के मार्मिक हार्दिक भाव संगीतात्मक लयानुवद्ध होकर कविता के रूप में प्रकट होते हैं अतएव शोकाभिभूत महर्षि वाल्मीकि सुन्दर गीतात्मक भावगम्भीर श्लोक बोलते हुए कहते हैं–

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्॥

महर्षि पाणिनि के द्वारा प्रणीत गीति पद्य मिलते हैं। ये पद्य अत्यन्त ही सरस, रोचक एवं हृद्य हैं। राजशेखर ने पाणिनि की अत्यन्त ही प्रशंसा की है।[1] क्षेमेन्द्र ने इनके उपजाति छन्द की अत्यन्त ही प्रशंसा की है। उनकी गीति रचनायें अत्यन्त सरस, मधुर, ललित, मनोरम एवं अलंकृत हैं। उदाहरण के लिए उनके द्वारा रचित निम्नलिखित श्लोकों का अवलोकन करें–

निरीक्ष्य विद्युन्नयनैः पयोदो मुखं निशायामभिसारिकायाः।
धारानिपातैः सह किन्नु वान्तश्चन्द्रोऽयमित्यार्ततरं ररास॥
ऐन्द्रं धनुः पाण्डुपयोधरेण शरद् दधानार्द्रनखक्षताभम्।
प्रसादयन्ती सकलंकमिन्दुं तापं रवेरभ्यधिकं चकार॥

---

१. नमः पाणिनये तस्मै यस्मादाविरभूदिह।
आदौ व्याकरणं, काव्यमनु जाम्बवतीजयम्॥

२. स्पृहणीयत्वचरितं पाणिनेरुपजातिभिः।
चमत्कारैकसाराभिरुद्यानस्येव जातिभिः॥

शुद्धस्वभावान्यपि संहतानि निनाय भेदं कुमुदानि चन्द्रः ।
अवाप्य वृद्धि मलिनात्मनात्मा जडो भवेत्कस्य गुणाय वक्रः ॥
उपोढरागेण विलोलतारकं तथा गृहीतं शशिना निशामुखम् ।
यथा समस्तं तिमि रांशुकं तया पुरोनुरागाद् गलितंन लक्षितम् ॥
प्रकाश्य लोकान् भगवान् स्वतेजसा, प्रभादरिद्रः सवितापि जायते ।
अहो चला श्रीर्बलमानदाऽप्यहो, स्पृशन्ति सर्वाहि दशा विपर्यये ॥

संस्कृत साहित्य में गीतिकाव्य का प्रामाणिक एवं स्वतन्त्र प्रथम ग्रन्थ महाकवि कालिदास का मेघदूत है। मेक्डानल ने मेघदूत को गीतिरत्न तथा हिरियन्ना ने इसे महत्तम सर्वश्रेष्ठ गीतिकाव्य बतलाया है। मेघदूत के पश्चात् यह गीकिाव्य की परम्परा निर्बाध गति से प्रवाहित होती हुई अद्यावधि अक्षुण्ण रूप से बहती चली आ रही है। महावीर प्रसाद द्विवेदी मेघदूत के सम्बन्ध में इस प्रकार लिखते हैं—"मेघदूत की कविता सर्वोत्तम कविता का बहुत ही अच्छा नमूना है। उसे वही अच्छी तरह समझ सकता है और उससे पूरा-पूरा आनन्द भी वही उठा सकता है जो स्वयं कवि है। कवि के हृदय को—कवि के काव्य मर्म को—जो जान सकते हैं वे भी एक प्रकार के कवि हैं।" कालिदास का ऋतुसंहार भी सुन्दर गीतिकाव्य हैं।

राजा सतवाहन हाल की महाराष्ट्री प्राकृत रचना गाथा सप्तशती प्राप्त होती है। यह रचना संस्कृत के मुक्तक गीतिकाव्यों की उपजीव्य रही है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित उद्धरण को देखें—

अहं अम्ह आअदो अज्ज कुलहराओ त्तिछेञ्छईजारं ।
सहसागअस्स तुरिअं पइणो कण्ठं मिलावेइ ॥

घटकर्पर का घटकर्परकाव्य नामक गीतिकाव्य २२ श्लोकों में उपनिबद्ध लघुसन्देश काव्य है। इनकी स्थिति १०० ई० पू० के लगभग मानी जाती है। उदाहरण के लिए एक श्लोक देखें—

किं कृपापि नास्ति कान्तया पाण्डुगण्डपतितालकान्तया ।
शोकसागरेऽद्य पातितां त्वद्गुणस्मरणमेव पाति ताम् ॥

भर्तृहरि संस्कृत गीति साहित्य के प्रमुख कवि हैं। इन्होंने नीतिशतक,

शृंगारशतक तथा वैराग्यशतक–इन तीन सुभाषित प्रधान गीतिकाव्यों की रचना की है। इनकी स्थिति छठी शताब्दी का उत्तरार्द्ध माना जा सकता है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित श्लोक को देखें–

यां चिन्तयामि सततं मयि सा विरक्ता
साऽप्यन्यमिच्छति जनं स जनोऽन्यसक्तः।
अस्मत्कृते च परिशुष्यति काचिदन्या
धिक् तां च तं च मदनं च इमां च मां च ॥

तथा–

उरसि निपतितानां स्रस्तधम्मिल्लकानां
मुकुलितनयनानां किञ्चिदुन्मीलितानाम्।
सुरतजनितस्वेदैः सार्द्रगण्डस्थलीनां
मधरमधु वधूनां भाग्वन्तः पिबन्ति ॥

अमरुकशतक के रचयिता अमरुक नामक कोई राजा थे। इसकी रचना ७०० ई० लगभग के मानी जाती है। इसके श्लोक अत्यन्त ही सरस एवं सुन्दर हैं। उदाहरण के निम्नलिखित श्लोक देखें–

निःशेषच्युतचन्दनं स्तनतटं निर्मृष्टरागोऽधरो
नेत्रे दूरमनञ्जने पुलकिता तन्वी तवेयं तनूः।
मिथ्यावादिनि ! दूति ! बान्धवजनस्याज्ञातपीडागमे
वापीं स्नातुमितो गतासि न पुनस्तस्याधमस्यान्तिकम् ॥

विज्जका राजा चन्द्रादित्य की रानी ने सुन्दर, सरस पद्यों की रचना का है। उदाहरण के लिए उनके निम्नलिखित पद्य का अवलोकन करें–

धन्यासि या कथयसि प्रियसङ्गमेऽपि
विस्रब्धचाटुशतकानि रतान्तरेषु।
नीवीं प्रति प्रणिहिते तु करे प्रियेण
सख्यः शपामि यदि किञ्चिदपि स्मरामि ॥

शृंगारतिलक किसी अज्ञात कवि की रचना है। इसमें अत्यन्त सरस एवं रोचक २३ पद्य हैं। कुछ विद्वान् इसे कालिदास की रचना मानते हैं।

निम्नलिखित सुन्दर पद्य को देखें–

इन्दीवरेण नयनं मुखमम्बुजेन,
कुन्देन दन्तमधरं नवपल्लवेन ।
अङ्गानि चम्पकदलैः स विधाय वेधाः,
कान्ते कथं घटितवानुपलेन चेतः ॥

महाकवि भल्लट का भल्लटशतक मुक्तक पद्यों का सुन्दर संग्रह है। इनकी स्थिति आठवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में मानी जा सकती है। उदाहरण के लिये निम्नलिखित श्लोक को देखें–

वाता वान्तु कदम्बरेणुबहला नृत्यन्तु सर्पद्विषः ।
सोत्साहा नवतोयदानगुरवो मुञ्चन्तु नाम घना
मग्नां कान्तवियोगदुःखदहने मां वीक्ष्य दीनाननां,
विद्युत्प्रस्फुरसि त्वमप्यकरुणे ! स्त्रीत्वे हि तुल्ये सति ॥

महाकवि रत्नाकर का वक्रोक्तिपञ्चाशिका पचास श्लोकों का वक्रोक्ति काव्य है। उनका एक वक्रोक्ति पद यहाँ प्रस्तुत है–

नो दीव्यामि सहामुनाहमधुना द्यूते प्रवीणो हरः,
सत्यं देवि हरोऽस्मि नैव तु पुनर्वीणा प्रकृष्टास्ति मे ।
केनागादि तवेदृशं शिरसि मे नास्त्येव नागादि भोः,
पार्वत्येति हतोत्तरो हरतु वः सूक्त्या विभुः कल्मषम् ॥

कवयित्री शीला भट्टारिका काश्मीर की रहने वाली थीं। इनका समय नवम शताब्दी ई० माना जा सकता है। उनके सरस एवं रोचक श्लोक को आचार्य मम्मट ने अपने काव्यप्रकाश में उत्तम काव्य के रूप में उद्धृत किया है–

यः कौमारहरः स एव हि वरस्ता एव चैत्रक्षपा–
स्ते चोन्मीलितमालतीसुरभयः प्रौढाः कदम्बानिलाः ।
सा चैवास्मि तथापि तत्र सुरतव्यापारलीलाविधौ,
रेवारोधसि वेतसीतरुतले चेतः समुत्कण्ठते ॥

जम्बू कवि का चन्द्रदूत और जिनशतक ये दो रचनायें उपलब्ध होत

हैं। महाकवि विल्हण की चौरपञ्चाशिका अत्यन्त सरस एवं आह्लादक है। इसके एक सरस श्लोक का रसास्वादन करें–

अद्यापि तां भुजलतार्पितकण्ठपाशां,
वक्षःस्थलं मम पिधाय पयोधराभ्याम्।
ईषन्निमीलितसलीलविलोचनान्ताम्,
पश्यामि मुग्धवदनां वदनं पिबन्तीम्॥

महाकवि जयदेव का गीतिगोविन्द संस्कृत कवितावनिता का शृंगार है। उनका स्थितिकाल ११०० ई० के लगभग माना जाता है। इनकी कविता अत्यन्त सरस एवं मधुर है। निम्नलिखित हृद्यपद्य के सुधारस का पान करें–

ललित-लवङ्गलतापरिशीलन–कोमल–मलयसमीरे
मधुकर–निकरकरम्बितकोकिलकूजित-कुञ्जकुटीरे॥
विहरति हरिरिह सरस-वसन्ते
नृत्यति युवतिजनेन समं सखि विरहिजनस्य दुरन्ते॥

कविवर नरहरि का शृङ्गारशतक अत्यन्त सुन्दर गीतिकाव्य है। निम्नलिखित रोचक पद्य को देखें–

अक्षान् मुञ्चति वल्लभे वलयति स्निग्धान्कटाक्षानियं,
दायं स्थापयितुं नतस्य वदनं संस्तूय संचुम्बति॥
सारीं मारयति प्रिये रसभृता भावेन सीत्कारिणी,
नारी सारसलोचना नरहरे सारीफलैः खेलति॥

कविराज धोयी ने सरस पवनदूत की रचना की। इनकी स्थिति काल बारहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध है। ये कालिदास के मेघदूत से प्रभावित हैं। इन्होंने मेघदूत की तरह ही मन्दाक्रान्ता छन्द का प्रयोग किया है। इसमें राजा लक्ष्मणसेन और कुवलयवती की कथा वर्णित है। कुवलयवती की वियोगजन्य कृशता कालिदास की यक्षिणी के समान ही वर्णित है–

मुष्टिग्राह्यं किमपि विधिना कुर्वता मध्यभागं,
मन्ये बाला कुसुमधनुषो निर्मिता कार्मुकाय।

राजन्नुच्चैर्विरहजनितक्षामभावं वहन्ती,
जाता संप्रत्यहह सुतनु सा च मौर्वीलतेव ॥

गोवर्धनाचार्य की आर्या सप्तशती अत्यन्त ही रोचक गीतिकाव्य लतिका है, जो अपनी सरसता एवं भावुकता के लिये प्रसिद्ध है। उदाहरण के लिये निम्नलिखित पद्य को पढ़ें–

दलिते पलालपुञ्जे वृषभं परिभवति गृहपतौ कुपिते।
निभृतनिभालितवदनौ हलिकवधूदेवरौ हसतः ॥

नारी के विभिन्न रूपों का वर्णन करते हुये वे लिखते हैं–

तल्पे प्रभुरिव गुरुरिव मनसिजतन्त्रे श्रमे भुजिष्येव।
गेहे श्रीरिव गुरुजनपुरतो मूर्तेव सा व्रीडा ॥

विक्रम का नेमिदूत और धनदराज का शृङ्गारशतक सुन्दर गीतिकाव्य हैं। शृङ्गारशतक के एक उद्धरण को देखें–

मा गाः कान्त निशामुखे परगृहं मा गास्ततोऽहर्मुखे,
वेश्मास्माकमिदं द्वयं वितनुते चायुःक्षितिर्योषिताम्।
मा भूत्काञ्चनवञ्चितेति रमणी मा भूदहो खण्डिता,
मुग्धा भावमयाकार रमणीत्थं वारयन्ती पतिम् ॥

दैवज्ञ सूर्य कवि का रामकृष्णविलोमकाव्य, भट्टारक ज्ञानभूषण का तत्त्वतरंगिणी, रुद्र कवि का भावविलास तथा माधवभट्ट की दानलीला ये प्रसिद्ध गीतिकाव्य हैं। पण्डितराज जगन्नाथ के सुधालहरी, अमृतलहरी, लक्ष्मीलहरी, करुणालहरी और गङ्गालहरी ये पाँच गीतिकाव्य हैं। पण्डितराज का भामिनी-विलास अत्यन्त लोकप्रिय काव्य है। निम्नलिखित उद्धरण देखें–

परिष्वजन् रोषवशात् तिरस्कृतः प्रियो
मृगाक्ष्या शयितः पराङ्मुखः।
किं दुःखितोऽसाविति कां दिशीकया,
कदाचिदाजृम्भ्य चिराय सस्वजे ॥

रूपगोस्वामी का हंसदूत, वेंकटाध्वरि का लक्ष्मीसहस्र, श्रीकृष्णदेव सार्वभौम का पदाङ्कदूत, शिवभक्तदास का भिक्षाटन काव्य, नन्दकिशोर चन्द्र

गोस्वामी का शुकदूत आदि कतिपय सुन्दर गीतिकाव्य पाये जाते हैं। विश्वेश्वर पाण्डेय का कवीन्द्रकर्णाभरणम् और रोमावलीशतकम् सुन्दर गीतिकाव्य हैं। रोमावलीशतक के एक सरस पद्य को देखें—

त्वन्मध्यमं प्रियतमे वियता समानं
मन्दाकिनीव समुदञ्चति हारवल्ली।
पीयूषभानुरिव नायकरम्यरत्नं
रोमावली तनुबलाहकवीथिकेव ॥

गोस्वामी जनार्दन भट्ट का शृङ्गारशतक अत्यन्त सरस प्रसाद गुण सम्पन्न एवं रोचक गीतिकाव्य है। इसी प्रकार यह गीतिकाव्य की सरस काव्यधारा आज भी प्रवाहित होती चली आ रही है। इन गीतिकाव्यों के अतिरिक्त संस्कृत में सुभाषितसंग्रहों का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। कवीन्द्ररससमुच्चय संस्कृत का प्राचीन सूक्तिग्रन्थ है। सदुक्तिकर्णामृत श्रीधरदास कृत प्रसिद्ध सुभाषित ग्रन्थ है। इसका सम्पादन डा० हरिदत्त शास्त्री ने किया है। इसी प्रकार सूक्तिमुक्तावली, शार्ङ्गधर-पद्धति, पद्यावली, पद्यरचना, काव्यसंग्रह, सुभाषितरत्नभाण्डागार, उद्भटसागर आदि प्रसिद्ध सुभाषित संग्रह हैं।

महाकवि कालिदास

महाकवि कालिदास संस्कृत साहित्य के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। उन्होंने अपनी प्रतिभा के द्वारा शाश्वत, सनातन भारती का साज-शृंगार किया है। उनका रससिक्त वाङ्मय युग-युगों के सहृदयों को आनन्द से आप्यायित करता रहेगा। वे वैदिककाल से लेकर अपने युग तक जिस शाश्वत, चिरन्तन विचारों और भावों को चित्रित कर गये हैं, वे सदैव जीवन्त बने रहेंगे। यद्यपि कालिदास के काव्यों में जीवन की समस्त अनुभूतियों के होने के कारण सभी रस हैं फिर भी उन्होंने शृंगार रस को ही प्रधानता दी है। उनका शृंगार संयोग से मधुर और वियोग से करुणाप्लावित है। सच्चे अर्थ में वे सौन्दर्य और प्रेम के कला प्रधान कवि हैं। अरविन्द ने उनके विषय में अपने विचार इस प्रकार प्रकट किये हैं कि "प्रकृति में प्राप्य ऐंद्रिय जीवन का सजीव एवं सशक्त अनुवचन, तथा सौन्दर्य की महत्ता से पूर्ण मानव जीवन के तत्त्वों को ऐंद्रिय

आलोक में प्रेषित कर उन्हें रस स्निग्ध पदावली में अभिव्यक्ति प्रदान करना, यही कालिदास की प्रथम एवं अन्तिम रचना की महत्ता है।" संस्कृत काव्य-क्षेत्र में महाकवि कालिदास की बहुमुखी प्रतिभा सम्यक् रूप से प्रस्फुटित हुई है। वे वस्तुतः अपनी अद्भुत काव्य-कला, रस-व्यंजना एवं मौलिक उद्भावना शक्ति के द्वारा संस्कृत के सभी महाकवियों से आगे बढ़ जाते हैं। यही कारण है कि भारतीय तथा पाश्चात्य सभी विद्वान् एक स्वर से कवित्व के क्षेत्र में कालिदास की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करते हैं। यद्यपि संस्कृत साहित्य में अन्य भी कवि तथा काव्य हैं। अन्यत्र काव्यत्व की उत्कृष्टता तो स्वीकार की गई है परन्तु कवित्व की नहीं। यहाँ काव्यत्व से पांडित्य की ओर संकेत है तथा कवित्व से सहृदयता एवं रसिकता को समझना चाहिए। यही कारण है कि "माघे सन्ति त्रयो गुणाः" इस उक्ति के द्वारा माघ के काव्य की प्रशंसा की गई है। क्योंकि उसमें पाण्डित्य का पुट है परन्तु कविमण्डली में कालिदास का ही सादर स्मरण किया गया है जैसा कि निम्नलिखित श्लोक से ध्वनित होता है—

"पुष्पेषु चम्पा नगरीषु काञ्ची
नदीषु गंगा नृवरेषु रामः ।
नारीषु रम्भा पुरुषेषु विष्णुः
काव्येषु माघः कविकालिदासः ॥"

महाकवि कालिदास अपूर्व शब्द शिल्पी एवं व्यंजना व्यापार के पण्डित हैं। इन दोनों ही काव्यकला के उपकरणों के द्वारा उन्होंने अपनी कविता-वनिता के विलास को सरसाया है, जिसका रसास्वादन सौभाग्यशाली को ही सम्भव है। उनकी कविता की सरसता एवं मधुरता से प्रभावित होकर ही आचार्य उद्भट लिखते हैं—

"माहिषं दधि सशर्करं पयः कालिदासकविता नवं वयः ।
शारदेन्दुरबला च कोमला स्वर्गशेषमुपभुञ्जते जनाः ॥"

उन्होंने काव्य में मानव हृदय का सुसम्बद्ध प्रतिनिधित्व किया है। यही कारण है कि उनकी समस्त योजनायें काव्य सिद्धि के लिए हैं, न कि उनका

काव्य योजनाओं की विशिष्ट सिद्धि के लिये है। उनके शब्द-सौष्ठव से प्रभावित होकर श्री शन्तिप्रिय द्विवेदी ने ठीक ही कहा है कि--"उनके काव्य शब्द प्रयोगों के लिए नहीं, शब्द काव्य के लिये हैं।" उनकी सरल सूक्तियों से बाण जैसे कलाकार भी प्रभावित हो जाते हैं। जिस प्रकार मकरन्द रस सम्भृत मञ्जरी से भ्रमरगण आकृष्ट हो जाते हैं वैसे ही शृंगार रस सम्भृत कालिदास की सूक्तियों से सहृदयों का भी आकृष्ट होना स्वाभाविक ही है। इसी को लक्ष्यकर महाकवि बाणभट्ट कहते हैं—

निर्गतासु न वा कस्य कालिदासस्य सूक्तिषु।
प्रीतिर्मधुरसान्द्रासु मञ्जरीष्विव जायते ॥

कालिदास का जीवन-वृत्त

कवि कुलगुरु कालिदास ने अपनी कृतियों में अपने जीवनवृत्त के सम्बन्ध में कुछ नहीं लिखा है। केवल अनुमान एवं कल्पना के आधार पर विद्वानों ने उनके सम्बन्ध में अनेक प्रकार से सोचा-विचारा है। प्रामाणिक पहलुओं के अभाव में उनके सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ भी कह सकना कठिन है। फिर भी प्रचलित किंवदन्तियों के आधार पर उनके जीवनवृत्त के सम्बन्ध में कुछ प्रस्तुत किया जा रहा है।

एक किंवदन्ती के अनुसार महाकवि कालिदास प्रारम्भ में अत्यन्त ही मूर्ख व्यक्ति थे। निम्नलिखित प्रकार से उन्हें पूर्ण पाण्डित्य की प्राप्ति हुई थी। कालिदास के ही समय में राजा शारदानन्द की कुमारी पुत्री विद्योत्तमा थी। वह अत्यन्त विदुषी एवं अनिन्द्य सौन्दर्य सन्दोह से संयुक्त थी। उसने प्रतिज्ञा की थी कि जो पण्डितप्रवर उसे शास्त्रार्थ में पराजित कर देगा, उसी को वह पति रूप में स्वीकार कर लेगी। उसे प्राप्त करने के लिए अनेक पण्डितों ने प्रयत्न किया परन्तु विद्योत्तमा के पाण्डित्यप्रकर्ष के समक्ष बड़े से बड़े भी विद्वान् परास्त हो गये। अतः पण्डितों ने निश्चय किया कि विद्योत्तमा का विवाह अत्यन्त मूर्ख व्यक्ति से करायेंगे। ऐसा सोचकर वे महामूर्ख के अन्वेषण में लग गये। खोजते-खोजते एक दिन उन्होंने देखा कि एक महामूर्ख जिस वृक्ष की डाल पर बैठा हुआ है उसी को जोड़ पर से काट रहा है। विद्वानों ने विचार

किया कि ऐसा महामूर्ख अन्यत्र कहाँ मिलेगा ? उन्होंने उस मूर्ख से कहा कि हम तुम्हारा विवाह अत्यन्त सुन्दरी कन्या से करवा देंगे; जिसे सुनकर वह अत्यन्त प्रसन्न हुआ। विद्वानों ने कालिदास से कहा कि जब हम तुम्हें उस कन्या के पास ले जायें तो तुम बोलना नहीं ! कालिदास ने उसे तत्काल ही स्वीकार कर लिया, इसके पश्चात् वे विद्वान् लोग उस मूर्ख व्यक्ति को विद्योत्तमा के पास ले गये और कहा कि ये हमारे गुरुदेव हैं, जिन्होंने मौनव्रत धारण कर रखा है। ये सकलशास्त्रपारङ्गत और सभी विद्याओं में प्रवीण हैं परन्तु मौन व्रतधारी होने के कारण ये सांकेतिक शास्त्रार्थ करेंगे। विद्योत्तमा ने पण्डितों की बात मान ली और शास्त्रार्थ प्रारम्भ हो गया। सर्वप्रथम विद्योत्तमा ने एक उँगली उठायी जिसका अर्थ था कि ईश्वर एक है। परन्तु उस महामूर्ख ने समझा कि यह एक उँगली उठाकर एक आँख को फोड़ देने का संकेत कर रही है इसलिए उसने सोचा कि जब यह मेरी आँख फोड़ने का संकेत कर रही है, तो क्यों न इसकी दोनों आँखों को फोड़ने का संकेत किया जाय और ऐसा विचार कर उसने दो उँगलियाँ उठा दीं। जिस पर टिप्पणी करते हुये पण्डितों ने कहा कि विद्योत्तमा ने एक ईश्वर का संकेत किया है परन्तु हमारे गुरुदेव जी ने उसके जीवात्मा और परमात्मा यह दो भेद प्रतिपादित किये हैं। इसके पश्चात् विद्योत्तमा ने पाँच उँगली उठाकर यह संकेत किया कि ज्ञानेन्द्रियाँ पाँच हैं; परन्तु उस मूर्ख व्यक्ति ने समझा कि पाँचो उँगलियों को उठाकर यह हाथ मारने का संकेत कर रही है, तो क्यों न पाँचों उँगलियों को इकट्ठा कर घूसा मारने की सोची जाय और ऐसा विचार कर ही उसने पाँचों उँगलियों को मिलाकर घूँसा बाँधा, परन्तु पण्डितों ने इसकी मीमांसा इस प्रकार की कि विद्योत्तमा ने पाँच ज्ञानेन्द्रियों की ओर संकेत किया है। परन्तु हमारे गुरुदेव जी का कहना है कि उनको नियन्त्रित करने से ही कल्याण की प्राप्ति हो सकती है। इस प्रकार अनेक चातुर्यपूर्ण मनगढ़न्त सांकेतिक उत्तरों की व्याख्या के द्वारा पण्डितों ने विद्योत्तमा का उस मूर्ख व्यक्ति के साथ विवाह करवा दिया।

विवाह होने के पश्चात् जब दम्पति एक दिन भवन के ऊपरी प्रकोष्ठ पर

वैठे हुये थे; उसी समय वहाँ से एक ऊँट निकल रहा था जिसे देखकर कालिदास ने उट्र-उट्र इस प्रकार उच्चारण किया । जिसे सुनकर विद्योत्तमा कालिदास की मूर्खता को समझ गयी और पण्डितों के षड्यन्त्र से हुये विवाह पर अत्यन्त दु:खित हुई । क्रोधाभिभूत होकर उसने कालिदास को ऊपर से ढ़केल दिया । कहते हैं कि कालिदास कालीदेवी के ऊपर जा गिरे, जिससे उनकी जीभ कटकर देवी के ऊपर गिर पड़ी और भगवती प्रसन्न हो गयीं और बोली 'वरं ब्रूहि' । मूर्ख कालिदास के मुख से विद्या शब्द निकला, देवी ने एवमस्तु कह दिया । जिसके फलस्वरूप कालिदास अत्यन्त विद्वान् एवं रससिद्ध कवि हो गये । पूर्ण पाण्डित्य प्राप्त कर लेने के बाद वे विद्योत्तमा के घर पहुँचे और कहा– 'अनावृतकपाटं द्वारं देहि" अर्थात् दरवाजे के किवाड़ खोलो विद्योत्तमा ने कहा–"अस्ति कश्चिद् वाग्विशेष:" अर्थात् क्या वाणी में कुछ विशेषता आ गयी है ? कालिदास ने अपनी वाणी की विशेषता को दिखलाने के लिए अस्ति पद से "अस्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा" इस प्रकार से प्रारम्भ करके कुमारसम्भव नामक महाकाव्य की रचना की । कश्चिद् पद से 'कश्चित्कान्ताविरहगुरुणा' से प्रारम्भ होने वाले मेघदूत नामक खण्ड काव्य की रचना की और वाक् पद से "वागर्थाविव सम्पृक्तौ" से प्रारम्भ होने वाले रघुवंश नामक महाकाव्य की रचना की ।

परन्तु विद्वान् लोग इस किंवदन्ती को निरर्थक बतलाते हैं । क्योंकि एक विदुषी राजपुत्री बिना छान-बीन किये किसी साधारण पुरुष से विवाह कर ले ऐसा होना कठिन है । साथ ही साथ "अस्ति कश्चिद्वाग्विशेष:" विद्योत्तमा के प्रश्न के उत्तर में लिखे गये ग्रन्थों में कालिदास का सर्वोत्कृष्ट नाटक रत्न 'अभिज्ञानशाकुन्तल' नही आता है । इन तथ्यों के आधार पर हम कह सकते हैं कि उपर्युक्त किंवदन्ती कालिदास के जीवन से सम्बन्धित हो ऐसा निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है ।

इसके अतिरिक्त कालिदास के विषय में एक अन्य किंवदन्ती प्रसिद्ध है । इसके अनुसार कालिदास को लंका के राजा कुमारदास का मित्र माना गया है । कहते हैं कि कुमारदास ने एक वेश्या को एक समस्या दी और उसकी

पूर्ति करने पर उसे प्रचुर सुवर्ण देने के लिए कहा, यह समस्या इस प्रकार थी–

'कमले कमलोत्पत्तिः श्रूयते न च दृश्यते।"

अर्थात् कमल में कमल की उत्पत्ति सुनी तो जाती है परन्तु देखी नहीं जाती है। रसिक कवि कालिदास भी उस वेश्या के यहाँ पहुँचे। उस वेश्या ने कालिदास के समक्ष उक्त समस्या रखी। कवि कुलगुरु कालिदास ने बात ही बात में समस्या की पूर्ति कर दी–

'बाले तव मुखाम्भोजे कथमिन्दीवरद्वयम्'॥

अर्थात् हे बाले ! तुम्हारे मुखकमल पर ये दो (नयन) कमल कैसे हैं ? इस प्रकार कालिदास के द्वारा समस्या की पूर्ति किये जाने पर उस वेश्या ने स्वर्ण के लोभ में आकर कालिदास की हत्या कर दी और उस श्लोक को लेकर कुमारदास के पास जा पहुँची। उस रचना को सुनकर कुमारदास तुरन्त ही ताड़ गये कि यह रचना कालिदास की है। उन्होंने वेश्या को दण्ड की धमकी दी, जिससे डर कर वेश्या ने वृत्तान्त को कह सुनाया। कुमारदास कालिदास के वध को सुनकर अत्यन्त दुःखित हुआ और कालिदास की ही चिता में जलकर मर गया।

यह किंवदन्ती भी प्रामाणिक पहलुओं के अभाव में कल्पित ही लगती है। यद्यपि कालिदास ने वेश्याओं का सुन्दर वर्णन किया है फिर भी प्रामाणिक तथ्यों के अभाव में वेश्या के द्वारा हुई मृत्यु पुष्ट नहीं होती है, केवल अनुमान एव कल्पना के द्वारा ही कुछ कहा जा सकता है।

कालिदास की जन्मभूमि

कालिदास के जन्मस्थान के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है, क्योंकि उन्होंने अपनी जन्मभूमि की स्पष्ट चर्चा कहीं नहीं की है। कालिदास लोकप्रिय कवि हैं अतएव उनके जन्मस्थान को विद्वानों ने अपने-अपने प्रान्त में बतलाया है। कुछ विद्वान् उनका जन्मस्थान मुर्शिदाबाद के गड्डा सिंगरू नामक ग्राम में बतलाते हैं। बंगाली विद्वानों का यह तर्क है कि महाकवि कालिदास काली के उपासक रहे हैं और काली की उपासना का केन्द्र बंगाल ही रहा है। अतः काली के प्रसाद से काव्यप्रतिभा को प्राप्त करने वाले महाकवि कालि-

दास का जन्म स्थान बंगाल ही रहा होगा। परन्तु अधिकांश विद्वान, इससे सहमत नहीं हैं।

काश्मीर के विद्वानों ने महाकवि कालिदास को काश्मीर में जन्म लेने वाला बतलाया है। उनका तर्क है कि कालिदास ने हिमालय एवं हिमालय पर्वत से सम्बन्धित स्थानों का सुन्दर वर्णन किया है। अतः कालिदास काश्मीरी हैं। इसके विपक्ष में बोलने वाले विद्वानों का कथन है कि 'राजतरंगिणी' में काश्मीरी कवियों के वर्णन में कालिदास का नाम नहीं लिया गया है। अतः केवल हिमालय के सुन्दर चित्रण से कालिदास को काश्मीरी मान लेना उचित नहीं है। हिमालय वर्णन के अतिरिक्त कालिदास के अन्य वर्णन भी सरस, रोचक एवं हृद्य हैं तथा अन्य कवियों ने भी, जो कि काश्मीरी नहीं हैं, हिमालय का सुन्दर वर्णन किया है। अतः हिमालय के वर्णन से कालिदास को काश्मीरी नहीं कहा जा सकता है। हिमालय के सुन्दर वर्णन में उसका सौन्दर्य ही कारण है। हिमालय प्रकृति की रमणीक स्थली है और कवि का प्रकृति वर्णन में अनुराग है। अतः कालिदास को काश्मीरी मानना न्यायसंगत नहीं है।

कुछ विद्वान् कालिदास को विदर्भ में जन्म लेने वाला बतलाते हैं। अपने पक्ष को पुष्ट करने में वे तर्क देते हैं कि कालिदास के ग्रन्थों में अनेक स्थलों पर विदर्भ का उल्लेख मिलता है जिससे कालिदास का विदर्भ प्रेम स्पष्ट परिलक्षित होता है, अतः उन्हें विदर्भ का होना चाहिये। इस तथ्य के खण्डन में प्रतिपक्षियों का कथन है कि कालिदास ने विदर्भ का विशेष वर्णन न कर सामान्य ही वर्णन किया है, अतः वे विदर्भ के नहीं हो सकते हैं।

महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री का विचार है कि कालिदास का जन्म विदिशा में होना चाहिये, क्योंकि उन्होंने विदिशा तथा उसके समीप स्थित प्राकृतिक दृश्यों का सुन्दर चित्रण किया है, परन्तु विद्वानों को यह मत भी मान्य नहीं है।

मैथिल विद्वान् कालिदास को मिथिला में जन्म लेने वाला बतलाते हैं। दरभङ्गा जिला के अन्तर्गत 'उच्चैठ' नामक ग्राम के पास दुर्गा की एक मूर्ति

और समीप में ही एक टीला है । कुछ लोगों का विचार है कि यहीं पर कालिदास ने दिव्य ज्ञान की प्राप्ति की थी, परन्तु इससे भी अधिकांश विद्वान् सहमत नहीं हैं ।

महाकवि कालिदास ने उपर्युक्त सभी स्थानों की अपेक्षा उज्जयिनी का वर्णन अत्यन्त आदर के साथ किया है। जिस सरसता, रोचकता एवं लगाव के साथ उज्जयिनी का वर्णन किया है उस रूप में अन्य किसी नगरी का नहीं । मेघदूत नामक खण्डकाव्य में कवि ने उज्जयिनी का वर्णन करते हुये उसके प्रति विशेष पक्षपात दिखलाया है । यद्यपि मेघ के लिये मार्ग कुछ टेढ़ा पड़ जाता है फिर भी यक्ष 'श्री विशाला विशाला' (उज्जयिनी) को देखने के लिये उससे आग्रह करता है—

वक्रः पन्था यदपि भवतः प्रस्थितस्योत्तराशां
सौधोत्सङ्गप्रणयविमुखो मा स्म भूरुज्जयिन्याः ।
विद्युद्दामस्फुरितचकितैस्तत्र पौराङ्गनानां
लोलापाङ्गैर्यदि न रमसे लोचनैर्वञ्चितोऽसि ॥

अर्थात् हे मेघ ! उत्तर दिशा की ओर प्रस्थान करते हुए यद्यपि आपका मार्ग टेढ़ा पड़ेगा तथापि उज्जयिनी के महलों की अटारियों का परिचय प्राप्त करने के प्रेम से विमुख न होना । वहाँ नगर की सुन्दरी स्त्रियों के बिजली की कौंध से चकित एवं चञ्चल प्रान्त भागों वाले नेत्रों से यदि रमण न किया तो अपना जीवन व्यर्थ ही समझना ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कवि ने उज्जयिनी के प्रति हार्दिक मोह दिखलाया है । यहाँ तक कि वहाँ की छोटी-छोटी नदियों एवं अन्य विशेषताओं को भी प्रस्तुत किया है । इस प्रकार उज्जयिनी के प्रति कवि के विशेष पक्षपात और भौगोलिक परिचय के आधार पर अधिकांश विद्वानों ने उज्जयिनी को ही कालिदास का निवास स्थान माना है ।

कालिदास का जीवनवृत्त

महाकवि कालिदास ने अपनी रचनाओं में अपने परिचय की गन्ध तक

नहीं आने दी है। उनके ग्रन्थों में उनसे सम्बन्धित किसी भी वृत्त का स्पष्ट उल्लेख नहीं है अतएव उनके जन्म स्थान के ही समान उनके जीवनवृत्त के सम्बन्ध में भी अनेक प्रकार की किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं। कुछ विद्वानों का विचार है कि वे ब्राह्मण बालक थे। बाल्यावस्था में ही उनके माता-पिता का स्वर्गवास हो गया था और उनका पालन-पोषण एक ग्वाले ने किया था। अट्ठारह वर्ष तक उन्होंने कुछ भी पढ़ा लिखा नहीं था।

महामहोपाध्याय वी० वी० मिराशी ने कालिदास को ब्राह्मण बतलाया है। उनके ग्रन्थों के परिशीलन से यह सिद्ध होता है कि वे जन्म से ब्राह्मण थे। उन्होंने अपने ग्रन्थों में शिव के प्रति विशेष आस्था प्रकट की है, अत: वे शिव भक्त रहे होंगे। उनके ग्रन्थों में ऋषियों के आश्रमों का सुन्दर वर्णन मिलता है जिससे ऐसा लगता है कि कालिदास ने भारतवर्ष के किसी गुरुकुल में निवास कर विधिवत् विद्याध्ययन किया था। उनके ग्रन्थों में आए हुये वर्णनों से ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने भारतवर्ष में सम्यक् पर्यटन किया होगा। उत्तर भारत के प्राकृतिक दृश्यों से वे अधिक प्रभावित हैं। उनके ग्रन्थों के सूक्ष्म अनुशीलन यह ज्ञात होता है कि उनका जीवन भौतिक दृष्टि से अत्यन्त सुखमय रहा होगा। उन्हें किसी प्रकार का आर्थिक कष्ट नहीं था क्योंकि उन्होंने दरिद्रता आदि से उद्भूत कष्टों का वर्णन नहीं किया है। राजा तथा राजकीय वृत्तों के वर्णन से यह स्पष्ट हो जाता है कि उनका सम्बन्ध राजपरिवारों से रहा होगा। उन्होंने सौन्दर्य को अत्यधिक महत्त्व दिया है और स्थान-स्थान पर स्त्रीसौन्दर्य का वर्णन किया है। शृंगार रस तो उनके काव्यों की आत्मा के रूप में उपस्थित हुआ है।

इससे यह सिद्ध होता है कि कालिदास का जीवन विलासमय रहा होगा। इसका अर्थ यह नहीं है कि वे कामुकता और विषय-वासना को ही जीवन का उद्देश्य मानते हों; क्योंकि स्थान-स्थान पर उन्होंने मर्यादा के आदर्श को सुरक्षित रक्खा है। वे कहींभीमर्यादा का अतिक्रमण नहीं करते हैं।

उन्होंने वेदों, ब्राह्मणग्रन्थों, उपनिषदों, दर्शनों, रामायण, महाभारत, पुराणों, आयुर्वेद, धनुर्वेद, अर्थशास्त्र, धर्मशास्त्र, नीतिशास्त्र, संगीतशास्त्र,

कामशास्त्र, व्याकरण, छंद शास्त्र, काव्यशास्त्र, ज्योतिष आदि का गहन अध्ययन किया था। वे चित्रकला से भी परिचित थे। उन्होंने पटचित्र फलकचित्र, और भित्तिचित्रों का भी उल्लेख किया है, जिससे उनकी चित्र-कला अभिज्ञता प्रकट होती है। वे लौकिक आचारों एवं व्यवहारों से भली-भाँति परिचित थे। उन्हें भूगोल का अच्छा ज्ञान था। उनका मेघदूत नामक खण्डकाव्य भौगोलिक तथ्यों से परिपूर्ण है। उन्होंने आध्यात्मिक एवं आधिभौतिक दोनों ही पहलुओं को महत्त्व देते हुये श्रेय एवं प्रेय दोनों के प्रति समान पक्षपात दिखलाया है।

उनकी काव्य प्रतिभा तो असाधारण रही है। काव्य जगत् में वे देदीप्य-मान भगवान् भास्कर के समान प्रोद्भासित हुए हैं। उनके नाम ने अपूर्व प्रसिद्धि पायी है।

इस प्रकार के कविकुलकुमुदसुधाकर कविताकामिनी के विलास कवि कुलगुरु कालिदास इस मर्त्यलोक को छोड़कर दिव्यलोक को कब प्रस्थान किये हैं ? यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है। फिर भी कतिपय विद्वान् गहनगवेषणा के द्वारा यह सिद्ध करते हैं कि उन्होंने कम से कम पचपन वर्ष की आयु अवश्य ही प्राप्त की होगी।

उपर्युक्त समस्त वृत्त सत्य ही हों ऐसा नहीं कहा जा सकता है; क्योंकि ये तथ्य, कल्पना एवं अनुमान के सहारे ही प्रस्तुत किये गये हैं।

कालिदास का समय

यह पहले ही बतलाया जा चुका है कि महाकवि कालिदास ने अपने काव्यों में अपने से सम्बन्धित किसी भी विषय का उल्लेख नहीं किया है। अतएव उनके स्थितिकाल के विषय में भी विद्वानों में मतभेद है। निश्चित प्रमाणों के अभाव में केवल अनुमान, कल्पना एवं जनश्रुतियों के आधार पर ही उनके समय के विषय में जो मत प्रस्तुत किये गये हैं, उन्हें पूर्णरूप से निर्णायक नहीं कहा जा सकता है। महाकवि कालिदास के स्थितिकाल के विषय में चार मत प्रमुख हैं—

१. छठी शताब्दी का मत
२. गुप्त कालीन मत
३. ई० पू० द्वितीय शताब्दी का मत
४. ई० पू० प्रथम शताब्दी का मत

१. **छठीं शताब्दी का मत**—फर्गुसन महोदय का विचार है कि उज्जेयिनी के राजा हर्ष विक्रमादित्य ने ५४४ ई० में शकों को पराजित कर अपनी विजय के उपलक्ष्य में विक्रम सम्वत् चलाया था और अपने नाम के साथ उसने परमेश्वर, राजाधिराज आदि शब्द भी जोड़ दिये थे। हर्ष विक्रमादित्य ने इस सम्वत् को प्रतिष्ठित करने के लिए उसे ६०० वर्ष पहले से चलाकर उसका आरम्भ ५७ ई० पू० माना। अतः इस मत के अनुसार कालिदास की स्थिति का समय छठी शताब्दी ठहरता है। इस मत की पुष्टि के लिए विद्वान् यह तर्क देते हैं कि कालिदास के काव्यों में यवन, शक, हूण आदि जातियों के नाम आये हैं। हूणों ने ५०० ई० में भारत पर आक्रमण प्रारम्भ किया था। अतएव कालिदास की स्थिति इसके पश्चात् ही होनी चाहिए।

इसके अतिरिक्त छठी शताब्दी में स्थित प्रख्यात ज्योतिषाचार्य वराहमिहिर ने वर्षा-ऋतु का प्रारम्भ आषाढ़ के महीने से माना है। कालिदास ने भी मेघदूत में आषाढ़ से ही वर्षाऋतु का प्रारम्भ माना है। एतदतिरिक्त कालिदास ने अन्य स्थानों पर भी वराहमिहिर की 'बृहत् संहिता' से अनेक ज्योतिषशास्त्र के सिद्धांतों को ग्रहण किया है। इससे यह पता चलता है कि कालिदास और वराहमिहिर समकालीन थे या उसके कुछ पश्चात् हुये थे। इससे "धन्वन्तरि······विक्रमस्य ॥" इस श्लोक में कालिदास तथा वराहमिहिर को विक्रमादित्य का 'नवरत्न' कहा जाना भी सत्य सिद्ध होता है।

महाकवि कालिदास ने अपने मेघदूत में निचुल और दिङ्नाग शब्दों का प्रयोग किया है जिससे कतिपय विद्वान् उन्हें निचुल और दिङ्नाग के समकालीन मानते हैं। आचार्य दिङ्नाग की स्थिति छठी शताब्दी में रही है। अतः कालिदास का भी वही समय सिद्ध होता है।

'ज्योतिर्विदाभरण' नामक ग्रन्थ के रचयिता कालिदास शकारि विक्रमादित्य की सभा के नवरत्नों में थे। इसी ग्रन्थ में ऐसा कहा गया है। इस ग्रन्थ की आलोचना के आधार पर इसका रचनाकाल ५८० ई० ठहरता है। इससे यह सिद्ध होता है कि महाकवि कालिदास ६०० ई० में स्थित यशोवर्मन्, विष्णुवर्धन के सभाकवि थे।

आलोचना—उपर्युक्त चारों मतों के विरोध में युक्तियुक्त आपत्तियाँ प्रस्तुत की गयी हैं—

उज्जयिनी के राजा हर्ष विक्रमादित्य के द्वारा चलाये गये सम्वत् को ६०० वर्ष पूर्व से ही क्यों चलाया गया ? इसका सम्यक् समाधान फर्गुसन के पास नहीं है। इसके अतिरिक्त ५४४ ई० से पूर्व मालव सम्वत् ५२९ और विक्रम सम्वत् ४३० के प्रयोग मिलते हैं। इस प्रकार फर्गुसन का उपर्युक्त काल्पनिक मत प्रभावहीन हो जाता है।

आषाढ़ मास के वर्षा-ऋतु के प्रारम्भ मानने के आधार पर कालिदास और वराहमिहिर को जो समकालिक बतलाया गया है वह भी औचित्य नहीं रखता, क्योंकि आषाढ़ से वर्षा-ऋतु के प्रारम्भ की मान्यता वराहमिहिर के भी पहले से चली आ रही है। अतः यह मत भी निरर्थक ही है।

मेघदूत के "स्थानादस्मात्[1] – – – इस श्लोक के आधार पर कालिदास को दिङ्नाग का समकालीन मानना भी ठीक नहीं है, क्योंकि पहले तो बौद्ध दार्शनिक के साथ एक कवि की प्रतिस्पर्द्धा का कोई कारण नहीं दिखायी पड़ता है और दूसरे दिङ्नाग का स्थिति काल छठी शताब्दी न होकर चौथी शताब्दी रहा है।

ज्योतिर्विदाभरण जैसे अप्रामाणिक ग्रन्थ के आधार पर उसके साथ को जोड़ना न्याय नहीं है, क्योंकि कुमारसम्भव तथा ज्योतिर्विदाभरण में भाषा विषयक साम्य नहीं मिलता है।

---

१. "स्थानादस्मात्सरसनिचुलादुत्पतोदङ्मुखः खं,
दिङ्नागानां पथि परिहरन् स्थूलहस्तावलेपान्।" (मेघदूत पूर्व १४)

२. गुप्तकालीन मत–कालिदास की स्थिति पाँचवी शताब्दी में रही है ऐसा कुछ विद्वानों का विचार है। प्रो० के० बी० पाठक का अभिमत है कि कालिदास स्कन्दगुप्त विक्रमादित्य के समकालीन थे। उनका कथन है कि महाकवि कालिदास ने रघुवंश के चतुर्थ सर्ग में रघु के दिग्विजय को वर्णित करते हुये कहा है कि रघु ने वंक्षु नामक नदी के किनारे हूणों को पराजित किया था। वाल्हीक देश में बहने वाली आक्सस नदी का ही दूसरा नाम वंक्षु नदी था। इसी नदी के तट पर हूणों ने ४५० ई० में अपने-अपने साम्राज्य को स्थापित कर भारत पर आक्रमण किया था। यह घटना कालिदास के समय की है, अतः उनका स्थितिकाल पाँचवीं शताब्दी के ही लगभग होना चाहिए।

डॉ० कीथ, डॉ० भण्डारकर, महामहोपाध्याय रामावतार शर्मा, वी० वी० मिराशी आदि विद्वानों ने प्रो० पाठक के विपरीत कालिदास को चन्द्रगुप्त द्वितीय (३६५-४१३ ई०) के समकालीन माना है। इस पक्ष में उनके तर्क इस प्रकार हैं–

(क) मध्यप्रदेश के मन्दसौर नामक स्थान पर एक शिलालेख प्राप्त हुआ है जो कि कुमारगुप्त के शासन के समय में वत्सभट्टि के द्वारा लिखा गया है। इसकी भाषा शैली कालिदास से प्रभावित है। अतः कालिदास की स्थिति कुमारगुप्त से पूर्व ठहरती है।

(ख) कालिदास के ग्रन्थों के अनुशीलन से ऐसा ज्ञात होता है कि उनका सम्बन्ध किसी शकारि विक्रमादित्य से रहा है। ये शकारि विक्रमादित्य चन्द्रगुप्त द्वितीय ही थे जिनकी राजधानी उज्जयिनी थी। कालिदास के ग्रन्थों में जिन राजकीय वैभवों एवं विलासों का चित्र खींचा गया है वह चन्द्रगुप्त द्वितीय के ही समय का है।

(ग) वाकाटक के राजा रुद्रसेन तथा राष्ट्रकूट के भूपाल देवराज से चन्द्रगुप्त की घनिष्टता रही है। ऐसा कहा जाता है कि चन्द्रगुप्त द्वितीय की पुत्री प्रभावती का विवाह रुद्रसेन के साथ हुआ था और इसी समय पर कालिदास ने 'मालविकाग्निमित्र' की रचना की थी और चन्द्रगुप्त के पुत्र

कुमारगुप्त के जन्मोत्सव पर ही कालिदास ने कुमारसम्भव की रचना की थी।

(घ) रघुवंश में आया हुआ रघु का दिग्विजय प्रसंग चन्द्रगुप्त द्वितीय के दिग्विजय से प्रभावित है। कालिदास के द्वारा स्थान-स्थान पर वर्णित 'चन्द्र' शब्द के पर्यायवाची भी चन्द्रगुप्त के ही द्योतक हैं जिससे यह सिद्ध होता है कि महाकवि कालिदास चन्द्रगुप्त द्वितीय के समकालीन थे। अतएव उनकी स्थिति पाँचवीं शताब्दी में सिद्ध होती है।

आलोचना–प्रो० पाठक का मत विद्वानों को मान्य नहीं है। क्योंकि उनके द्वारा भारत में जो हूणों के अस्तित्व का समय बतलाया गया है वह ठीक नहीं है। महाभारत तथा बौद्ध ग्रन्थों में हूणों का उल्लेख मिलता है। इस प्रकार हूणों का वर्णन प्राचीन ग्रन्थों में मिल जाता है। अतः ऐसा नहीं माना जा सकता कि इतनी प्राचीन हूण जाति से कालिदास का परिचय पाँचवीं शताब्दी के हूणों से हुआ हो।

वत्सभट्टि नामक कवि की प्रशस्ति के साथ कालिदास की कविता की तुलना करके उन्हें वत्सभट्टि के बाद का बतलाना ठीक नहीं है क्योंकि इसका कोई भी पुष्ट प्रमाण नहीं है।

शकारि और विक्रमादित्य शब्दों के द्वारा कालिदास को चन्द्रगुप्त द्वितीय के साथ जोड़ना उपयुक्त नहीं है, क्योंकि चन्द्रगुप्त जैसे पराक्रमी राजा ने अपना सम्वत् न चलाकर पूर्व प्रचलित मालव सम्वत् को अपने नाम से चलाया था। राजकीय वैभवों एवं विलासों के आधार पर कालिदास को चन्द्रगुप्त के साथ रखना युक्ति संगत नहीं है क्योंकि गुप्त युग से पहले भी भारत में ऐसे राजवंश प्रतिष्ठित हुए जिनके वैभव एवं विलास के समक्ष गुप्त युग का वैभव मन्द पड़ जाता है।

वाकाटक राजा रुद्रसेन एवं राष्ट्रकूट राजा देवराज से चन्द्रगुप्त द्वितीय का सम्बन्ध अवश्य रहा है परन्तु मालविकाग्निमित्र की रचना प्रभावती के परिणय पर हुयी थी तथा कुमारसम्भव की रचना चन्द्रगुप्त के पुत्र कुमारगुप्त के जन्मोत्सव पर हुयी थी इसका कोई पुष्ट प्रमाण नहीं है।

कालिदास के रघुवश में वर्णित रघु का दिग्विजय चन्द्रगुप्त द्वितीय के दिग्विजय से प्रभावित हो यह कोई मान्य सिद्धान्त नहीं है, क्योंकि पुराणादि ग्रन्थों में भी युद्धों तथा दिग्विजयों के प्रसंग आए हैं। इन्द्र, चन्द्रमा आदि चन्द्र शब्दों के पर्यायवाची शब्दों के प्रयोग से भी कालिदास को चन्द्रगुप्त द्वितीय के साथ नहीं जोड़ा जा सकता है, क्योंकि रससिद्ध कवि कालिदास अपने काव्य में उचित शब्दों का प्रयोग करते रहे हैं।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि महाकवि कालिदास की स्थिति चन्द्रगुप्त द्वितीय के समय में उपर्युक्त विद्वानों को मान्य नहीं है।

३. ई० पू० द्वितीय शताब्दी का मत–इस मत के समर्थक डॉ० कुन्हन राजा हैं। उन्होंने अपने मत के समर्थन के लिए मालविकाग्निमित्र के इस भरत-वाक्य को प्रस्तुत किया है–

आशास्यमीतिविगमप्रभृति प्रजानां
सम्पत्स्यते न खलु गोप्तरि नाग्निमित्रे।"

उनके विचार से इस भरतवाक्य में जो कल्याण कामना के लिए प्रार्थना की गयी है उसका सम्बन्ध शुङ्गवंश के राजा अग्निमित्र से है। इसी आधार पर उन्होंने अनुमान किया है कि महाकवि कालिदास ई० पू० द्वितीय शताब्दी में स्थित शुङ्गवंशीय राजा अग्निमित्र के राजकवि थे।

आलोचना—इस मत को भी आदर नहीं मिल सका। यह कोई आवश्यक नहीं है कि अग्निमित्र कालिदास के समसामयिक रहे हों। यदि वे अग्निमित्र के राजकवि थे तो अग्निमित्र के लिए भी किसी न किसी रूप में विक्रमादित्य का उल्लेख करते परन्तु ऐसा उल्लेख अब तक नहीं मिला है। शुङ्गवश की प्रशंसा का यह भी कारण हो सकता है कि कालिदास के समय तक शुङ्गवंश की स्थिति अच्छी चली आ रही थी और जिसे देखकर अपने से कुछ समय पूर्व स्थित अग्निमित्र की प्रशंसा कर दी हो।

४. ई० पू० प्रथम शताब्दी का मत–कालिदास के स्थिति काल के संबंध में यह मत अधिक प्रतिष्ठित है। इस मत को मानने वाले विद्वानों की संख्या

अधिक है । कालिदास को ई० पू० प्रथम शताब्दी में सिद्ध करने के लिए विद्वानों ने निम्नलिखित तथ्य प्रस्तुत किये हैं–

(क) मालविकाग्निमित्र में कुछ ऐसी चर्चायें मिलती हैं जिससे यह ज्ञात होता है कि कालिदास को शुंगकालीन परिस्थितियों का अच्छा ज्ञान था जिससे यह सिद्ध होता है कि अग्निमित्र के समय से लगभग एक शताब्दी के अन्दर ही कालिदास का समय होना चाहिए ।

(ख) कालिदास तथा अश्वघोष की कृतियों में कहीं-कहीं पर पर्याप्त समानता दिखलायी पड़ती है । इस आधार पर कुछ विद्वान् कालिदास को अश्वघोष के बाद का मानते हैं । परन्तु दोनों की कृतियों के भाषा वैज्ञानिक अनुशीलन से यह सिद्ध हुआ है कि अश्वघोष कालिदास के बाद के हैं । अश्वघोष सम्राट् कनिष्क के समकालीन हैं । कनिष्क ने १३५ वि० सं० से शालिवाहन संवत् को चलाया था । इस प्रकार कालिदास को इससे पहले का होना चाहिए ।

(ग) भीटा (प्रयाग) नामक स्थान की खुदायी में एक विशाल मृण्मय पदक प्राप्त हुआ है जिस पर अभिज्ञानशाकुन्तल के प्रथम अङ्क का दृश्य विद्यमान है । परीक्षण के द्वारा इसको शुंगकालीन माना गया है, अतः कालिदास का स्थितिकाल ई० पू० प्रथम शताब्दी में ठहरता है ।

(घ) कालिदास प्रणीत विक्रमोर्वशीय नाटक में विक्रमादित्य तथा उनके पिता महेन्द्रादित्य दोनों का उल्लेख मिलता है––"दिष्ट्या महेन्द्रोपकार पर्याप्तेन विक्रममहिम्ना वर्धते भवान् तथा अनुत्सेकः खलु विक्रमालंकारः ।" इससे यह ज्ञात होता है कि महाकवि कालिदास विक्रमादित्य के राजकवि रहे हैं । विक्रमादित्य का शासनकाल ई० पू० प्रथम शताब्दी में था । ऐसी भी सम्भावना है कि विक्रमादित्य के सिंहासनारूढ़ होने पर ही इस नाटक का अभिनय हुआ होगा ।

(ङ) ईशा की प्रथम शताब्दी में विरचित गुणाढ्य की वृहत्कथा के रूपान्तर भूतकथासरित्सागर में महेन्द्रादित्य के पुत्र विक्रमादित्य का वर्णन मिलता है । वहाँ कहा गया है कि भगवान् शिव का एक गण उनकी आज्ञा

से म्लेच्छों के विनाश और वैदिक धर्म को प्रतिष्ठित करने के लिए पृथ्वी पर अवतरित हुआ था। इसी ने विक्रम सम्वत् को भी प्रवर्तित किया था। इसकी राजधानी उज्जयिनी थी। इस प्रकार इससे यह सिद्ध होता है कि कालिदास इसी विक्रम सम्वत् को चलाने वाले विक्रमादित्य के सभा कवि रहे हैं।

(च) सातवाहन राजा हाल (प्रथम शताब्दी) द्वारा विरचित गाथा सप्तसती में विक्रमादित्य से सम्बन्धित अनेक कथायें मिलती हैं।

(छ) कदाचित् यह हो सकता कि महाकवि कालिदास ने अपने रघुवंश में सूर्यवंशीय राजाओं का चरित इसलिये उपनिबद्ध किया हो कि विक्रमादित्य परमार-वंशीय होने के समय ही सूर्यवंशीय भी थे।

(ज) उज्जयिनी में महाकाल का मन्दिर निर्माण करने वाले विक्रमादित्य शैव प्रतीत हो रहे हैं और कालिदास की रचनाओं के अनुशीलन से कालिदास भी शैव प्रतीत हो रहे हैं। इन दोनों के समकालीन होने में उपर्युक्त हेतु हैं।

(झ) कालिदास के काव्यों में परवर्ती कवियों की अपेक्षा अपाणिनीय प्रयोगों का प्राचुर्य मिलता है जिससे यह सिद्ध है कि कालिदास का स्थिति-काल इन कवियों से पूर्व का रहा होगा।

इस प्रकार निष्कर्ष रूप में हम यह कह सकते हैं कि महाकवि कालिदास ई० पू० प्रथम शताब्दी में स्थित विक्रमादित्य के सम्मानित राजकवि रहे हैं और उनका स्थितिकाल ई० पू० प्रथम शताब्दी में ही उचित माना जा सकता है।[1]

महाकवि कालिदास की कृतियाँ

महाकवि कालिदास संस्कृत काव्य-जगत् में अत्यन्त प्रतिष्ठित हुए हैं। उनका नाम संस्कृत साहित्य में स्वर्ण अक्षरों से लिखा गया है। कालिदास के इस गौरव से प्रभावित होकर अनेक कवियों ने अपनी कृतियों की प्रसिद्धि के निमित्त उनका नाम जोड़ दिया है। इस प्रकार जो अनेक कृतियाँ कालिदास के नाम से आज प्रस्तुत की जा रही हैं, वे सभी कालिदास कृत नहीं हैं। सम्प्रति कालिदास के नाम से लगभग इकतालीस रचनाएँ प्रचलित हैं, परन्तु उनमें से निम्नलिखित सात रचनायें ही कालिदास कृत मानी जाती हैं—

१. अभी-अभी हुए नवीन अनुसंधानों के द्वारा महाकवि कालिदास का स्थितिकाल ई० पू० प्रथम शताब्दी सिद्ध हो गया है।

(क) नाट्य ग्रन्थ–१. मालविकाग्निमित्र २. विक्रमोर्वशीय और ३. अभिज्ञानशाकुन्तल ।

(ख) काव्य ग्रन्थ–१. रघुवंश २. कुमारसम्भव ।

(ग) खण्ड काव्य या गीति काव्य–१. ऋतुसंहार और २. मेघदूत ।

इन सात कृतियों को ही प्रायः समस्त विद्वान् कालिदासकृत मानते हैं। इनके अतिरिक्त कालिदास के नाम से प्रचलित अन्य कृतियाँ अन्य कवियों की समझनी चाहिए। जैसा कि बतलाया जा चुका है कि कालिदास की प्रसिद्धि से प्रभावित होकर अन्य कवियों ने अपनी कृतियों में कालिदास का नाम जोड़ दिया है। इतना ही नहीं अपितु कुछ कवियों ने तो अपने व्यक्तित्व को छिपाने के लिए कालिदास का नाम ही धारण कर लिया। महाकवि राजशेखर (दश शताब्दी) ने तीन कालिदासों की ओर संकेत किया है––

"एको न जीयते हन्त कालिदासो न केनचित् ।
शृङ्गारे ललितोद्गारे कालिदासत्रयी किमु ॥"

इस प्रकार यह विना सन्देह के कहा जा सकता है कि जितनी कृतियाँ कालिदास के नाम से प्रचलित हैं वे सब कालिदास कृत नहीं मानी जा सकतीं। कालिदास के नाम से प्रसिद्ध अन्य कृतियों में ये कृतियाँ उल्लेखनीय हैं–१. कालीस्तोत्र २. गङ्गाष्टक ३. ज्योतिर्विदाभरण ४. राक्षसकाव्य और ५. श्रुतबोध ।

कालिदास की उपर्युक्त सात कृतियों का संक्षिप्त विवेचन यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है। प्रथमतः उनके काव्यग्रन्थों की मीमांसा की जायेगी।

काव्य-ग्रन्थ

१. ऋतुसंहार–ऋतुसंहार महाकवि कालिदास की प्रथम काव्य कृति मानी जाती है। विद्वानों का विचार है कि कालिदास ने इसी गीतिकाव्य से काव्यकला का प्रारम्भ किया होगा। इसमें ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, हेमन्त, शिशिर और वसन्त इन छः ऋतुओं का सरस, सरल, स्वाभाविक

एवं ललित वर्णन प्रस्तुत किया गया है। इसमें मनोरम प्राकृतिक दृश्यों का हृदयग्राही चित्रण है। इसमें विप्रलम्भ शृंगार की प्रधानता है। एक वियोगी युवक के द्वारा प्रियतमा के प्रति आत्मनिवेदन किया गया है। मानव प्रकृति के साथ बाह्यप्रकृति का संश्लिष्ट चित्रण अभिव्यञ्जित हो रहा है जिसके द्वारा सहृदय परम आनन्द की अनुभूति कर सकता है। कतिपय विद्वान् इसे कालिदास कृत नहीं मानते हैं, उनका विचार है कि इसमें कालिदास जैसी कमनीय, रमणीय, एवं हृद्य काव्यशैली नहीं मिलती है, अतः यह कालिदास कृत नहीं है। परन्तु अधिकांश विद्वान् इसे कालिदासकृत ही मानते हैं।

२. कुमारसम्भव—यह कालिदास की उत्कृष्ट काव्यशैली की परिचायक मनोरम कृति है। इसे प्रायः सभी विद्वान् कालिदासकृत मानते हैं। इसके सत्रह सर्गों में से आठ सर्ग कालिदास कृत हैं। शेष के विषय में सन्देह है। प्रारम्भ के आठ सर्गों में विषय की दृष्टि से पूर्ण एकता है। इसकी काव्यशैली अत्यन्त रमणीय एवं चित्ताकर्षक है। इसका काव्यचमत्कार सहृदयों के हृदयों को आकृष्ट किये बिना नहीं रह सकता है। इसमें संसार के माता-पिता शिव तथा पार्वती के रूप और लावण्य का वर्णन अत्यन्त मधुर ढंग से किया गया है। इसका कथाबन्ध नाटकीय है। भगवान् शंकर की समाधि, पार्वती की साधना, कामदेव के प्रभाव से असमय में वसन्त का प्रादुर्भाव, मदन के पुष्पवाण का प्रहार, शिव का नियमभङ्ग, पार्वती के प्रति आकर्षण, शिव का पुनः आत्मनियन्त्रण, कामदेव पर क्रोध, मदन-दहन, रति-विलाप, पार्वती की तपश्चर्या शिव का दयाभाव, मदन का पुनर्जन्म, शिव-पार्वती का परिणय और उनके प्रणय-व्यापार आदि प्रसंग इसमें आए हैं। इस ग्रन्थ का काव्यक्षेत्र हिमालय है। कवि काव्य के प्रारम्भ में ही कहता है—

"अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः।
पूर्वापरौ तोयनिधी वगाह्य स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः॥"

माननीय अरविन्द ने इस काव्य के विषय में इस प्रकार लिखा है—"इस

महान् काव्य का केन्द्रीय वक्तव्य है शिव और पार्वती का विवाह, जो अपने मूलभाव में पुरुष तथा प्रकृति के मङ्गलमिलन का प्रतीक है। इस कहानी में आत्मा के द्वारा परमेश्वर की खोज एवं प्राप्ति का प्रतीकत्व भी अभिप्रेत है और पार्वती की शिवोपलब्धि के अनुष्ठानों में यह भाव इस प्रकार से ओत-प्रोत है।"

३. मेघदूत—मेघदूत के विषय में आगे विस्तार पूर्वक समीक्षा प्रस्तुत की जायेगी।

४. रघुवंश—भारतीय आलोचक रघुवंश महाकाव्य को कालिदास की सर्वश्रेष्ठ कृति मानते हैं। इसमें उन्नीस सर्ग हैं। इस महाकाव्य का प्रारम्भ अयोध्या के सूर्यवंशी राजा दिलीप की पत्नी सुदक्षिणा है। इनके कोई सन्तान नहीं थी। इससे खिन्न होकर दम्पति वसिष्ठ के आश्रम गये। वसिष्ठ ने इन्हें बतलाया कि नन्दिनी की सेवा से ही पुत्र की प्राप्ति हो सकती है। अतः दिलीप नन्दिनी की सेवा में लग गये और नन्दिनी के द्वारा किये गये परीक्षण में सफल हुए। नन्दिनी ने प्रसन्न होकर पुत्रप्राप्ति का वर प्रदान कर दिया। दिलीप के रघु नामक पुत्र रत्न हुआ। रघु ने विश्वजित् नामक यज्ञ का अनुष्ठान किया और अपनी समस्त सम्पत्ति दान कर दी। उनकी दरिद्रावस्था में वरतन्तु के शिष्य कौत्स उनके पास धन-याचना के लिए पहुँचे। धनाभाव के कारण रघु ने कुबेर के खजाने से धन लाकर कौत्स को दिया। कौत्स ने प्रसन्न होकर उन्हें प्रतापी पुत्र की प्राप्ति का वर दिया। रघु के अज नामक पुत्र हुआ। उनका विवाह विदिशा की सुन्दरी राजकुमारी इन्दुमती के साथ हुआ। इन्दुमती का अकस्मात् ही देहावसान हो गया और उसी के वियोग में अज भी स्वर्गधाम पहुँच गये। अज के पुत्र दशरथ हुए। उनके द्वारा ऋषिकुमार श्रवण की भ्रम से हत्या हो जाने पर उनके शाप से पुत्रशोक में ही दशरथ की मृत्यु हुई। तत्पश्चात् दशवें सर्ग से लेकर पन्द्रहवे सर्ग तक रामचरित्र का विस्तृत वर्णन है। अन्त के कुछ सर्गों में उन्होंने विभिन्न राजाओं के चरित्र को साधारण ढंग से वर्णित किया है परन्तु महाकाव्य के अन्तिम उन्नीसवें सर्ग में कामुक अग्निवर्ण

का चित्रण अत्यन्त मार्मिकता के साथ प्रस्तुत किया है। इस महाकाव्य का यही कथानक है।

यह महाकाव्य भारतीय संस्कृति का प्रतिनिधि ग्रन्थ है। इसमें कवि ने भारतीय विद्याओं को लेकर उन्हें काव्यात्मक स्वरूप दिया है। कवि ने रघुवंश के राजाओं के चरित्रचित्रण में अत्यन्त निपुणता दिखलायी है। कोमल मर्मस्पर्शी भावों का सहृदयता के साथ चित्रण प्रस्तुत किया गया है। इन्दुमती के निस्पन्द होते ही अज विरहवेदना को सहन न करते हुए मूच्छित होकर गिर पड़ते हैं। पुनः सचेत होने पर वे इन्दुमती के मृत शरीर को अपने स्नेहिल गोद में वैसे ही संभाल लेते है जिस प्रकार निःस्वर वीणा तार मिलाने के लिए सम्भाल ली जाती है। स्मृति के तारों में फँसे हुए हृदय वाले अज प्रियतमा वियोग से विलाप करने लगते हैं—

"गृहिणी सचिवा सखी मिथः प्रियशिष्या ललिते कलाविधौ।
करुणाविमुखेन मृत्युना हरता त्वां वद किं न मे हृतम्॥"

अर्थात् तुम मेरी गृहणी थीं, सम्मति देने वाली सचिव थीं; एकान्त की सखी थीं, विविध ललितकलाओं में प्रिय शिष्या थीं। तुम्हीं बतलाओ; निष्ठुर विधाता ने तुम्हें मुझसे छीनकर मेरा क्या नहीं छीन लिया ?

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि महाकवि कालिदास की काव्यकला ने रघुवंश के इतिवृत्त को अत्यन्त कमनीय एवं ललित बना दिया है।

नाट्य ग्रन्थ

काव्य में नाटक को अत्यन्त रमणीय माना गया है। इस नाटकीय महत्ता के मूल में कला ही है। काव्य के श्रव्य स्वरूप की अपेक्षा दृश्य स्वरूप में कलात्मकता की अधिक अभिवृद्धि हो जाती है। महाकवि कालिदास अद्वितीय कलाकार हैं। वे कला में शास्त्रार्थ और पांडित्य प्रदर्शन की प्रवृत्ति को हेय मानते है। वे मर्मस्पन्दन और हार्दिक संवेदन से ही कला की कृतविद्यता को बतलाते हैं। वे अपने में कलाकार का स्वाभिमान और आत्मविश्वास रखते हैं। यद्यपि उनसे पूर्ववर्ती भास आदि के नाटक विद्यमान हैं फिर भी

इन्हें अपने नाटकों के प्रति अपूर्व श्रद्धा है । मालविकाग्निमित्र में जब सूत्रधार से पारिपार्श्विक कहता है कि भास सौमिल्लक और, कविपुत्र जैसे नाटककारों के नाटकरत्न विद्यमान हैं तो कालिदास जैसे नये कवि को इतना महत्त्व क्यों दिया जा रहा है ? जिसके उत्तर में सूत्रधार कहता है--

"पुराणमित्येव न साधु सर्वं न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम् ।
सन्तः परीक्ष्यान्यतरद्भजन्ते मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः ॥"

अर्थात् पुरातन होने से ही सब कुछ अच्छा नहीं माना जा सकता और न ही नूतन होने से सब कुछ बुरा ही माना जा सकता है । समझदार लोग दोनों का परीक्षण कर उनमें से जो अच्छा होता है, उसे ग्रहण कर लेते हैं और मूढ़ पुरुष को जैसा दूसरे समझा देते हैं वह वैसा ही मान बैठता है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कालिदास को अपनी नाटकीय कृतियों पर पूर्ण विश्वास है क्योंकि उन्होंने अपनी अपूर्व नाट्य-कला के द्वारा मानव मानस को चूम लिया है । कतिपय आलोचक जो कि कालिदास को केवल कवि मानते हैं नाटककार नहीं, वे वस्तुतः भ्रान्त हैं, क्योंकि कालिदास काव्यकार के साथ ही साथ सफल नाटककार हैं । उनके नाटकों का संक्षिप्त विवेचन यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है ।

मालविकाग्निमित्र--इस नाटक में पाँच अंक हैं । नान्दीपाठ में भगवान् शिव की वन्दना की जाती है । प्रथम अंक मिश्रविष्कम्भक से प्रारम्भ होता है । इस नाटक की कथावस्तु की मीमांसा से यह ज्ञात होता है कि यह पश्चाद्वर्ती नाटिकाओं के ढंग पर है । यद्यपि पाँच अंकों के होने से इसे नाटक की कोटि में रक्खा गया है परन्तु कथावस्तु की संरचना की दृष्टि से यह हर्ष की रत्नावली नाटिका तथा विश्वनाथ की चन्द्रकला नाटिका के समान है । इस नाटक में नाटक की उपयोगिता पर प्रकाश डालते हुये महाकवि कालिदास लिखते हैं--

"देवानामिदमामनन्ति मुनयः शान्तं क्रतुं चाक्षुषं
रुद्रेणेदमुमाकृतव्यतिकरे स्वाङ्गे विभक्तं द्विधा ।

त्रैगुण्योद्भवमत्र लोकचरितं नानारसं दृश्यते
नाट्यं भिन्नरुचेर्जनस्य बहुधाप्येकं समाराधनम् ॥''

विक्रमोर्वशीय––यह कालिदास का दूसरा नाटक माना जाता है। इसका कथास्रोत ऋग्वेद, शतपथ ब्राह्मण तथा मत्स्यपुराण है।

अभिज्ञानशाकुन्तल––अभिज्ञानशाकुन्तल भारत का ही नहीं अपितु विश्व का श्रेष्ठ नाटकरत्न माना गया है। इसमें कालिदास की नाट्यकला का चरम परिपाक है। भारतीय समालोचकों ने इसे संस्कृत नाट्यसाहित्य में सर्वश्रेष्ठ बतलाया है––

'काव्येषु नाटकं रम्यं तत्र रम्या शकुन्तला।'

तथा––

'कालिदासस्य सर्वस्वमभिज्ञानशाकुन्तलम्।'

जर्मन के महाकवि गेटे अभिज्ञानशाकुन्तल के विषय में इस प्रकार लिखते हैं––

"And all by which the Soul is charmed
enraptured, feasted fed ?
wouldst thou the earth and Heaven itself
an one sole name combine ?
I name the, O. Shakuntala and all at once is said."

इसी का संस्कृत रूपान्तर करते हुये श्री वासुदेव विष्णु मिराशी इस प्रकार लिखते हैं––

"वासन्तं कुसुमं फलञ्च युगपद्, ग्रीष्मस्य सर्वं च यद्
यच्चान्यन्मनसो रसायनमतः सन्तर्पणं मोहनम्।
एकीभूतमभूतपूर्वमथवा स्वर्लोकभूलोकयो–
रैश्वर्यं यदि वाञ्छसि प्रियसखे शाकुन्तलं सेव्यताम् ॥"

मेघदूत

कथावस्तु––मेघदूत गीतिकाव्य की कथावस्तु कविकल्पित है। कवि ने जिस विषय को लेकर मेघदूत कथावस्तु की अवतारणा की है, वह अत्यन्त ही

मर्मस्पर्शी है। मेघदूत में कवि ने दो प्रकरण रक्खे हैं–पूर्वमेघ और उत्तरमेघ। मेघदूत की कथा इस प्रकार है––किसी यक्ष के कार्य में प्रमाद करने के कारण उसके स्वामी कुबेर उसे शाप दे देते हैं कि वह एक वर्षपर्यन्त अपनी प्रियतमा से पृथक् होकर अलकापुरी से बाहर निवास करेगा। कुबेर के इस दारुण शाप के कारण अलकापुरी से निर्वासित होकर अपनी प्राणेश्वरी प्रियतमा से वियुक्त होने के कारण शोक से कृश होकर कामुक यक्ष रामगिरि के निर्जन आश्रमों में निवास करने लगा। वहाँ अपने निर्वासन और प्रियतमा के वियोग के आठ महीनों के व्यतीत हो जाने के पश्चात् उसने आषाढ़ मास के प्रथम दिवस में नवीन मेघ को देखकर तथा अत्यन्त अधीर होकर मेघ से प्रार्थना की कि वह उसके प्रेमसन्देश को उसकी प्रियतमा के पास अलका तक पहुँचा दे। इसी सन्दर्भ में वह मेघ को रामगिरि से अलका तक के मार्ग को बतलाता है।

मेघदूत के द्वितीय भाग में या उत्तरमेघ में अलका का वर्णन किया है। इसके पश्चात् यक्ष अपने भवन का वर्णन करता है, अपनी प्रियतमा की दशा का वर्णन करता है। इसके बाद वह मेघ को यह बतलाता है कि उसे अपनी भाभी को किस प्रकार सन्देश सुनाना चाहिये और अन्त में सन्देश कहकर मेघ को विदा कर देता है। यहीं पर मेघदूत खण्डकाव्य की समाप्ति हो जाती है।

मेघदूत के कथानक का स्रोत––मेघदूत के कथानक के उपजीव्य की मीमांसा करना प्रस्तुत प्रसङ्ग में आवश्यक है। यक्ष को कुबेर ने जो शाप दिया है उसका आधार ब्रह्मवैवर्तपुराण है। ब्रह्मवैवर्तपुराण में योगिनी नामक आषाढकृष्ण एकादशी के माहात्म्य में एक कथा आती है। वहाँ यह कथा भगवान् श्रीकृष्ण युधिष्ठिर को सुनाते हैं––अलका के अधिपति यक्षराज कुबेर भगवान् शिव के अनन्य उपासक थे। वे प्रतिदिन भगवान् शिव की पूजा किया करते थे। उनकी शिवपूजा के लिये प्रतिदिन हेमामाली नामक एक यक्ष फूलों को तोड़कर लाता था। उस यक्ष की विशालाक्षी नामक अत्यन्त सुन्दरी पत्नी थी। एक दिन हेममाली अपने स्वामी

कुवेर की पूजा के लिये मानसरोवर से वहुत से फूलों को तोड़कर तो ले आया परन्तु कामाभिभूत होकर अपने स्वामी यक्षराज कुवेर के पास न जाकर अपनी प्रियतमा के समीप ही रह गया। उधर यक्षराज कुवेर मध्याह्नकालीन शिव की पूजा करने के लिये पुष्पों की प्रतीक्षा में बैठे रहे। जब काफी समय व्यतीत हो गया और कुवेर ने हेममाली को वहाँ आते हुये न देखा तो उन्होंने उस प्रियतमाभक्त यक्ष को कुष्ठरोगाक्रान्त होकर एक वर्षपर्यन्त प्रियतमा से वियुक्त रहकर मर्त्यलोक में जाने का शाप दे दिया। आषाढ़ कृष्ण पक्ष की योगिनी नामक एकादशी के व्रतानुष्ठान से यक्ष कुवेर के शाप से विनिर्मुक्त हो गया था।

अलकाऽधिपतिर्नाम्ना कुबेरः शिवपूजकः।
तस्याऽसीत्पुष्पबटुको हेममालीति नामतः॥
तस्य पत्नी सुरूपाऽऽसीद्विशालाक्षीति नामतः।
स तस्यां स्नेहसंयुक्तः कामपाशवशं गतः॥
मानसात्पुष्पनिचयमानीय स्वगृहे स्थितः।
पत्नीप्रेमसमायुक्तो न कुबेराऽऽलयं गतः॥
कुबेरो देवसदने करोति शिवपूजनम्।
मध्याह्नसमये राजन्पुष्पाणि प्रसमीक्षते॥
हेममाली स्वभवने रमते कान्तया सह।
यक्षराट् प्रत्युवाचाऽथ कालाऽतिक्रमकोपितः॥
"कस्मान्नायाति भो यक्षा हेममाली दुरात्मवान्।
निश्चयः क्रियतामस्य" प्रत्युवाच पुनः पुनः॥

यक्षा ऊचुः—

"वनिताकामुको गेहे रमते स्वेच्छया नृप!"
तेषां वाक्यं समाकर्ण्य कुबेरः कोपपूरितः॥
आह्वयामास तं तूर्णं बटुकं हेममालिनम्।
ज्ञात्वा कालाऽत्ययं सोऽपि भयव्याकुललोचनः॥

आजगाम नमस्कृत्य कुबेरस्याऽग्रतः स्थितः ।
तं दृष्ट्वा धनदः क्रुद्धः कोपसंरक्तलोचनः ।।
प्रत्युवाच रुषाविष्टः कोपाद्विस्फुरिताऽधरः ।

धनद उवाच—

"रे पाप ! दुष्ट ! दुर्वृत्त ! कृतवान्देवहेलनम् ॥
अतो भव श्वित्रयुक्तो वियुक्तः कान्तया सह ।
अस्मात्स्थानादपध्वस्तो गच्छ स्थानमथाऽधमम् ।।"
इत्युक्ते वचने तेन तस्मात्स्थानात्पपात सः ।......

मूलकथावस्तु में परिवर्तन—महाकवि कालिदास ने उपर्युक्त ब्रह्मवैवर्त पुराण से कथावस्तुसंघटन कर उसमें अनेक परिवर्तन कर दिये। उन्होंने कुबेर शाप की विशेष चर्चा नहीं की। यक्ष को कुबेर ने किसलिये शाप दिया ? इस प्रसंग को भी नहीं लिया। अपने कर्त्तव्य-पालन में असावधानी वर्तने के कारण किसी यक्ष को प्रियतमा के विरह से दुःसह और एक वर्ष तक अनुभव किये जाने वाले स्वामी के शाप से महत्त्वहीन होकर रामगिरि के आश्रमों में निवास करना पड़ा। यहीं से कवि ने मेघदूत की कथा को प्रारम्भ किया है। कवि ने पौराणिक कथा में आने वाले कुष्ठरोग की वात को पूर्णतया छिपा दिया है और काव्योपयोगी विषय विरहाकुल यक्ष की आत्मकथा को मेघ को दूत बनाकर उसकी प्रियतमा तक पहुँचवाया है। कवि ने पौराणिक अंश को लेकर कथानक की रचना की और अनुपयुक्त अंश छोड़ दिये। यक्ष के द्वारा मेघ को दूत बनाकर प्रियतमा तक सन्देश भेजने के अनुपम विषय को प्रस्तुत कर कवि ने अपनी अद्भुत् कल्पनाशक्ति का चमत्कार दिखलाया है। इस सम्बन्ध में ध्वन्यालोक में इस प्रकार कहा गया है—"न हि कवेरितिवृत्तमात्रेणाऽऽत्मलाभः, इतिहासादेरेव तत्सिद्धेः।" केवल इतिवृत्त तो इतिहास और पुराण से ही सिद्ध हो जाता है। अग्निपुराण में भी कहा गया है—

"शास्त्रे शब्दप्रधानत्वम् इतिहासेषु निष्ठता ।
अभिधायाः प्रधानत्वात् काव्यं ताभ्यां विभिद्यते ।।"

अर्थात् शास्त्र में शब्द की प्रधानता रहती है और इतिहास में विषय की

प्रधानता रहती है। इन दोनों के प्रतिपादन में अभिधा शक्ति की प्रधानता रहती है। काव्य में व्यञ्जना की प्रधानता रहती है, अतः काव्य उन दोनों से भिन्न है।

इस प्रकार कवितावनिताविलास कविकुलगुरु कालिदास ने सन्देशप्रेषण की प्रणाली में रामायण का और कथानक में ब्रह्मवैवर्तपुराण का अनुसरण कर इन्हीं दो भित्तियों पर अपनी मौलिकता एवं कवि हृदयसुलभ सरसता के द्वारा अपने अलौकिक वाग्विलास का प्रासाद खड़ा किया है।

मेघदूत खण्डकाव्य——संस्कृत लक्षण ग्रन्थों के अनुसार मेघदूत खण्ड-काव्य के अन्तर्गत आता है। जिसे भारतीय समीक्षकों ने खण्ड-काव्य के नाम से अभिहित किया है, उसे ही पाश्चात्य समालोचकों ने Lyric (गीतिकाव्य) की संज्ञा से सम्बोधित किया है। मेघदूत में भारतीय समीक्षकों का खण्ड-काव्य का तथा पाश्चात्य समीक्षकों का गीतिकाव्य का लक्षण पूर्वरूपेण घटित होता है। खण्ड-काव्य के विषय में कविराज विश्वनाथ लिखते हैं——'खण्डकाव्यं भवेत् काव्यस्यैकदेशानुसारि च'। इसके अनुसार काव्य के एक भाग को जिसमें प्रस्तुत किया जाता है अर्थात् जिसमें वर्ण्य व्यक्ति के जीवन का एक अंग चित्रित होता हैं, उसे खण्डकाव्य या गीतिकाव्य कहते हैं। मेघदूत में यक्ष के विरहाकुल हृदय का गम्भीर चित्रण किया गया है। विरह से व्यथित होकर यक्ष किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाता है और प्रियतमा से मिलन के किसी भी मार्ग को न पाकर अपने घर की ओर जाने वाले मेघ से यक्षिणी के लिये सन्देश भेजने की बात करता है। इस सम्बन्ध में विद्वानों का यह भी कथन है कि यह यक्ष और कोई नहीं था, ये वस्तुतः हमारे कविकुल शिरोमणि कालिदास ही थे जो कि अलभ्य प्रेयसी के द्वारा तिरस्कृत होकर अपनी उसी प्रेयसी को मेघ को माध्यम बनाकर सन्देश भेजने लगे थे। इस प्रकार कवि ने प्रच्छन्नरूप से यक्ष और मेघ के माध्यम से अपनी ही बात कही है। जो कुछ भी हो मेघदूत एक आदर्श गीतिकाव्य है। इसमें गीतिकाव्य के सभी गुण विद्यमान हैं। यक्ष के सन्देश, प्राकृतिक चित्रण, अलकापुरी का वर्णन, यक्षिणी का वर्णन आदि को कवि ने अत्यन्त ललित, रोचक, रसपेशल, सुमधुर गीतों में

उपनिबद्ध किया है। सम्पूर्ण मेघदूत विरही के द्वारा मन्द-मन्द रोते, विलपते, कलपते मन्दाक्रान्ता छन्द में उपनिवद्ध है। विप्रलम्भ शृंगार का ऐसा सजीव एवं सटीक स्वरूप अन्यत्र मिलना कठिन है। इस प्रकार कवि ने १२१ पद्यों से युक्त इस लघु कलेवर खण्डकाव्य में अपार विरहार्णव को प्रस्तुत कर गागर में सागर भर देने की उक्ति को चरितार्थ कर दिया है।

चरित्र-चित्रण

किसी भी कवि की सफलता कथावस्तु, नायक तथा रस के ऊपर निर्भर करती है। क्रमशः कथावस्तु, नायक एवं रस पाठक को आनन्दानुभूति कराने में उत्तरोत्तर महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। महाकवि कालिदास चरित्र-चित्रण में सिद्धहस्त हैं। खण्डकाव्य में किसी भी पात्र का पूर्ण चरित्र-चित्रित नहीं हो सकता है, क्योंकि शास्त्रीय मर्यादा है कि इसमें जीवन का एक ही भाग उपनिवद्ध होता है, इसलिये मेघदूत के पात्रों का पूर्ण चरित्र-चित्रण कर सकना असम्भव है। यहाँ वर्णन के अनुसार पात्रों का चरित्र-चित्रण किया जा रहा है—

यक्ष—यह कुबेर का अनुचर है। यक्ष के स्वामी कुबेर ने इसे अपने कार्य में प्रमाद कर देने के कारण शाप दे दिया था। परिणामतः उसकी महिमा समाप्त हो गई थी और वह अपनी नगरी अलका से अलग होकर रामगिरि पर्वत पर आश्रम बनाकर रहने लगा था।

यक्ष जाति ही विलासी होती है परन्तु मेघदूत में वर्णित यक्ष तो अत्यन्त ही विलासी है। अपनी इस विलासिता के कारण ही वह प्रियतमा के प्रेम-पाश में फँसकर अपने कर्त्तव्य तक की चिन्ता नहीं करता है। इस प्रकार प्रेयसीप्रसादन के कारण अपने स्वामी का कोपभाजन बनता है। कुबेर भी उसे ऐसा-वैसा शाप नहीं देते हैं, वे उसे एक वर्षपर्यन्त उसी प्रेयसी से पृथक् कर देते हैं। यक्ष के लिये यह प्रेयसी-पृथकीकरण कठोर कारावास से भी बढ़कर है। जो एक क्षण भी अपनी प्रेयसी से पृथक् न रहना चाहे उसके लिये एक वर्ष तो अनन्त वर्षों के कठोर कारावास तुल्य है। यक्ष अपने शेष दिनों को तो जैसे-तैसे व्यतीत ही करता है परन्तु वर्षा ऋतु की असह्य मेघच्छाया उसे अत्यधिक उत्कण्ठित कर देती है। फलस्वरूप वह अन्य किसी चारे को

न देखकर मेघ के द्वारा सन्देश भेजने की योजना बनाता है। इसके द्वारा उसके हृदय की कोमलता, भावुकता एवं तरलता का सहज में ही अनुमान किया जा सकता है।

यक्ष एक आदर्श प्रेमी है। उसे अपनी इतनी चिन्ता नहीं है जितनी की अपनी प्रेयसी यक्षिणी की। उसके मन में यह आशङ्का होती है कि कदाचित् ऐसा न हो कि यक्षिणी मेरे वियोग में अपने प्राणों को ही छोड़ दे। वह आशा प्रकट करता है कि वियोग के अवशिष्ट दिनों की गणना में व्यासक्त और मेरे आगमन की आशा से जीवित मेरी प्रेयसी अवश्य ही अलका में विराजमान होगी, क्योंकि आशा रूपी बन्धन प्रेमपूर्ण कुसुमसदृश सुकुमार तथा वियोग में तत्क्षण नष्ट होने वाले अबलाओं के जीवन को प्रायः रोक रखता है—

"तां चावश्यं दिवसगणनातत्परामेकपत्नी-
मव्यापन्नामविहतगतिर्द्रक्ष्यसि भ्रातृजायाम् ।
आशाबन्धः कुसुमसदृशं प्रायशो ह्यङ्गनानां
सद्यःपाति प्रणयि हृदयं विप्रयोगे रुणद्धि ॥"

यक्ष अत्यन्त ही चतुर तथा व्यवहार कुशल है। यद्यपि यहाँ वह कुछ आवश्यकता से अधिक मुग्धता का कार्य करता है परन्तु कवि—'कामार्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु' के द्वारा उसकी दुर्बलता का परिहार कर देता है। उसकी व्यवहारकुशलता मेघ से कहे गये प्रथम वाक्य से ही पुष्ट होती है। वह यह जानता है कि किसी के द्वारा अपने कार्य को सिद्ध करवाने के लिये किस प्रकार की भाषा का व्यवहार किया जाना चाहिये ? वह मेघ से कहता है कि हे मेघ मैं जानता हूँ कि तुम लोकप्रसिद्ध पुष्कर और आवर्त्तक नामक मेघों के वंश में उत्पन्न और स्वेच्छानुसार विचरण करने वाले इन्द्र के प्रमुख प्रतिनिधि हो, इसीलिये दुर्भाग्यवश अपनी प्रेयसी से बिछुड़ा हुआ मैं तुमसे याचना कर रहा हूँ, क्योंकि गुणी पुरुष से की गई याचना निष्फल होने पर अच्छी है परन्तु गुणहीन पुरुष से की गई याचना सफल होने पर भी अच्छी नहीं होती है—

जातं वंशे भुवनविदिते पुष्करावर्तकानां
जानामि त्वां प्रकृतिपुरुषं कामरूपं मघोनः ।

तेनार्थित्वं त्वयि विधिवशाद् दूरबन्धुर्गतोऽहं
याच्ञा मोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा ॥"

यक्ष की इस उक्ति के एक-एक शब्द से उसकी चतुरता टपकती है। सर्वप्रथम वह मेघ के उच्चकुल का बखान करता है, तत्पश्चात् इन्द्र से सम्बन्धित बतलाकर उसकी श्रेष्ठता एवं आदर्शरूपता को प्रस्तुत करता है। उसके इस कथन से यह अभिव्यञ्जित हो जाता है कि आप जैसे उच्चकुलीन एवं इन्द्र के प्रमुख प्रतिनिधि से मैं कुछ कह रहा हूँ, ऐसे वैसे से नहीं। आदरणीय मेघ ! मेरे इस कथन में भी विवशता ही कारण है। वह विवशता यह है कि मैं अपनी प्रेयसी यक्षिणी से बिछुड़ गया हूँ और इसीलिये तुमसे कुछ याचना कर रहा हूँ। यक्ष अपने इस कथन से कि अधिक गुण वाले पुरुष से की गई याचना निष्फल होने पर भी कुछ अच्छी है परन्तु गुणरहित पुरुष से की गई याचना सफल होने पर भी अच्छी नहीं होती है, चतुरता की पराकाष्ठा पर पहुँच जाता है। वह मेघ को ऐसे फाँस लेता है कि मेघ उसके सन्देश को न ले जाने का साहस ही नहीं कर सकता। यदि मेघ सन्देश ले जाता है तो गुणी ठहरता है और मना कर देने पर गुणहीन। वृष्टि के द्वारा मेघ विना किसी स्वार्थ के लोकोपकार करता है, अतः वह गुणी है। यक्ष मेघ को सन्तप्त प्राणियों का संरक्षक बतलाता है। उसके इस कथन से भी यह ध्वनि निकलती है कि जब आप सारे संसार के सन्ताप को दूर कर शीतलता प्रदान करते हैं तो मेरे प्रेयसीवियोगजन्य सन्ताप को सन्देशप्रेषण के द्वारा दूर करें। यक्ष अत्यन्त भावुक एवं सहृदय तथा परहृदयाभिज्ञ है। वह पथिकों की स्त्रियों की मेघ के अवलोकन से की गई स्वाभाविक चेष्टा का वर्णन करते हुए इस प्रकार कहता है—

"त्वामारूढं पवनपदवीमुद्गृहीतालकान्ताः
प्रेक्षिष्यन्ते पथिकवनिताः प्रत्ययादाश्वसत्यः।
कः सन्नद्धे विरहविधुरां त्वय्युपेक्षेत जायां
न स्यादन्योऽप्यहमिव जनो यः पराधीनवृत्तिः ॥"

यक्ष का वर्णन चातुर्य अत्यन्त ही सजीव एवं सशक्त है। अलकापुरी का

मार्ग बतलाता हुआ वह एक-एक वस्तु से मेघ को ऐसा परिचित करा देता है कि वह अन्यमनस्क होने पर भी भूल नहीं कर सकता है। इसी प्रकार अलकापुरी के वर्णन में वह अपनी वर्णन चतुरता को प्रस्तुत करता है। अपनी प्रियतमा की संस्थिति का वर्णन करता हुआ वह इस प्रकार कहता है कि हे मेघ ! वह तुम्हारी भाभी या तो देवताओं का पूजन करती हुई अथवा वियोग से दुर्बल तथा सम्भावना से कल्पनीय मेरे चित्र को लिखती हुई अथवा मधुरभाषिणी पिंजड़े में स्थित मैना को—हे रसिके ! क्या तू स्वामी का स्मरण कर रही है ? क्यों कि तू उनकी प्यारी थी इस प्रकार पूछती हुई तुम्हें दिखाई पड़ेगी—

"आलोके ते निपतति पुरा सा बलिव्याकुला वा
मत्सादृश्यं विरहतनु वा भावगम्यं लिखन्ती।
पृच्छन्ती वा मधुरवचनां सारिकां पञ्जरस्थां
कच्चिद्भर्तुः स्मरसि ? रसिके ! त्वं हि तस्य प्रियेति ॥"

इस प्रकार हम देखते हैं कि खण्डकाव्य के अनुसार यक्ष का चरित्र अत्यन्त उदात्त, परिष्कृत एवं पूर्ण है।

यक्षिणी—यक्षिणी का वर्णन उत्तरमेघ में किया गया है। उसका भी स्वभाव लगभग यक्ष के समान है। वियोग से व्यथित यक्ष यह सम्भावना करता है कि कदाचित् वह मेरे विरह में अपने प्राणों को न छोड़ दे।

यक्षिणी परम सुन्दरी ललनाललाम स्त्रीरत्न है। उसकी सुन्दरता का वर्णन कालिदास ने बेजोड़ किया है—वह यक्षिणी कृश शरीर वाली युवती पके दाडिम के बीजों के समान नुकीले दाँतों वाली, पके हुये बिम्बफल (कुँदरू) के समान लाल अधरोष्ठ से सुशोभित, पतली कमर वाली, डरी हुई मृगी के समान चञ्चल नेत्रों से सुशोभित, गम्भीर नाभि वाली, नितम्ब भार से धीरे-धीरे चलने वाली, उन्नत कुचों से कुछ झुकी हुई और युवतियों में ब्रह्मा की प्रथम असाधारण रचना है—

"तन्वी श्यामा शिखरिदशना पक्वबिम्बाधरोष्ठी
मध्ये क्षामा चकितहरिणीप्रेक्षणा निम्ननाभिः।

श्रोणीभारादलसगमना स्तोकनम्रा स्तनाभ्यां
या तत्र स्याद्युवतिविषये सृष्टिराद्येव धातुः ॥"

यक्षिणी पति परायणा, विनम्रशीला तथा एक साध्वी सुशीला नारी है। वह अपने इन्हीं अनेक गुणों से तथा शारीरिक सौन्दर्य से यक्ष को प्राणों से भी अधिक प्रिय है। यक्ष के समीप न होने से वह अत्यन्त विलाप करती है। प्रसाधनों को छोड़ देती है। इस प्रकार अत्यन्त क्षीणकाय हो जाती है। वह अत्यन्त ही मधुरभाषिणी है। संगीत प्रेमी है। उसे पूजन तथा चित्रकला में अत्यन्त रुचि है। उसकी विरहदशा का वर्णन इस प्रकार किया गया है—

"आधिक्षामां विरहशयने सन्निषण्णैकपार्श्वां
प्राचीमूले तनुमिव कलामात्रशेषां हिमांशोः ।
नीता रात्रिः क्षण इव मया सार्धमिच्छारतैर्या
तामेवोष्णैर्विरहमहतीमश्रुभिर्यापयन्तीम् ॥"

अर्थात् मनोव्यथा से क्षीण, विरह की शय्या पर एक ही करवट से लेटने वाली, उदयाचल पर एक ही कला से अवशिष्ट चन्द्रमा की मूर्ति के समान पहले जो रात्रि मेरे साथ इच्छा से की हुई सुरत क्रीड़ाओं से क्षण के समान बिताई गई थी, विरह से दीर्घ वैसी ही रात्रि को गरम आँसुओं से बिताती हुई, मेरी उस क्रिया को देखो।

यक्षिणी की उत्कृष्टता से आकृष्टहृदय यक्ष उसे अपने सन्देश में इस प्रकार सम्बोधित करता है—

"श्यामास्वङ्गं चकितहरिणीप्रेक्षणे दृष्टिपातं,
वक्त्रच्छायां शशिनि, शिखिनां बर्हभारेषु केशान्।
उत्पश्यामि प्रतनुषु नदीवीचिषु भ्रूविलासान्
हन्तैकस्मिन्क्वचिदपि न ते चण्डि ! सादृश्यमस्ति ॥"

इस प्रकार हम देखते हैं कि यद्यपि प्रत्यक्ष रूप से यक्षिणी का कोई भी व्यापार हमें मेघदूत खण्डकाव्य में देखने को नहीं मिलता है परन्तु यक्ष के द्वारा वर्णित उसके चरित्र पर प्रकाश पड़ता है। उसी के आधार पर यहाँ यक्षिणी का चरित्र चित्रण प्रस्तुत किया गया है।

साहित्यिक समीक्षा

महाकवि कालिदास की काव्य शैली—कविकुलगुरु कालिदास संस्कृतसाहित्याकाश के देदीप्यमान भगवान् भास्कर हैं। उनकी कवितावनिता कला तथा भाव दोनों पक्षों से समलंकृत है। जहाँ एक ओर उसके विभिन्न अवयव अलङ्कार, छन्द एवं सुमधुर शब्द विन्यास से विलसित हैं वहीं दूसरी ओर रस, भाव एवं ध्वनि से उसका हृदय आप्लावित होकर सम्यक् विलास से उल्लसित हो रहा है। इसीलिये कविता के सच्चे पारखी सहृदय कवि जयदेव महाकवि कालिदास को कविताकामिनी का विलास बतलाते हैं—

"............कविकुलगुरुः कालिदासो विलासः।
केषां नैषा कथय कविताकामिनी कौतुकाय॥"

महाकवि कालिदास की शैली की यह एक असाधारण विशेषता है कि वे भाव के अनुरूप ही भाषा का प्रयोग करते हैं। वस्तुतः कविता का मुख्य पक्ष तो हृदयपक्ष ही है, कलापक्ष तो उसी पक्ष को अपनी कलात्मक सृष्टि के द्वारा परिपुष्ट करता है। यहीं पर कवि की सफलता का रहस्य है। अनेक कवि तो हृदयपक्ष की प्रधानता को विस्मृत कर कलापक्ष की ओर ही आकृष्ट हो जाते हैं तथा शाब्दीक्रीडा के चक्कर में फँसकर कविता की स्वाभाविकता को खो बैठते हैं और कतिपय कविजन कलापक्ष की पूर्णतया उपेक्षा कर भावपक्ष में ही लगे रहते हैं। जबकि औचित्य की दृष्टि से एक आदर्श कवि के काव्य में दोनों की समुचित संस्थिति अत्यावश्यक है। कहा भी गया है—

'न कान्तमपि निर्भूषं विभाति वनिताननम्।'

अर्थात् आभूषणों से रहित किसी तरुणी का सुन्दर मुख भी शोभा नहीं देता है। यहाँ यह स्मरणीय है कि प्रथमतः तो सुन्दर मुख होना चाहिए और तब सुन्दर से सुन्दर आभूषण। कालिदास की काव्यशैली की यही विशेषता है कि प्रथमतः तो उसमें भावपक्ष की कलात्मक ढंग से संसृष्टि है ततश्च उसके सौन्दर्यसन्दोहसंवर्धन के लिये कलापक्ष की संरचना है। उनकी रचनाओं की लोकप्रियता का प्रधान कारण यह है कि उनकी कृतियों में प्रसादगुणोपेत

ललित एवं परिष्कृत शैली का प्रयोग हुआ है। माधुर्यगुणसंवलित उनका प्रसाद गुण पाठकों के चित्त को सहसा ही चुरा लेता है। प्रसाद गुण का लक्षण साहित्यदर्पण में इस प्रकार किया गया है—

"चित्तं व्याप्नोति यः क्षिप्रं शुष्केन्धनमिवानलः ।
स प्रसादः समस्तेषु रसेषु रचनासु च ।।"

अर्थात् जो चित्त में उसी प्रकार तत्क्षण व्याप्त हो जाता है, जिस प्रकार अग्नि सूखे ईंधन में व्याप्त हो जाती है, सभी रसों एवं रचनाओं में वह प्रसाद गुण के नाम से प्रसिद्ध है। कालिदास की कृतियों में प्रसाद गुण की विशेषता पूर्णरूप से पायी जाती है।

महाकवि कालिदास वैदर्भी रीति के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। वैदर्भी रीति के सम्बन्ध में कविराज विश्वनाथ इस प्रकार लिखते हैं—

"माधुर्यव्यञ्जकैर्वर्णैः रचना ललितात्मिका ।
अवृत्तिरल्पवृत्तिर्वा वैदर्भीरीतिरिष्यते ।।"

अर्थात् माधुर्यव्यञ्जक वर्णों का प्रयोग, ललित रचना, समासों का अभाव या स्वल्प समासों का प्रयोग वैदर्भी रीति की प्रमुख विशेषताएँ हैं। महाकवि कालिदास की कृतियों में उपर्युक्त सभी विशेषतायें मिलती हैं। यही कारण है कि उन्हें वैदर्भीरीति का प्रमुख कवि कहा गया है—

'वैदर्भीरीतिसन्दर्भे कालिदासो विशिष्यते ।'

सुकुमार तथा कोमल श्रृाङ्गारिक एवं कारुणिक भावों के चित्रण करने में वे अद्वितीय शिल्पी हैं। उनके कोमल श्रृाङ्गारिक भावों के पढ़ने से हृदयपक्ष के गाम्भीर्य का यथार्थ ज्ञान हो जाता है। कोमल श्रृाङ्गारिक भाव के उदाहरण को देखें—

"वीचिक्षोभस्तनितविहगश्रेणिकाञ्चीगुणायाः
संसर्पन्त्याः स्खलितसुभगं दर्शितावर्तनाभेः ।
निर्विन्ध्यायाः पथि भव रसाभ्यन्तरः सन्निपत्य
स्त्रीणामाद्यं प्रणयवचनं विभ्रमो हि प्रियेषु ।।"

अर्थात् हे मेघ ! मार्ग में तरङ्ग के चलने से कूजन करने वाले पक्षी

जिसकी करधनी के समान हैं, पत्थरों पर गिरने से अच्छी तरह से बहने वाली तथा नाभि के सदृश भँवर को दिखलाने वाली निर्विन्ध्या नामक नदी के पास जाकर उसके रस को ग्रहण करने में अन्तरंग बनो। क्योंकि स्त्रियों की प्रणयीजनों में शृङ्गार चेष्टा ही प्रथम प्रणयवाक्य हो जाता है।

इस श्लोक के द्वारा कवि ने ललनाओं के अपने प्रियतमों के प्रति किये गए कोमल शृंङ्गारिक व्यञ्जना को प्रस्तुत किया है। निर्विन्ध्या को सुन्दरी नायिका के रूप में प्रस्तुत कर उसके नाभि भँवर को प्रदर्शित करना उसके प्रथम प्रणयवाक्य को सूचित कर रहा है मानों निर्विन्ध्या नायिका अपने प्रेमी मेघ के प्रति शृंगार चेष्टा को अभिव्यक्त कर रही हो।

कोमल कारुणिक भावों की व्यञ्जना के लिए निम्नलिखित श्लोक को देखें–

"तेनार्थित्वं त्वयि विधिवशाद् दूरबन्धुर्गतोऽहं
याच्ञा मोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा ॥"

यहाँ प्रयुक्त 'दूरबन्धुः' शब्द ही अत्यन्त व्यञ्जक है। यक्ष कहता है कि स्वाभिमानी होता हुआ भी मैं तुमसे इसलिए याचना कर रहा हूँ कि मैं दुर्भाग्यवश अपनी पत्नी से बिछुड़ा हुआ हूँ। इससे जहाँ एक ओर उसकी प्रियजनानुरक्ति ध्वनित हो रही है वहीं दूसरी ओर स्वाभिमानता भी झलक रही है, परन्तु इन दोनों ही व्यञ्जनाओं के ऊपर या इन दोनों व्यञ्जनाओं के सहारे या इन दोनों ही व्यञ्जनाओं की भित्ति पर सर्वाधिक उत्कृष्ट कोमल कारुणिक भाव यह अभिव्यञ्जित हो रहा है कि क्या करें ? मैं यह सब कुछ (याचना आदि) नहीं करना चाहता हूँ, परन्तु क्या करें ? आखिर यह सब कुछ करने के लिए मेरी विवशता (मजबूरी) है।

इसी प्रकार निम्नलिखित श्लोक में भी यक्ष के कथन से उसका कोमल कारुणिक भाव अभिव्यञ्जित हो रहा है–

"आलोके ते निपतति पुरा सा बलिव्याकुला वा
मत्सादृश्यं विरहतनु वा भावगम्यं लिखन्ती ।

पृच्छन्ती वा मधुरवचनां सारिकाम् पञ्जरस्थां
कच्चिद्भर्तु: स्मरसि ? रसिके ! त्वं हि तस्य प्रियेति ।।"

महाकवि कालिदास की शैली में प्रसाद तथा माधुर्य गुणों की प्रधानता है। कहीं-कहीं ओज के भी दर्शन होते हैं। माधुर्यगुणोपेत सरस श्लोक का अवलोकन करें—

"सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यं
मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति ।
इयमधिकमनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी
किमिव हि मधुराणाम् मण्डनं नाकृतीनाम् ।।"

प्रसादगुणोपोत सरस रचना का उदाहरण—

"तन्वी श्यामा शिखरिदशना पक्वविम्बाधरोष्ठी
मध्ये क्षामा चकितहरिणीप्रेक्षणा निम्ननाभिः ।
श्रोणीभारादलसगमना स्तोकनम्रा स्तनाभ्याम्
या तत्र स्याद्युवतिविषये सृष्टिराद्येव धातुः ।।"

ओजोगुण के लिये निम्नलिखित उदाहरण को देखें—

"तीव्राघातप्रतिहततरुस्कन्धलग्नैकदन्तः
पादाकृष्टव्रततिवलयासंगसञ्जातपाशः ।
मूर्तो विघ्नस्तपस इव नो भिन्नसारंगयूथो
धर्मारण्यं प्रविशति गजः स्यन्दनालोकभीतः ।।

भाषा—महाकवि कालिदास की भाषाभामिनी सरस, सरल, प्राञ्जल, परिमार्जित तथा प्रसादगुणोपेत है। वह सर्वत्र कुछ मीठी सी मुसकान लिये हुए है, जिससे पाठक सहसा ही उसकी मुसकान मिठाई के लिए लालायित हो उठता है, उसके मुख में पानी आ जाता है। उन्होंने अपनी भाषा में पाडित्य प्रदर्शन की कृत्रिम रीति को प्रश्रय नहीं दिया है। उनकी भाषा सर्वत्र मन्द-स्मित से समुद्वेलित है। कहीं-कहीं पर मुहावरेदार भाषा का चुस्त प्रयोग किया गया है जिससे उनकी भाषा भामिनी के मन्द मुस्कराहट में कुछ चुस्ती सी आ गई है। अतएव यह अपने यौवन के विकास द्वार पर पहुँच जाती है

और अपने सहज लावण्य से पाठकों को आकृष्ट करने में सक्षम होती है। उदाहरण के लिये निम्नलिखित श्लोकरत्न को देखें–

"त्वामारूढं पवनपदवीमुद्‌गृहीतालकान्ताः
प्रेक्षिष्यन्ते पथिकवनिताः प्रत्ययादाश्वसत्यः ।
कः सन्नद्धे विरहविधुरां त्वय्युपेक्षेत जायां
न स्यादन्योऽप्यहमिव जनो यः पराधीनवृत्तिः ॥"

इस श्लोक में जहाँ एक ओर पथिकवनिता अपने प्रियतम के आगमन के सूचक मेघ को अपनी लटों को ऊपर कर मुख को उठाकर देखती है, उसी प्रकार उस पथिकवनिता सुन्दरी की तरह कवि की भाषा सुन्दरी भी तदाकारित सी होकर उसी स्वाभाविक रूप में, उसी भावभङ्गिमा में रुचिर, मञ्जुल, कमनीय, रमणीय एव दर्शनीय लगने लगती है।

कवि का भाषा पर असाधारण अधिकार है। वे जहाँ जिस भाव को जिस रूप में प्रस्तुत करना चाहते हैं मानों भाषा वहाँ पर उसी रूप में स्थित हो जाती है। श्लोकों में प्रयुक्त उनके पद एवं वाक्य छोटे, रसीले एवं चटकीले हैं, जिन्हें सुनकर पाठकों का मन तरङ्गित हो उठता है। उनके वर्णनों में अत्यन्त स्वाभाविक, सजीव एवं सरस भाषा का प्रयोग हुआ है। उनकी व्यञ्जनाओं को उभारने में भाषा अत्यन्त सहायक हुई है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित श्लोक को देखें–

"त्वामालिख्य प्रणयकुपितां धातुरागैः शिलाया–
मात्मानं ते चरणपतितं यावदिच्छामि कर्तुम् ।
अस्रैस्तावन्मुहुरुपचितैर्दृष्टिरालुप्यते मे,
क्रूरस्तस्मिन्नपि न सहते सङ्गमं नौ कृतान्तः ॥"

यहाँ कवि ने व्यञ्जनावृत्ति को सहजरूप में प्रस्तुत किया है। परिणामतः भाषा का प्रयोग अत्यन्त चुस्त हो गया है। कवि प्रायः थोड़े से शब्दों के द्वारा बहुत कुछ कह देता है।

अलंकार–महाकवि कालिदास ने अपनी कविताकामिनी को यथावसर अनेकानेक अलङ्कारों के द्वारा सजाया संवारा है। उन्होंने उसे स्वाभाविकता

के साथ विभिन्न अलंकारों से अलंकृत किया है जिससे वे उसके अङ्ग बनकर रह गये हैं। उनका अलङ्कार प्रयोग कृत्रिम नहीं है अतएव अलङ्कार उनकी कविता के साथ पूर्णतया घुलमिल गये हैं। उन्हें उससे पृथक् नहीं किया जा सकता है। यह वस्तुतः उनका अपनी कवितावनिता के प्रति अनन्य प्रेम ही है कि वे असाधारण व्यय के द्वारा उसे रुचिर कल्पनाओं के साथ सुन्दर अलङ्कार ला देते हैं। उन्होंने शब्द तथा अर्थ दोनों ही प्रकार के अलङ्कारों का प्रयोग किया है। उपमा तो उनका सर्वप्रिय अलङ्कार है। अनुप्रास, यमक, श्लेष, उत्प्रेक्षा, रूपक, अतिशयोक्ति, स्वभावोक्ति, दृष्टान्त, अर्थान्तरन्यास, निदर्शना, विभावना, विशेषोक्ति, समासोक्ति, काव्यलिङ्ग, समुच्चय, परिणाम, उदात्त, भाविक आदि अलङ्कारों का सुन्दर प्रयोग किया है। उदाहरण के लिये उपमा अलङ्कार का प्रयोग देखें—

"तस्योत्सङ्गे प्रणयिन इव स्रस्तगङ्गादुकूलाम्
न त्वं दृष्ट्वा न पुनरलकां ज्ञास्यसे कामचारिन् ।
या वः काले वहति सलिलोद्गारमुच्चैर्विमाना
मुक्ताजालग्रथितमलकं कामिनीवाभ्रवृन्दम् ॥"

उत्प्रेक्षा अलङ्कार का सुन्दर उदाहरण देखें—कैलाश पर्वत के कुमुद के समान हिमशुभ्रशिखर ऐसे लग रहे हैं जैसे कि महादेव का प्रतिदिन का एकत्रित हुआ अट्टहास हो—

"गत्वा चोर्ध्वं दशमुखभुजोच्छ्वासितप्रस्थसन्धेः
कैलासस्य त्रिदशवनितादर्पणस्यातिथिः स्याः ।
शृङ्गोच्छ्रायैः कुमुदविशदैर्यो वितत्य स्थिता खं
राशीभूतः प्रतिदिनमिव त्र्यम्बकस्याट्टहासः ॥"

अर्थान्तरन्यास अलङ्कार का रुचिर प्रयोग इस श्लोक में देखें—

"नन्वात्मानं बहु विगणयन्नात्मनैवावलम्बे
तत्कल्याणि ! त्वमपि नितरां मा गमः कातरत्वम् ।
कस्यात्यन्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा
नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण ॥"

छन्द—मेघदूत में केवल मन्दाक्रान्ता छन्द का ही प्रयोग हुआ है। यह छन्द करुण विप्रलम्भ शृङ्गार के सर्वथा अनुकूल है। यक्ष के द्वारा दुःखपूर्वक अपने हार्दिक शोकोद्गार प्रकट करने के अवसर पर यह छन्द तदनुकूल वृत्ति की सृष्टि करता है। इस प्रकार कवि ने गीतिकाव्य के अनुरूप मन्दाक्रान्ता छन्द का प्रयोग कर मेघदूत खण्डकाव्य को अत्यन्त ही आह्लादक बना दिया है।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि उनकी कविता भाव तथा कला दोनों की सजीव मूर्ति है। दोनों ही तत्त्व एक दूसरे के पूरक हैं, अतः कवि कुलगुरु कालिदास सच्चे अर्थ में कविकुलगुरु ही हैं। उनके विषय में 'कवि कालिदासः' कहा जाना सर्वथा समीचीन है।

ध्वनि अथवा व्यञ्जना

संस्कृत काव्यसमीक्षकों ने ध्वनिकाव्य को उत्तम काव्य माना है। ध्वनि की मीमांसा करते हुये ध्वनिवादी आचार्य आनन्दवर्धन इस प्रकार लिखते हैं—

"यत्रार्थः शब्दो वा तमर्थमुपसर्जनीकृतस्वार्थौ।
व्यङ्क्तः काव्यविशेषः स ध्वनिरिति सूरिभिः कथितः॥"

अर्थात् जहाँ शब्द और अर्थ अपने अर्थों को दबाकर प्रतीयमान अर्थ को प्रस्तुत कर देते हैं वहाँ ध्वनि की स्थिति होती है।

व्यङ्ग्यार्थ की साहित्यशास्त्र में अत्यधिक प्रधानता रही है। उच्चकोटि के कवियों की कृतियों में इसकी प्रचुरता है। इन व्यङ्ग्यार्थों को प्रकट करने वाली शक्ति ही व्यञ्जना वृत्ति (शक्ति) कहलाती है। इस प्रतीयमान अर्थ या ध्वन्यात्मकता की महाकवि कालिदास की कृतियों में अधिकता है।

इस ध्वन्यात्मक शैली के द्वारा कवि ने किसी भी घटना या विषय का विस्तृत वर्णन न करके थोड़े ही शब्दों के द्वारा उसकी हृदयस्पर्शी मार्मिक अभिव्यञ्जना प्रस्तुत की है। इसी व्यञ्जना व्यापार के द्वारा कवि ने विस्तृत तथा गुह्य विषयों की सुन्दर अभिव्यक्ति की है जो कि सहृदयों को आकृष्ट करने में पूर्ण सक्षम है। उदाहरण के लिये निम्नलिखित श्लोक को देखें।

महर्षि अङ्गिरा हिमालय से पार्वती के सम्बन्ध में बातचीत कर रहे हैं। समीप में बैठी हुई पार्वती उनकी बातें सुन रही हैं। इसी प्रसंग में महाकवि कालिदास ने पार्वती की मानसिक चेष्टाओं का सहज, स्वाभाविक अनुराग रस से आर्द्र सुन्दर चित्रण इस प्रकार किया है—

'एवंवादिनि देवर्षौ पार्श्वे पितुरधोमुखी।
लीलाकमलपत्राणि गणयामास पार्वती ॥'

अर्थात् जब देवर्षि इस प्रकार बोल रहे थे उस समय हिमालय के पास नीचे को मुख किये हुये बैठी पार्वती लीलाकमल की (खेलने के कमल की) पंखुड़ियों को गिनने लगीं।

इस पद्य में पार्वती अपने विषय की चर्चा को सुनकर पिता के समक्ष मुख झुका लेती हैं तथा कमल की पंखुड़ियों को गिनने लगती हैं। इन कार्यों से उनकी शालीनता, आनन्दानुभूति, प्रस्ताव की स्वीकृति एवं स्वभाव की कोमलता आदि की अभिव्यक्ति होती है। पार्वती के द्वारा कमल की पंखुड़ियों के गिनने से ऐसा लगता है कि मानों वे आत्म-विषयक वार्ता सुन ही नहीं रही हैं, क्योंकि वे तो कार्यान्तर में संलग्न हैं परन्तु वे मुख झुका कर कमल के पत्रों को गिन रही हैं—इस कथन से यह ध्वनित होता है कि वे सब कुछ समझ रही हैं। यदि वे उक्त विषय में अनभिज्ञ हैं तो उन्हें संकोच रहित होकर स्वाभाविकता के साथ कमल-पत्रों की गणना में तत्पर होना चाहिये। मुख झुकाने की कोई आवश्यकता ही नहीं। उनके द्वारा मुख झुका लेने से यह स्पष्ट हो जाता है कि वे कमल की पखुड़ियों के गिरने के बहाने से मानों अनसुनी करती हुई आत्मविषयक चर्चा को रुचि के साथ सुन रही हैं तथा आनन्दित हो रही हैं। उनके द्वारा मुख को झुका लेने से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि उनका यौवन विकास द्वार पर है। लज्जा के भाव के आ जाने के कारण हम उन्हें अबोध बालिका नहीं कह सकते हैं। लीलाकमल देकर कवि ने मुग्धा नायिका सुलभ विलास की अनुभूति करवाई है। लीलाकमल को हाथ में लेकर उसे घुमाती हुई सुन्दरी नायिका का चित्रण कर महाकवि कालिदास ने मानों उसकी हृदय की कोमलता को ही साक्षात् रूप में प्रस्तुत

कर दिया है।

मेघदूत के निम्नलिखित व्यञ्जनाप्रधान श्लोक को देखें—

"जातं वंशे भुवनविदिते पुष्करावर्तकानां
जानामि त्वां प्रकृतिपुरुषं कामरूपं मघोनः।
तेनार्थित्वं त्वयि विधिवशाद् दूरबन्धुर्गतोऽहं
याच्ञा मोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा ॥"

यक्ष मेघ से कहता है कि हे मेघ मैं जानता हूँ कि तुम लोकप्रसिद्ध पुष्कर और आवर्तक नामक मेघों के वंश में उत्पन्न और स्वेच्छानुसार विचरण करने वाले इन्द्र के प्रमुख प्रतिनिधि हो। इसीलिये दुर्भाग्यवश अपनी प्रेयसी से वियुक्त हुआ मैं तुमसे याचना कर रहा हूँ, क्योंकि गुणी पुरुष से की गई याचना निष्फल होने पर भी अच्छी है परन्तु गुणहीन पुरुष से की गई याचना सफल होने पर भी अच्छी नहीं है।

यक्ष की इस उक्ति के एक-एक शब्द से ध्वनि या व्यञ्जना टपक रही है। सर्वप्रथम वह मेघ के उच्च कुल का बखान करता है तत्पश्चात् इन्द्र के प्रधान पुरुष के रूप में प्रस्तुत कर उसकी श्रेष्ठता एवं आदर्शरूपता को सामने ला देता है। उसके इस कथन से यह अभिव्यञ्जित हो जाता है कि आप जैसे उच्चकुलीन एवं इन्द्र के प्रमुख प्रतिनिधि से मैं कुछ कह रहा हूँ, याचना कर रहा हूँ, ऐसे वैसे से नहीं। आदरणीय मेघ! मेरे इस कथन के मूल में विवशता ही है। वह विवशता यह है कि मैं अपनी प्रेयसी यक्षिणी से बिछुड़ गया हूँ और इसीलिये आपसे कुछ याचना कर रहा हूँ। यक्ष अपने इस कथन से कि अधिक गुण वाले पुरुष से की गई याचना निष्फल होने पर भी कुछ अच्छी है परन्तु गुणहीन पुरुष से की गई याचना सफल होने पर भी अच्छी नहीं है, चतुरता की पराकाष्ठा पर पहुँच जाता है। वह अपने इस वाग्व्यवहार से मेघ को ऐसे फाँस लेता है कि मेघ उसके सन्देश को ले जाने के लिये विवश हो जाता है। यदि मेघ सन्देश ले जाता है तो गुणी ठहरता है और अन्यथा करने पर गुणहीन। वृष्टि के द्वारा मेघ बिना किसी स्वार्थ के लोकोपकार करता है, अतः वह गुणी है। यहीं यक्ष मेघ को

संतप्त प्राणियों का संरक्षक वतलाता है (सन्तप्तानां त्वमसि शरणम्)। उसके इस कथन से भी यह ध्वनि निकलती है कि जब आप सारे संसार के सन्ताप को दूर कर शीतलता प्रदान करते हैं तो मेरे प्रेयसीवियोगजन्य सन्ताप को सन्देशप्रेषण के द्वारा दूर करें।

विरही यक्ष अपनी प्रियतमा को सन्देश में कहता है कि हे प्रियतमे! प्रेम से रूठी हुई तुमको गेरू आदि धातुओं से पत्थर पर लिखकर अपने को तुम्हारे पैरों पर गिरा हुआ जव लिखना चाहता हूँ तो अत्यधिक वढ़े हुये आँसुओं से मेरी आँखें निमीलित हो जाती हैं। कठोर दैव चित्र में भी हमारे समागम को सहन नहीं करता है–

"त्वामालिख्य प्रणयकुपितां धातुरागैः शिलाया–
मात्मानं ते चरणपतितं यावदिच्छामि कर्तुम्।
अस्रैस्तावन्मुहुरुपचितैर्दृष्टिरालुप्यते मे
क्रूरस्तस्मिन्नपि न सहते सङ्गमं नौ कृतान्तः॥"

इस पद्य में वियोगी यक्ष अपनी प्रियतमा विषयक रति को प्रस्तुत करता हुआ कहता है कि प्रत्यक्ष रूप में तो तुम्हारा दर्शन हमारे लिये सर्वथा दुर्लभ है परन्तु किसी तरह से प्रेमाभिभूत मैं तुम्हरी कृपा का पात्र बनूँ, इसलिये अन्य साधनों के अभाव में गेरू आदि धातुओं से तुम्हारे चित्र को वनाकर अपने को तुम्हारे चरणों पर गिरा हुआ लिखकर सन्तुष्टि का अनुभव करना चाहता हूँ तो ऐसी स्थिति में तुम साक्षात् होती हुई भी मेरे लिये असाक्षात्, अदर्शनीय हो। इसलिये प्रेमाकुलित हृदय के व्याकुल होने से मेरे नेत्र अश्रुधारा से आप्लावित हो जाने के कारण अपने व्यापार को ही समाप्त कर देते हैं और इस प्रकार एक प्रकार का स्वप्नमिलन भी दुर्लभ हो जाता है। कवि ने व्यञ्जना व्यापार के द्वारा यहाँ यक्ष के अपनी प्रेयसी के प्रति प्रगाढ़ हार्दिक अनुराग को अभिव्यञ्जित करवाया है।

महाकवि कालिदास के कुमारसम्भव से ध्वनि विषयक एक उद्धरण को देखें–

"स्थिताः क्षणं पक्ष्मसु ताडिताधराः
पयोधरोत्सेधनिपातचूर्णिताः।

वलीषु तस्याः स्खलिताः प्रपेदिरे
चिरेण नाभिं प्रथमोदबिन्दवः ॥"

भाव यह है कि पार्वती के ऊपर गिरी हुई वर्षा की बूँदें क्षण भर पलकों पर रुककर अधरों पर आ गिरती हैं और उन्हें आघात पहुँचाती हैं और फिर स्तनों पर गिरकर चूर-चूर हो जाती हैं। तत्पश्चात् त्रिवली पर रेंगती हुई बड़ी देर में नाभि तक पहुँचती हैं। यहाँ 'क्षण', 'ताडित', 'चूर्णित', 'स्खलित' तथा 'नाभिं प्रपेदिरे' पदों से क्रमशः पार्वती के पलकों की चिकनाहट, अधर की कोमलता, कुचों की कठोरता, त्रिवली की सुन्दरता एवं नाभि की गम्भीरता अभिव्यञ्जित होती है। इस प्रकार कालिदास की कृतियों में व्यञ्जना की गम्भीरता के स्थान-स्थान पर दर्शन होते हैं। उनकी व्यञ्जनाओं की रोचकता, सरता, भावगम्भीरता एवं स्वाभाविकता अत्यन्त सराहनीय है।

महाकवि कालिदास ध्वन्यात्मक शैली के चमत्कार में सिद्धहस्त हैं। उनकी कविताकामिनी सर्वत्र उक्त भङ्गिमा से विभूपित दिखलाई देती है। उनकी व्यञ्जना विपयक विशेषता को लक्ष्य कर किसी ने ठीक ही कहा है कि "वे प्राथमिक मूल अर्थ को क्षति पहुँचाकर गौण अर्थ को विजृम्भित नहीं करते। व्यङ्ग्यार्थ जब वाच्यार्थ का अनुगमन कर, उसे अतिक्रान्त करता है, तभी वह प्रशस्य एवं स्पृहणीय है।...कालिदास के काव्यों में ध्वनि की स्थिति उस गौण वा सहायक इन्द्रचाप की तरह है जो मुख्य इन्द्रधनुष के साथ-साथ वर्तमान रहता है और सम्पूर्ण दृश्य में एक क्षणिक आध्यात्मिक सौन्दर्य का तत्त्व जोड़ देता है।"

मेघदूत में रस

महाकवि कालिदास रससिद्ध कवि हैं। उन्होंने अपनी रचनाओं में सर्वत्र औचित्य का ध्यान रखते हुये रससंयोजन किया है। रससंयोजन व्यापार में वे सर्वत्र स्वाभाविकता को प्रश्रय देते हैं। यही कारण है कि उनकी कविता-कामिनी आदि से अन्त तक निरन्तर निर्बाधरूप से रसास्वादन कराती है। उसमें कहीं भी ऐसे कृत्रिम तत्त्व नहीं पाये जाते हैं जो कि पाठकों को रूखे-सूखे लगें तथा रसानुभूति में बाधा डालें। उनकी कविता में सभी तत्त्व सरस,

सजीव, स्वाभाविक एवं आह्लादक हैं। अतः रसानुभूति में सहायक सिद्ध हुये हैं। अङ्गीरस के मध्य-मध्य में जो अन्य रस आये हैं वे स्वयं तो रोचक हैं ही, साथ ही साथ प्रधान रस की परिपूर्णता में सहायक भी हैं।

रस काव्य का प्राणतत्त्व माना गया है। कविराज विश्वनाथ ने 'वाक्यं रसात्मक काव्यम्' लिखकर रस की महत्ता को प्रतिपादित किया है। इस रस व्यापार में सफल होने के कारण ही महाकवि कालिदास को कवितावनिता का विलास कहा गया है।

महाकवि कालिदास शृङ्गाररस के सरस कवि हैं। उन्होंने अपने काव्यों में प्रायः ललित शृङ्गाररस की ही व्यञ्जना की है। शृङ्गार रस के साथ ही साथ वे स्थान-स्थान पर करुण, वीर, अद्भुत, भयानक, वात्सल्य तथा हास्य रस के चित्रण में भी पूर्ण सफल हुये हैं। मेघदूत में विप्रलम्भ शृङ्गार अङ्गीरस है। प्रणयी यक्ष कुबेर के शाप से अपनी प्रेयसी से वियुक्त होकर रामगिरि पर जैसे तैसे आठ महीनों को व्यतीत करता है। आषाढ के पहले ही दिन पर्वत की चोटी पर मेघ को देखकर वह उत्कण्ठित हो जाता है। उससे अपनी प्रियतमा का वियोग किसी भी प्रकार सहन नहीं होता है जिसके फलस्वरूप वह अपने करुण सन्देश को प्रियतमा तक भेजने के लिये मेघ को दूत के रूप में प्रस्तुत करता है। प्रियतमा के वियोग से व्यथित यक्ष अपने मार्गवर्णन में तथा अलकापुरी के चित्रण में अपनी वियोग दशा को प्रकट करता है। वह प्रारम्भ में ही कहता है कि वियोग व्यथित प्राणी चेतन और अचेतन के विषय में स्वभाव से ही दीन हो जाते हैं। प्रोषितप्रियाओं के पति प्रत्यागमन के आश्वस्त हृदयों का चित्रण तथा अपनी विवशता का संकेत यक्ष इस प्रकार करता है—

"त्वामारूढं पवनपदवीमुद्गृहीतालकान्ताः
प्रेक्षिष्यन्ते पथिकवनिताः प्रत्ययादाश्वसत्यः।
कः सन्नद्धे विरहविधुरां त्वय्युपेक्षेत जायां
न स्यादन्योऽप्यहमिव जनो यः पराधीनवृत्तिः॥"

अर्थात् हे मेघ ! आकाशमार्ग से विचरण करने वाले तुम्हें पथिकों की स्त्रियाँ पति के आगमन के विश्वास से आश्वस्त होकर केशों के अग्रभाग को उठाकर देखेंगी । तुम्हारे आगमन के समय में मुझ जैसे पराधीन पुरुष को छोड़कर और कौन व्यक्ति वियोग दुर्बल अपनी पत्नी की उपेक्षा करेगा ?

यक्ष मेघ से यह स्पष्ट कर देता है कि आशारूपी बन्धन प्रेमपूर्ण फूल के समान सुकुमार तथा वियोग में तत्क्षण नष्ट होने वाले अवलाओं के जीवन को प्राय: रोक रखता है––

"ता चावश्यं दिवसगणनातत्परामेकपत्नी
मव्यापन्नामविहतगतिर्द्रक्ष्यसि भ्रातृजायाम् ।
आशाबन्ध: कुसुमसदृशं प्रायशो ह्यङ्गनानां
सद्य:पाति प्रणयि हृदयं विप्रयोगे रुणद्धि ।।"

विरहविधुर यक्ष अपनी प्रेयसी को सन्देश देता हुआ कहता है कि मैं विरह से व्यथित अतएव प्रणय में कुपित तुम्हारे चित्र को गेरू आदि से पत्थर खण्ड पर चित्रित करके उसके चरणों पर गिरकर जैसे ही क्षमा याचना करना चाहता था वैसे ही आँखों में बढ़े हुये आँसुओं से मेरी दृष्टि निमीलित हो जाती है और प्रिया चित्रण कार्य रुक जाता है । हाय ! कठोर दैव को यह भी सह्य नहीं हुआ कि कदाचित् मैं चित्र के माध्यम से ही अपनी प्रियतमा से मिल लेता––

"त्वामालिख्य प्रणयकुपितां धातुरागै: शिलाया
मात्मानं ते चरणपतितं यावदिच्छामि कर्तुम् ।
अस्रैस्तावन्मुहुरुपचितैर्दृष्टिरालुप्यते मे
क्रूरस्तस्मिन्नपि न सहते सङ्गमं नौ कृतान्त: ।।"

उत्तरमेघ में कवि ने कामदशाओं का सुन्दर चित्रण किया है । यक्षिणी की चित्तविभ्रमदशा को इङ्गित करने वाले निम्नलिखित श्लोक को देखें–

"आद्ये बद्धा विरहदिवसे या शिखा दाम हित्वा
शापस्यान्ते विगलितशुचा तां मयोद्वेष्टनीयाम् ।

स्पर्शक्लिष्टामयमितनखेनाकुसत्सारयन्तीं
गण्डाभोगात्कठिनविषमामेकवेणीं करेण ।।"

महाकवि कालिदास ने विप्रलम्भ शृंगार की पृष्ठभूमि में सम्भोग शृङ्गार की भी सुन्दर व्यञ्जना प्रस्तुत की है। यक्ष के द्वारा अलकापुरी के मार्ग वर्णन में तथा अलकापुरी स्थित सुन्दरियों के चित्रण में हमें सम्भोग शृङ्गार के दर्शन होते हैं। यक्ष का कथन है कि सिद्ध लोग तुम्हारे गर्जन के समय में कम्पनयुक्त प्रिय सहचरियों के सहसा किये गये आलिङ्गनों के सुख का अनुभव कर तुम्हारा सम्मान करेंगे---

"त्वामासाद्य स्तनितसमये मानयिष्यन्ति सिद्धाः
सोत्कम्पानि प्रियसहचरीसम्भ्रमालिङ्गितानि ।।"

यक्ष वेत्रवती नदी को नायिका वतलाकर मेघ से उसके रसपान की चर्चा करता है। वह मेघ से कहता है कि 'नीचैः' नाम के पर्वत पर विश्राम करके वन की नदियों के तटों पर स्थित उद्यानों के जूही के मुकुलों को नये जल के विन्दुओं से सेचन कर कपोलों पर पसीना हटाने से जिनके कर्ण कुवलय मुरझा गये होंगे उन फूलों को तोड़ने वाली स्त्रियों के मुखों को छाया देने के कारण कुछ समय तक के लिये परिचित हो जाओगे, उनका स्नेह प्राप्त कर सकोगे--

"गण्डस्वेदापनयनरुजाक्लान्तकर्णोत्पलाना
छायादानात्क्षणपरिचितः पुष्पलावीमुखानाम् ।।"

इसी प्रकार यक्ष उसे उज्जयिनी की पौराङ्गनाओं के चञ्चल कटाक्षों से युक्त नेत्रों के साथ रमण करने का सुझाव देता है। मार्ग में तरङ्गों से स्तनित पक्षी ही जिसकी करधनी हैं, जो सुन्दरता के साथ विलासपूर्वक वह रही है तथा नाभिरूर भँवर को दिखला रही है, इस प्रकार की निर्विन्ध्या नामक नदी के समीप जाकर उसके रसास्वादन के लिये कहता है---

"वीचिक्षोभस्तनितविहगश्रेणिकाञ्चीगुणायाः
संसर्पन्त्याः स्खलितसुभगं दर्शितावर्तनाभेः ।
निर्विन्ध्यायाः पथि भव रसाभ्यन्तरः सन्निपत्य
स्त्रीणामाद्यं प्रणयवचनं विभ्रमो हि प्रियेषु ।।"

यक्ष मेघ को वियोगव्यथित निर्विन्ध्या की कृशता को छुड़वाने के लिये निवेदन करता है। गम्भीरा नामक नदी के निर्मल हृदय में प्रविष्ट हो जाने की यक्ष सहज कल्पना करता है। वह कहता है कि जब तुम उसके हृदय में प्रविष्ट हो जाओगे तो कुमुद के समान उज्ज्वल और चञ्चल मछलियों के उद्वर्तनों के समान गम्भीरा नदी की चितवनों को तुम धैर्य लेकर निष्फल करने के लिये योग्य नहीं हो सकते। हे मित्र ! वेत्र की शाखा तक पहुँचे हुये और हाथ से कुछ पकड़े गये के समान तट रूपी नितम्ब को छोड़ने वाले गम्भीरा नदी के नीले जलरूपी वस्त्र को हटाकर ठहरे हुये तुम्हारा प्रस्थान वहाँ से अत्यन्त कठिनाई से होगा, क्योंकि रस का अनुभव किया हुआ कौन पुरुष जघन को प्रकट करने वाली रमणी का परित्याग करने में समर्थ होगा--

"तस्याः किञ्चित्करधृतमिव प्राप्तवानीरशाखं
नीत्वा नीलं सलिलवसनं मुक्तरोधोनितम्बम्।
प्रस्थानं ते कथमपि सखे ! लम्बमानस्य भावि
ज्ञातास्वादो विवृतजघनां को विहातुं समर्थः ।।"

यहाँ नदी और मेघ में नायक तथा नायिका के सम्भोग शृङ्गारजन्य सहज व्यवहारों का सूक्ष्म चित्रण हुआ है। उत्तरमेघ में भी अलका के वर्णन में वहाँ की सुन्दरियों तथा यक्षिणी के सहज सौन्दर्य के चित्रण में संयोग शृङ्गार की सुन्दर व्यञ्जना हुई है। अलकापुरी में सुन्दरियाँ सुन्दर फूलों के द्वारा शृङ्गार करती हैं। उनके करकमलों में लीलाकमल, लटों में फूलों का सुन्दर गुम्फन, मुख में लोध्रपुष्पों के पराग से उज्ज्वल शोभा, केशपाशों में नवीन कुरवक कुसुम का संयोजन, कान में सुन्दर शिरीष पुष्प और माँग में कदम्ब कुसुम रहता है—

हस्ते लीलाकमलमलके बालकुन्दानुविद्धं
नीता लोध्रप्रसवरजसा पाण्डुतामानने श्रीः।
चूडापाशे नवकुरवकं चारु कर्णे शिरीषं
सीमन्ते च त्वदुपगमजं यत्र नीपं वधूनाम् ।।"

जिस अलकापुरी में प्रियतम काम के आवेश से चञ्चल हाथों से वस्त्र की गाँठ के टूटने से शिथिल प्रेयसियों के रेशमी वस्त्र को खींचते हैं तो लज्जा से मुग्ध बिम्बफल के समान ओष्ठ वाली रमणियों के मुट्ठी भर कुङ्कुम आदि का चूर्ण उन्नत प्रकाश वाले रत्नदीपकों तक पहुँच कर भी (दीपकों के न बुझा पाने के कारण) निष्फल प्रयत्न वाला हो जाता है–

"नीवीबन्धोच्छ्वसितशिथिलं यत्र बिम्बाधराणां
क्षौमं रागादनिभृतकरेष्वाक्षिपत्सु प्रियेषु।
अर्चिस्तुङ्गानभिमुखमपि प्राप्य रत्नप्रदीपान्
ह्रीमूढानां भवति विफलप्रेरणा चूर्णमुष्टिः ॥"

इसी प्रकार यक्ष के द्वारा वर्णित यक्षिणी का शारीरिक सौन्दर्य भी सहज शृङ्गार की अभिव्यक्ति करा देता है–

"तन्वी श्यामा शिखरिदशना पक्वबिम्बाधरोष्ठी
मध्ये क्षामा चकितहरिणीप्रेक्षणा निम्ननाभिः ।
श्रोणीभारादलसगमना स्तोकनम्रा स्तनाभ्यां
या तत्र स्याद्युवतिविषये सृष्टिराद्येव धातुः ॥"

इस प्रकार हम देखते हैं कि सिद्धाङ्गनाओं, पौराङ्गनाओं, नदियों आदि युवतियों की विलासमयी चेष्टाओं में संयोग शृङ्गार का सुन्दर चित्रण हुआ है। कवि ने विप्रलम्भ शृङ्गार को प्रमुखता देकर जो उसमें संयोग का सुन्दर रङ्ग संजोया है उससे रस की स्वाभाविकता और ही बढ़ गई है। कविराज विश्वनाथ ने इस सन्दर्भ में इस प्रकार लिखा है–

'न विना विप्रलम्भेन सम्भोगः पुष्टिमश्नुते ।
कषायिते हि वस्त्रादौ भूयान् रागो विवर्धते ॥'

अर्थात् विप्रलम्भ के विना सम्भोग शृङ्गार की पुष्टि नहीं हो सकती है। कषैले वस्त्रादि पर ही गहरा रङ्ग अधिक चढ़ता है।

यद्यपि मेघदूत में अङ्गीरस विप्रलम्भ है फिर भी संयोग का अभाव खटकता नहीं है। इसमें शृङ्गाररस के अतिरिक्त हास्य, शान्त आदि रस भी अङ्ग के रूप में आये हैं। ये रस साक्षात् या परम्परया अङ्गीरस के उपकारक हैं।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि महाकवि कालिदास को रससंयोजन व्यापार में अत्यन्त सफलता मिली है।

उपमा कालिदासस्य

कविकुलगुरु कालिदास ने अपनी कविताकामिनी को अलङ्कारों से सम्यक् अलङ्कृत किया है। उनकी कवितावनिता अलङ्कारों की छटा से चमक उठी है। उनका अलङ्कार प्रयोग स्वाभाविक, सरस, रोचक, हृद्य एवं मनोहर है। अलङ्कारों के प्रयोग में उन्हें पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है। उपमा के लिये तो वे अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। उनके उपमाप्रयोग से प्रभावित होकर पण्डितों ने 'उपमा कालिदासस्य' इस उक्ति को प्रस्तुत किया है। उनकी उपमायें अत्यन्त सुन्दर, सरस, सरल, रोचक, प्रभावोत्पादक तथा स्वाभाविक हैं। उनमें उपमा के सभी गुण पाये जाते हैं। उनकी उपमायें प्रायः नूतन परिकल्पनाओं से विभूषित हैं।

संस्कृत के अलङ्कारशास्त्रियों ने उपमा को प्रमुख अलङ्कार माना है। उनका कथन है कि वास्तव में उपमा ही एक प्रमुख अलङ्कार है जो कि शैलूषी की तरह काव्यरूपी मञ्च पर विविध वेश वदल कर अन्य अलङ्कारों के रूप में आता है—

"उपमैषा शैलूषी सम्प्राप्तचित्रभूमिकाभेदान् ।
रञ्जयति काव्यरङ्गे नृत्यन्ती तद्विदां चेतः ॥"

कविराज विश्वनाथ ने उपमा अलङ्कार का लक्षण इस प्रकार किया है—

'साम्यं वाच्यमवैधर्म्यं वाक्यैक्य उपमा द्वयोः।'

अर्थात् वाक्य के एक होने पर दोनों (उपमान तथा उपमेय) का वैधर्म्य से रहित (विरुद्ध धर्मों के कथन से रहित) अभिधेय (इवादि शब्दों से)अभिधेय सादृश्य शब्दों से सादृश्य (समानता)उपमा कहलाती है।

उपमा अलङ्कार के अनेक भेद हैं। कालिदास ने अपने काव्य में प्रायः उपमा के सभी भेदों का प्रयोग किया है। कामिनियों का हृदय कुसुम के समान कोमल होता है। कवि कामिनियों के हृदय की कुसुम से उपमा देता है। यहाँ कवि औचित्य का पूर्ण ध्यान रखता है। एक ओर तो कुसुम सुरभि

परिपूर्ण और कोमल है तो दूसरी ओर ललनाओं का हृदय भी भावों से परिपूर्ण और कोमल है–

"आशाबन्धः कुसुमसदृशं प्रायशो ह्यङ्गनानाम्,
सद्यःपाति प्रणयि हृदयं विप्रयोगे रुणद्धि ।"

कवि कैलाश पर्वत के क्रोड में स्थित अलका का वर्णन करता है। इस सन्दर्भ में वह एक विचित्र साम्य प्रस्तुत करता है। अलका कैलाश पर्वत के एक ऊँचे भाग में स्थित है। उसका सहज सौन्दर्य पूर्णतया विलसित है। कवि कल्पना करता है कि कैलाश पर्वत प्रेमी है और उसकी गोद में बैठी हुई प्रेमिका है अलका, और गङ्गा नदी ऐसी लग रही है कि जैसे उस अलका-प्रेमिका का खिसका हुआ श्वेत वस्त्र हो। वर्षा के समय में जब अलका के ऊपर बादल छा जाते है तो ऐसा लगता है कि अलका कामिनी की केश राशि में मोती गूँथ दिये गये हों–

"तस्योत्सङ्गे प्रणयिन इव स्रस्तगङ्गादुकूलां
न त्वं दृष्ट्वा न पुनरलकां ज्ञास्यसे कामचारिन् ।
या वः काले वहति सलिलोद्गारमुच्चैर्विमाना
मुक्ताजालग्रथितमलकं कामिनीवाभ्रवृन्दम् ।।"

सुन्दरी यक्षिणी को लक्ष्य कर कवि कहता है कि पके हुये दाडिम के बीजों के समान नुकीली दाँतों वाली, परिपक्व बिम्बफल के समान लाल अधरोष्ठ से सुशोभित, भयभीत मृगी के समान चञ्चल नेत्रों से युक्त इस प्रकार तारुण्यपूर्ण उसका सौन्दर्य ब्रह्मा जी की प्रथम कृति है–

"तन्वी श्यामा शिखरिदशना पक्वबिम्बाधरोष्ठी
मध्ये क्षामा चकितहरिणीप्रेक्षणा निम्ननाभिः ।
श्रोणीभारादलसगमना स्तोकनम्रा स्तनाभ्यां
या तत्र स्याद्युवतिविषये सृष्टिराद्येव धातुः ।।"

कितनी सुन्दर कमनीय, आकर्षक एवं कोमल उपमा है। यदि एक पक्ष में कोमल कान्तपदावली का प्रयोग हुआ है तथा शृङ्गार का मधुर रस छलक रहा है तो उपमा का सहज सौन्दर्य भी तदनुकूल रसमाधुर्य की संरचना कर

रहा है। इसी प्रकार की उपमा हमें स्फुट रूप में शाकुन्तल के निम्नलिखित श्लोक में देखने को मिलती है–

"अधरः किसलयरागः कोमलविटपानुकारिणौ बाहू ।
कुसुममिव लोभनीयं यौवनमङ्गेषु सन्नद्धम् ॥"

कालिदास की उपमाओं में सत्यं शिवं सुन्दरम् का मञ्जुल सामञ्जस्य है। उदाहरण के लिये आगे राजा दिलीप हैं, मध्य में नन्दिनी और उसके पीछे रानी सुदक्षिणा। कवि नन्दनी एवं रानी की उपमा श्रुति एवं स्मृति से देता है–'श्रुतेरिवार्थं स्मृतिरन्वगच्छत्'। अर्थात् जिस प्रकार स्मृतियाँ श्रुति के अर्थ का अनुसरण करती हैं उसी प्रकार सुदक्षिणा नन्दिनी का अनुगमन कर रही है। नन्दिनी एवं सूर्य की सांयकालीन प्रभा की समरूपता का अवलोकन करें–

"सञ्चारपूतानि दिगन्तराणि
कृत्वा दिनान्ते निलयाय गन्तुम् ।
प्रचक्रमे पल्लवरागताम्रा
प्रभा पतङ्गस्य मुनेश्च धेनुः ॥"

इन्दुमती के स्वयम्वर में राजा लोग आसन जमाये हुये डटे हैं। उन्हें आशा है कि स्यात्, अनिन्द्यसुन्दरी इन्दुमती उनका वरण कर ले परन्तु इन्दुमती जिस-जिस राजा को विना वरण किये ही छोड़कर आगे बढ़ जाती है वे उसी प्रकार मलिन हो जाते हैं जिस प्रकार रात्रि के घोर अन्धकार में राजमार्ग पर स्थित भवन को दीपशिखा (दीपक की लौ) छोड़कर आगे बढ़ जाती है और वे भवन अन्धकार में प्रलीन होकर काले पड़ जाते हैं। जिस प्रकार दीपशिखा के हटने से भवन काले होते हैं उसी प्रकार इन्दुमती के राजाओं के पास से हटने पर राजाओं की कान्ति फीकी पड़ जाती है–

"सञ्चारिणी दीपशिखेव रात्रौ
यं यं व्यतीयाय पतिंवरा सा ।
नरेन्द्रमार्गाट्ट इव प्रपेदे
विवर्णभावं स स भूमिपालः ॥"

प्रस्तुत उद्धरण में कवि ने अत्यन्त कुशलता के साथ मूर्त्त इन्दुमती के

लिये अमूर्त्त दीपशिखा उपमान दिया है। इसी श्लोक की रचना से प्रभावित होकर पण्डितों ने कालिदास को 'दीपशिखा' की उपाधि से विभूषित किया है।

शकुन्तला को छोड़कर आश्रम से प्रस्थान करते समय दुष्यन्त का मन वायु से प्रतिकूल गमन करती हुई ध्वजा के समान बतलाया गया है—

"गच्छति पुरः शरीरं धावति पश्चादसंस्तुतं चेतः।
चीनांशुकमिव केतोः प्रतिवातं नीयमानस्य ॥"

राजा दुष्यन्त का शरीर ध्वजा के समान है। ध्वजा वायु से विपरीत दिशा में नहीं चलता है परन्तु चलाये जाने पर चलता ही है। उसी प्रकार राजा का शरीर भी बलपूर्वक आगे को बढ़ाया जाता है। वस्तुतः उनका अस्थिर मन ध्वजा के वस्त्र के समान पीछे (शकुन्तला) की ही ओर जाने को दौड़ रहा है।

ललनाललाम लोकाभिराम शकुन्तला के लावण्यसन्दोहसंवलित सुन्दर रूप को कवि मालोपमा के द्वारा प्रस्तुत करता है—

"अनाघ्रातं पुष्पं किसलयमलूनं कररुहै-
रनाविद्धं रत्नं मधु नवमनास्वादितरसम्।
अखण्डं पुण्यानां फलमिव च तद्रूपमनघं
न जाने भोक्तारं कमिह समुपस्थास्यति विधिः ॥"

इस श्लोक में शकुन्तला के सहज सौन्दर्य को विभिन्न उपमाओं के द्वारा स्पष्ट किया गया है। शकुन्तला का ललितलावण्य किसी व्यक्ति के द्वारा न सूँघे गये पुष्प के समान, नाखूनों से न छेदे गये नूतन किसलय के समान, न बींधे गये रत्न के समान, अनास्वादित नवीन शहद के समान तथा पुण्यकर्मों के अखण्डित फल के समान है।

कालिदास की उपमाओं में यह विशेषता है कि वे विषय को अधिक स्पष्ट करती हुई रसाभिव्यञ्जन व्यापार में सहायक सिद्ध होती हैं, साथ ही उनमें ऐसी मनोवैज्ञानिकता रहती है जिससे पाठक का मन सहसा ही विषय की ओर आकृष्ट हो जाता है। उन्होंने अपनी उपमाओं का ध्यान जगत् के विभिन्न स्थूल एवं सूक्ष्म क्षेत्रों से किया है। श्री वी० के० गोडे के मतानुसार

उनकी उपमाओं के प्रमुख स्रोत इस प्रकार हैं–(१) स्वर्ग तथा आकाश, (२) पृथ्वी, (३) बनस्पति जगत्, (४) पशुजगत्, (५) गृहजीवन, (६) पारिवारिकजीवन, (७) धार्मिक जीवन, (८) पुराणादि साहित्य, (९) ललितकलायें, (१०) भावजगत्, (११) काव्य रूढ़ियाँ, (१२) ज्योतिषशास्त्र, (१३) देवादि योनियाँ।

मूर्त के लिये अमूर्त, अमूर्त के लिये मूर्त, मूर्त के लिये मूर्त और अमूर्त के लिये अमूर्त उपमानों के लिये वे एक प्रसिद्ध कविरत्न हैं।

महाकवि कालिदास के औपम्यविधान की कुछ विशेषतायें—

१–कालिदास की उपमायें पात्र तथा परिवेश के अनुकूल होती हैं, अतः उनमें स्वाभाविकता एवं सरसता रहती है।

२–उनकी उपमाओं का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। उनकी उपमायें लौकिक तथा अलौकिक दोनों ही क्षेत्रों से संगृहीत हैं।

३–उनकी उपमाओं में सार्थकता के अतिरिक्त रमणीयता, औचित्य, सरलता, यथार्थता एवं पूर्णता के दर्शन होते हैं।

४–कालिदास की उपमाओं से केवल अर्थावबोध ही नहीं होता है अपितु उनसे वर्ण्यविषय का चित्र भी समक्ष उपस्थित हो जाता है।

५–उनकी उपमाओं में मानवसौन्दर्य के साथ ही साथ प्रकृति सौन्दर्य को भी ग्रहण किया गया है। ये दोनों ही परस्पर एक दूसरे को परिपुष्ट करने में सहयोग करते हैं।

६–कालिदास की उपमाओं में व्यञ्जकता है। वे व्यञ्जना व्यापार को पूर्ण सहयोग देती हैं तथा व्यङ्ग्यार्थ को परिपुष्ट करती हैं।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि कालिदास की उपमायें अद्वितीय हैं। उनकी उपमाओं में सजीवता, सरसता, स्वाभाविकता एवं भावबोधकता विद्यमान है। उनकी उपमायें सर्वजनीन हैं। सर्वसाधारण सहज में ही उनका रसास्वादन कर सकता है। उनमें औचित्य तथा सौन्दर्य बढ़ाने की अनुपम क्षमता है। उनके सुनने से ही विषय के आन्तरिक भाव की अनुभूति होने लगती है अतएव उनके विषय में 'उपमा कालिदासस्य' यह कथन सर्वथा उचित है।

प्रकृति चित्रण

प्रकृति मानव की चिरसहचरी है। उसका मानवजीवन के साथ आदिकाल से ही सम्बन्ध जुड़ा चला आ रहा है। भारतीय जनजीवन को हम प्राकृतिक उपादानों से पृथक् नहीं रख सकते हैं। उनका हृदय प्राकृतिक उपादानों के साथ पूर्णतया अनुस्यूत है। वैदिक मन्त्रदृष्टाओं ने भी प्रकृति सुन्दरी के सुनहरे अञ्चल में ही विराजमान होकर सामगायन का स्वर झंकृत किया था। भारत की प्राकृतिक संरचना अत्यन्त सजीव एवं सुन्दर है अतः भावुक कवि का उसके प्रति आकृष्ट होना सर्वथा स्वाभाविक है। यही कारण है कि यहाँ के प्रायः सभी कवियों ने येन केन प्रकारेण प्रकृति सुन्दरी के साथ मानव अन्तःकरण को संश्लिष्ट किया है।

महाकवि कालिदास विशुद्ध भारतीय परम्परा के कवि हैं। यही कारण है कि प्राकृतिक तत्त्वों से प्रभावित होकर भारतीय समाज उनकी कृतियों में अपने सहज रूप में प्रतिविम्वित हुआ है। इसी से उनके काव्यों में प्रकृति अपने स्वाभाविक विलास को लेकर स्पन्दित हो उठी है।

महाकवि कालिदास ने प्रकृति के साथ तादात्म्य सम्बन्ध की स्थापना की है। वे प्रकृति को सजीव तथा मानवीय भावनाओं से परिपूर्ण मानते हैं। उनके अनुसार मानव के ही समान प्रकृति भी सुख तथा दुःख का अनुभव करती है। वह भी सत्त्व, रजस् और तमस् से सम्बन्ध रखती है। इस प्रकार मानव जगत् के साथ उसका सीधा सम्बन्ध है। वह मनुष्य के दुःखित होने पर सहयोग करती है। इस प्रकार मनुष्य तथा प्रकृति एक दूसरे के लिये पूरक का कार्य करते हैं। मेघदूत में तो कवि का यह सिद्धान्त व्यावहारिक रूप में मिलता है। कवि अपनी अनुपम कल्पना शक्ति के द्वारा मेघ को यक्ष के दूत के रूप में प्रस्तुत करता है। कहाँ विदग्धमनोभयविलासों का मनीषी यक्ष तथा उससे सम्बन्धित पटुकरणप्रापणीय प्रेयसीजन के लिये प्रेषित सन्देश और कहाँ धूम, ज्योति और सलिल का संघात मेघ? परन्तु कवि इन दोनों में भी अपूर्व ताल मेल की स्थिति ला देता है। यक्ष मेघ से सन्देश ले जाने की प्रार्थना करता है जिसे मेघ स्वीकार कर लेता है। विचित्रता यह है कि गूँगी

प्रकृति भी भावुक यक्ष की भावना से प्रभावित होकर अपने गूँगेपन को खो देती है। ऐसी उदात्त कल्पना शायद ही संस्कृत साहित्य के सिवा अन्यत्र कहीं हो। प्रकृति को मनुष्य बनाकर उसके मुख से बातचीत तो कराई जा सकती है परन्तु प्रकृति को स्वाभाविक रूप में रखकर उसे सजीव, प्रत्यक्ष, व्यापक और अन्तरङ्ग बनाकर अपने कार्य के लिये रामगिरि से अलकापुरी तक भेजकर इतना बड़ा काम करा लेना मेघदूत के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं नहीं देखा जाता है।

यक्ष ने (कवि ने) अपने सन्देश को भेजने के लिये प्रकृति के परिवेश में एक लम्बी भूमिका बाँधी है जिसमें सर्वत्र प्रकृति का व्यापक रूप में चित्रण हुआ है। रामगिरि से लेकर अलका तक मार्ग निर्देश करते हुये यक्ष ने मेघ को मानुषिक और प्राकृतिक सौन्दर्य तथा सौन्दर्योद्भूत माधुर्य का रसास्वादन करवाया है। उनमें प्रकृति के अनलंकृत चित्र कम हैं। प्रकृत चित्र दृश्यमात्र रह जाते हैं। उदाहरण के लिये निम्नलिखित श्लोक को देखें—

'नीपं दृष्ट्वा हरितकपिशं केसरैरर्धरूढै-
राविर्भूतप्रथममुकुलाः कन्दलीश्चानुकच्छम्।
जग्ध्वारण्येष्वधिकसुरभिं गन्धमाघ्राय चोर्व्याः
सारंगास्ते जललवमुचः सूचयिष्यन्ति मार्गम्॥"

अर्थात् जिस समय तुम वृष्टि करते हुये चले जा रहे होगे उस समय अधपके हरे पीले कदम्ब पुष्पों पर मँडराते हुये भ्रमर, दलदलों में नवीन विकसित कन्दली की पत्तियों को चरते हुये हरिण अरण्यभूमि की तीक्ष्ण गन्ध सूँघते हुये तुम्हें मार्ग बतलाते चलेंगे।

कालिदास के प्रकृतिचित्रण में अन्तःप्रकृति तथा बाह्यप्रकृति दोनों का समान सामञ्जस्य खिल उठा है। बाह्यप्रकृति के चित्रण में कवि की अन्तरात्मा प्राकृतिक दृश्यों से पूर्णतया अनुस्यूत हो गई है। वह प्राकृतिक तत्त्वों को अपना सगा सम्बन्धी समझकर उनका सहज आकलन करता है। वे मेघ के वियोग से व्यथित निर्विन्ध्या की कृशता को छुड़वाने के लिये चिन्तित हैं अतएव कहते हैं—

"वेणीभूतप्रतनुसलिलाऽसावतीतस्य सिन्धुः
पाण्डुच्छाया तटरुहतरुभ्रंशिभिर्जीर्णपर्णैः ।
सौभाग्यं ते सुभग ! विरहावस्थया व्यञ्जयन्ती
कार्श्यं येन त्यजति विधिना स त्वयैवोपपाद्यः ।।"

अर्थात् हे सुभग मेघ ! वेणी की तरह थोड़े जल वाली, तट पर उगे हुये वृक्षों से गिरने वाली, सूखे हुये पत्तों से पीले वर्ण वाली अतएव वियोगावस्था से प्रवासस्थित तुम्हारे सौभाग्य को प्रकाशित करती हुयी नदी निर्विन्ध्या जिस प्रकार से कृशता को छोड़े, तुम्हें उस विधि को अवश्य करना चाहिए ।

कालिदास के काव्यों में प्रकृति मानव जीवन से सम्पृक्त होकर जीवन्त तथा अनुरागवती हो गई है । यही कारण है कि उनकी कृतियों में प्रकृति और कला में समरसता तथा एकरूपता के दर्शन होते हैं । यक्ष अलकापुरी के सुन्दरियों के विलास-वैभव का वर्णन करता हुआ कहता है—

'हस्ते लीलाकमलमलके बालकुन्दानुविद्धं
नीता लोध्रप्रसवरजसा पाण्डुतामानने श्रीः ।
चूडापाशे नवकुरवकं चारु कर्णे शिरीषं
सीमन्ते च त्वदुपगमजं यत्र नीपं वधूनाम् ।।"

अर्थात् जहाँ की विलासिनी स्त्रियाँ अपने करकिसलयों में कमल के आभूषण पहनती हैं, अपनी वेणियों में नवीन खिले हुये कुन्दकुसुम को गूँथती है, अपनी मुखश्री को लोध्रकुसुमों का पराग मलकर द्युतिमान् करती हैं, अपने केशपाश में नूतन कुरवक कुसुम सजाती हैं, शिरीष के सुमनों को श्रोत्राभूषण बनाती हैं, और कदम्ब के कुसुमों को सीमन्त पर शीश फूलों की तरह सजाती हैं ।

प्रकृति को मानवीकरण के रूप में प्रस्तुत करने में कालिदास सिद्धहस्त हैं । मेघ और अलकापुरी की अट्टालिकाओं की समरूपता का वर्णन निम्नलिखित श्लोक में देखें——

"विद्युत्वन्तं ललितवनिताः सेन्द्रचापं सचित्राः
सङ्गीताय प्रहतमुरजाः स्निग्धगम्भीरघोषम् ।

अन्तस्तोयं मणिमयभुवस्तुङ्गमभ्रंलिहाग्राः
प्रासादास्त्वां तुलयितुमलं यत्र तैस्तैर्विशेषैः ॥"

अर्थात् अलकापुरी की उच्चाट्टालिकायें तुम्हारे साथ पूर्ण सादृश्य रखती हैं। यदि तुम्हारे साथ चञ्चला विद्युच्छटा है तो उन भवनों में भी चञ्चल, ललित ललनायें हैं, यदि तुम्हारे पास इन्द्रधनुप है तो उन भवनों में भी विविध रंगों के चित्र सुशोभित हो रहे हैं, यदि तुम स्निग्ध गम्भीर घोष कर सकते हो तो वहाँ भी संगीत की संगत में मृदंग बजते हैं, यदि तुम्हारे अन्तस्तल में नीलजल है तो वहाँ की भूमि नीलम से जड़ी हुई है, यदि तुम ऊँचे पर हो तो अलका के प्रासाद भी गगनचुम्बी हैं।

महाकवि कालिदास की कृतियों में प्रकृति कलानुरञ्जिता अथवा शोभालङ्कृता बन गई है। वह उसी तरह से मनुष्य की स्फुरित सुरुचि बन गई है जिस प्रकार रत्नच्छाया व्यतिकर में इन्द्रधनुष से सजा हुआ घनश्याम मेघ मोर मुकुटधारी कृष्ण बन गया है। इस प्रकार के भावचित्रों से कवि के लालित्यबोध, लावण्यबोध, वस्तुबोध, ध्वनिबोध, रसबोध और कलाबोध का परिचय सहज में ही मिल जाता है।

मेघदूत में कवि की प्रकृति शृंगाररस प्रधान है। यहाँ प्रकृति-सुन्दरी अनेक विलासों से विलसित ललनाललाम के सहज रूप में चित्रित हुई है तभी तो निर्विन्ध्या नदी नायक मेघ को नाभिभँवर का दर्शन कराने में बिल्कुल हिचकिचाहट का अनुभव नहीं करती—

"वीचिक्षोभस्तनितविहगश्रेणिकाञ्चीगुणायाः
संसर्पन्त्याः स्खलितसुभगं दर्शितावर्तनाभेः।
निर्विन्ध्यायाः पथि भव रसाभ्यन्तरः सन्निपत्य
स्त्रीणामाद्यं प्रणयवचनं विभ्रमो हि प्रियेषु ॥"

अर्थात् हे मेघ ! मार्ग में तरंग के चलने से शब्द करने वाले पक्षी ही जिसकी करधनी हैं, पत्थरों पर गिरने से विलासिता के साथ बहने वाली तथा नाभि के समान भँवर को दिखलाने वाली निर्विन्ध्या नामक नदी के समीप जाकर उसके रस (जल अथवा शृंगार) को ग्रहण करने में अन्तरंग बनना

क्योंकि स्त्रियों की प्रणयीजनों में शृंगार चेष्टा ही प्रथम प्रणयवाक्य हो जाता है ।

मेघदूत उस रूप में प्रकृतिदूत है जिस रूप में वह मेघदूत है । वह धूम, ज्योति, सलिल और मरुत् का सन्निपात भी है और विरहविधुर प्रियतमा-प्रेमपारावारनिमग्न यक्ष का डाकिया भी । संगीत में जैसे समस्त प्रकृति का स्वर समागम हो जाता है वैसे ही मेघ में सम्पूर्ण प्रकृति का स्वारस्य समाविष्ट हो जाता है । यदि उसके दूतपक्ष को निकाल दिया जाय तो वह प्रकृति का खुला रूप ही रह जाता है और ऐसी स्थिति में उसका नग्न रूप उपस्थित होकर उसके हृद्य एवं सरस सौन्दर्य को विनष्ट कर देता है । इस प्रकार मेघ यक्ष के दूत होने पर ही मेघदूत है अर्थात् सरस, रोचक एवं सुन्दर है । अन्यथा तो बरसाती मेघ की तरह लोगों को शृंगार आदि रस से नहीं केवल पानी से भिगो देने वाला बादल ही रह जाता है । कवि ने मेघ में दूत की कल्पना करके उसके जड़रूप में चैतन्यरूप एवं सौन्दर्य की सृष्टि की वृष्टि करके उसकी कायाकल्प कर दी है । अब मेघ वह मेघ नहीं रहता है जो कि गर्जन के द्वारा लोगों को डरवा दे, वृष्टि के द्वारा कपड़ा भिगो दे तथा साधारण लोगों के घरों को बहा ले जाये अपितु अब तो वह मेघ नायक हो गया है जो अनेक तरह के लोगों से सेवित है, अनेक सुन्दरी नदीललनाओं के विभ्रम-विलास का स्वामी है अतएव साधारण ही नहीं अपितु सहृदय भी उसे अनुराग भरे हृदय से, चाह भरे नेत्रों से देखते हैं और पुलकित होते हैं ।

कालिदास का प्रकृतिचित्रण निरीक्षण की नवीनता, कल्पना की कमनीयता एवं सहृदयता की सरसता से आप्यायित है । वे प्रकृति के सुकुमार, मनोरम एवं ललित पक्ष के चित्रण में सिद्धहस्त हैं तभी तो उनका यक्ष अपनी प्रियतमा की देहलता को प्रियङ्गुलता में, चितवन को हरिणी की आँखों में, मुख को चन्द्रमा में, केशों को मयूरपंखों में तथा भृकुटिभंगिमा को नदी की मनोरम लहरों में देखता है और कहता है कि हे प्रिये ! खेद है कि इन सभी में कोई भी तुम्हारी छवि से तुलना नहीं कर पाता है—

"श्यामास्वङ्गं चकितहरिणीप्रेक्षणे दृष्टिपातं
वक्त्रच्छायां शशिनि शिखिनां बर्हभारेषु केशान् ।
उत्पश्यामि प्रतनुषु नदीवीचिषु भ्रूविलासान्
हन्तैकस्मिन्क्वचिदपि न ते चण्डि सादृश्यमस्ति ॥"

डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने ठीक ही लिखा है—"कालिदास ने मनुष्य की परिपूर्णता प्रकृति के साहचर्य में ही देखी है। जहाँ मनुष्य सहजात वृत्तियों के इशारों पर आँख मूँदकर आगे बढ़ने लगता है, वहाँ विनाश को निमन्त्रण देता है, परन्तु जहाँ वह तपस्या से अपने को ऐसा बना लेता है कि विश्व चराचर की प्रकृति उसके इशारे पर चलने लगती है तब वह अमृतत्व को निमन्त्रण देता है। कालिदास ने तपोवनों में प्रकृति के इंगितानुयायी रूप का साक्षात्कार किया।.........उनके सभी ग्रन्थों में प्रकृति का यह संयत मोहन रूप अवश्य मिल जाता है।" महाकवि कालिदास की कृतियों में हमें प्रकृति के १. आलम्बन, २. उद्दीपन, ३. दूतिका, ४. मानवीय संवेदिका, ५. मानवीकरण, ६. अलङ्करण, ७ उपदेशात्मक तथा ८. उपमान—ये सभी रूप देखने को मिलते हैं। उदाहरण के लिए मेघदूत में प्रकृति के दूतिका रूप का अवलोकन करें—

"सन्तप्तानां त्वमसि शरणं तत्पयोद ! प्रियायाः
सन्देशं मे हर धनपतिक्रोधविश्लेषितस्य ।
गन्तव्या ते वसतिरलका नाम यक्षेश्वराणां
बाह्योद्यानस्थितहरशिरश्चन्द्रिकाधौतहर्म्या ॥"

प्रकृति के परिप्रेक्ष्य में मेघदूत की मीमांसा करते हुए श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी लिखते हैं—"यों तो 'मेघदूत' प्रकृति का गीतिकाव्य है, इसमें राजसिक ऐश्वर्य्य यक्ष की विरह-कृश बाँहों से कनक-वलय की भाँति ही खिसक गया है, किन्तु अतीत की स्मृति के रूप में वह वैभव वनवास में भी उसके दृष्टि-पटल पर अङ्कित है। पूर्वमेघ में उज्जयिनी और उत्तरमेघ में अलका तथा स्वयं यक्ष के प्रसाद का वैभव उस युग की राजसी कला और ऐश्वर्य का द्योतक है। उज्जयिनी के ऐश्वर्य ने तो स्वर्ग को भी तुच्छ कर दिया। ऐसा

जान पड़ता था कि मानों स्वर्गवासी पुण्यात्मा अपने शेष पुण्य के बदले स्वर्ग का एक–एक जाज्वल्यमान अंश लेकर उज्जयिनी में आ बसे हैं।"

कालिदास की प्रकृति विषयक अन्तर्वृत्ति मूलतः सात्त्विक है। उनके प्रकृति चित्रण में ऐश्वर्य की शुभ्रचेतना उसी प्रकार से आलोकित हो रही है जिस-प्रकार शिव की शिरश्चन्द्रिका से अलका के प्रासाद आलोकित रहते हैं (हरशिरश्चन्द्रिका धौतहर्म्या) । कालिदास के इसीप्रकार के विविध प्राकृतिक दृश्य मानव हृदय को विभिन्न प्रकार की उत्कण्ठाओं एवं प्रेरणाओं से आन्दोलित करते हैं। मेघ के आकाश से उड़ने पर कटाक्ष करने में चतुर पौरसुन्दरियाँ अपने चपला सदृश चञ्चल चाकचक्य उत्पन्न कर देने वाले चुटीले, चारु, बाँके नयनों से मेघ को उलझाने का प्रयास करती हैं। कालिदास के प्रकृतिचित्रण वैशिष्ट्य के सन्दर्भ में विपश्चित् राइडर का मत मननीय है "ऐसे कम ही व्यक्तियों ने पृथ्वी पर चरणक्षेप किया होगा, जिन्होंने जीवित प्रकृति के इतने अधिक रूपों का सूक्ष्म निरीक्षण किया हो जितना कालिदास ने यद्यपि उनका निरीक्षण कवि का था वैज्ञानिक का नहीं,...... कालिदास का प्रकृतिज्ञान केवल सहानुभूतिमूलक ही नहीं है अपितु वह सूक्ष्म तथा सटीक है। हिमालय की हिमराशि तथा पवनसङ्गीत और पवित्र गंगा की शक्तिशालिनी धारा ही केवल उनके अधिकार की वस्तुयें नहीं हैं, छोटी-छोटी सरितायें, विटप तथा छोटे से छोटा फूल भी उनकी सृष्टिव्यापिनी दृष्टि से बाहर नहीं जा सके हैं।"

सौन्दर्य चित्रण

मनुष्य निसर्गतः सौन्दर्य प्रेमी है। लहलहाते हरे-भरे खेत, कुसुमितकानन-कुञ्ज, पल्लवित सहकारपादप, प्रातःकालीन रमणीय एवं कमनीय दृश्यों की कान्ति आदि सुहावने, मनलुभावने दृश्यों को देखकर वह प्रसन्नचित्त हो जाता है, सब कुछ भूल-भटक कर सौन्दर्यलोक में पहुँच जाता है और अपूर्व सौन्दर्य का अवलोकन कर परम आह्लाद की अनुभूति करता है। महाकवि कालिदास सच्चे माने में सौन्दर्य प्रेमी हैं। उनकी कृतियों में सौन्दर्यसुधा का सहज में

ही आस्वादन किया जा सकता है। उनके पात्रों में नितनूतन रमणीयता दिखलाई देती है। मेघदूत तो प्रकृतिसुन्दरी के सुनहरे अञ्चल में क्रीडा करने वाला सुन्दर गीतिकाव्य है। इसका मेघ सहज, सुन्दर, रमणीय, प्राकृतिक दृश्यों में विचरण करने वाला एक अनुपम दूत है।

कवि ने प्राकृतिक एवं मानवीय सौन्दर्य का सहज सम्मिश्रण अपने मेघदूत में किया है। प्राकृतिक सौन्दर्य का अवलोकन निम्नलिखित श्लोक में करें—

"तस्याः पातुं सुरगज इव व्योम्नि पश्चार्धलम्वी
त्वं चेदच्छस्फटिकविशदं तर्कयेस्तिर्यगम्भः।
संसर्पन्त्या सपदि भवतः स्रोतसि छाययाऽसौ
स्यादस्थानोपगतयमुनासङ्गमेवाभिरामा ॥"

अर्थात् हे मेघ ! ऐरावत के समान शरीर के पिछले भाग से आकाश में और पूर्वभाग से जल के सम्मुख रहकर तिरछे होकर निर्मल स्फटिक के समान उज्ज्वल गङ्गा के जल को पीने का विचार करोगे तो उसी क्षण प्रवाह में पड़ती हुई तुम्हारी छाया से गंगा जी प्रयाग से भिन्न स्थान में यमुना से से मिली हुई की तरह मनोहर प्रतीत होगी।

मानवीय सौन्दर्य चित्रण में कवि ने अदभुत सफलता प्राप्त की है। कवि के यक्षिणी के सौन्दर्य चित्रण में कितनी सहज स्वाभाविक नैसर्गिक सुषमा है—

"तन्वी श्यामा शिखरिदशना पक्वबिम्बाधरोष्ठी
मध्ये क्षामा चकितहरिणीप्रेक्षणा निम्ननाभिः।
श्रोणीभारादलसगमना स्तोकनम्रा स्तनाभ्यां
या तत्र स्याद्युवतिविषये सृष्टिराद्येव धातुः ॥"

अर्थात् वहाँ दुवली पतली (कृशाङ्गी), नुकीले दाँतों वाली, पके हुये विम्बाफल के समान ओठों वाली, पतली कमर वाली, डरी हुई हरिणी के समान नेत्रों वाली, गहरी नाभि वाली, नितम्बों के भार से धीरे-धीरे चलने वाली, स्तनों के उभार से कुछ आगे को झुकी हुई जो युवती तुम्हें दिखाई

पड़े, वही मेरी पत्नी है । उसकी सुन्दरता देखकर यही जान पड़ेगा कि मानों वही ब्रह्मा की सर्वोत्तम कृति हो ।

इसी प्रकार कवि ने नायिका शकुन्तला के सौन्दर्य चित्रण में इस प्रकार कहा है–

"चित्रे निवेश्य परिकल्पितसत्त्वयोगा
रूपोच्चयेन मनसा विधिना कृता नु ।
स्त्रीरत्नसृष्टिरपरा प्रतिभाति सा मे
धातुर्विभुत्वमनुचिन्त्य वपुश्च तस्याः ॥"

अर्थात् विधाता ने पहले चित्र में अङ्कित करके बाद में उसमें प्राणों का सञ्चार किया है अथवा मन के द्वारा सौन्दर्यराशि से निर्माण किया है । विधाता की निर्माण शक्ति का शकुन्तला के शरीर के सम्बन्ध में विचार करने पर यह शकुन्तला एक विलक्षण ही स्त्रीरत्न की सृष्टि प्रतीत होती है क्योंकि अन्यत्र ऐसी सुन्दरस्त्री के दर्शन नहीं होते हैं ।

कालिदास पार्वती के बाल्यसौन्दर्य की वृद्धि चन्द्रकला के समान बतलाते हुये उसे सञ्चारिणी पल्लविनी लता की संज्ञा देते हैं–

"आवर्जिता किञ्चिदिव स्तनाभ्यां वासो वसाना तरुणार्करागम् ।
पर्य्याप्तपुष्पस्तबकावनम्रा सञ्चारिणी पल्लविनी लतेव ॥"

अर्थात् स्तनों के उभार से, भार से झुके हुये शरीर पर प्रातःकालीन सूर्य के समान अरुणाभ परिधान धारण किये हुये वे ऐसी लग रहीं थीं जैसे फूलों के गुच्छों के भार से झुकी हुई सञ्चारिणी पल्लविनी लता नई लाल-लाल कोपलों वाली चलती फिरती लता हो ।

पार्वती के मुख को प्राप्त कर लक्ष्मी (सौन्दर्य) भी कृतकृत्य हो जाती है–

चन्द्रं गता पद्मगुणान्न भुङ्क्ते पद्माश्रिता चान्द्रमसीमभिख्याम् ।
उमामुखं तु प्रतिपद्य लोला द्विसंश्रया प्रीतिमवाप लक्ष्मीः ॥"

अर्थात् दो में रहने वाली चंचल लक्ष्मी जब चन्द्रमा में रहती थी तब वह कमल के आनन्द से वञ्चित रहती थी तथा जब कमल में रहती थी तब चन्द्रमा के आनन्द से वञ्चित रहती थी, परन्तु पार्वती के मुख को पाकर

उसने चन्द्रमा तथा कमल दोनों में रहने वाले आनन्द को एक साथ प्राप्त कर लिया।

रघुवंश में कवि दिलीप और सुदक्षिणा को चन्द्रमा और चित्रा नक्षत्र के रूप में चित्रित करते हैं–

"काप्यभिख्या तयोरासीद् व्रजतोः शुद्धवेषयोः।
हिमनिर्मुक्तयोर्योगे चित्राचन्द्रमसोरिव ॥"

अर्थात् जिस प्रकार चैत्र की पूर्णिमा में चित्रा नक्षत्र के साथ उज्ज्वल चन्द्र नेत्रों को सुन्दर लगता है वैसे ही राजमहिषी सुदक्षिणा के साथ मार्ग में जाते हुये उज्ज्वल वस्त्रों को पहने हुये राजा दिलीप भी सुन्दर लग रहे थे।

कवि का इसी प्रकार का सौन्दर्य विषयक एक श्लोक और देखें–

"अस्याः सर्गविधौ प्रजापतिरभूच्चन्द्रो नु कान्तिप्रदः ?
चित्तोन्मादरसः स्वयं नु मदनो मासो न पुष्पाकरः।
वेदाभ्यासजडः कथं नु विषयव्यावृत्तकौतूहलो
निर्मातुं प्रभवेन्मनोहरमिदं रूपं पुराणो मुनिः ॥"

अर्थात् इसकी रचना करने में ब्रह्मा का काम क्या कान्ति प्रदान करने वाले चन्द्रमा ने किया है ? अथवा मन को उन्मत्त करने वाले स्वयं कामदेव ने किया हैं, या वसन्त ने किया है, क्योंकि वेदों का अभ्यास करने से जड़ और विषयों से विरक्त वृद्ध विधाता इस रमणीय रूप को कैसे बना सकता था ?

अलकापुरी की विलासिनियों के प्रसाधनसौन्दर्य का कवि ने कितना स्वाभाविक चित्रण किया है–

"हस्ते लीलाकमलमलके बालकुन्दानुविद्धं
नीता लोध्रप्रसवरजसा पाण्डुतामानने श्रीः।
चूडापाशे नवकुरबकं चारु कर्णे शिरीषं
सीमन्ते च त्वदुपगमजं यत्र नीपं वधूनाम् ॥

अलकापुरी की सुन्दरी कन्याओं का विलास कवि कितनी सरसता के साथ प्रतिपादित करता है ! "अलकापुरी की कन्याएं इतनी सुन्दर है कि

देवता भी उन्हें प्राप्त करने के लिए तरसते हैं। वे कन्यायें मन्दाकिनी के सलिलसीकरों से शीतल पवन में तट पर खड़े हुए कल्पवृक्षों की छाया में तपन मिटाती हुयी, अपनी मुट्ठियों में रत्न लेकर उन्हें सुनहले बालू में डाल कर छिपाने तथा ढूँढ़ने, खोने और पाने का खेल खेला करती हैं–

"मन्दाकिन्याः सलिलशिशिरैः सेव्यमाना मरुद्भिः
मन्दाराणामनुतटरुहां छायया वारितोष्णाः ।
अन्वेष्टव्यैः कनकसिकतामुष्टिनिक्षेपगूढैः
संक्रीडन्ते मणिभिरमरप्रार्थिता यत्र कन्याः ॥

कवि के वर्णन सौन्दर्य का अवलोकन निम्नलिखित श्लोक में करें–

"त्वामारूढं पवनपद्वीमुद्गृहीतालकान्ताः
प्रेक्षिष्यन्ते पथिकवनिताः प्रत्ययादाश्वसत्यः ।
कः सन्नद्धे विरहविधुरां त्वय्युपेक्षेत जायां
न स्यादन्योऽप्यहमिव जनो यः पराधीनवृत्तिः ॥"

मेघ का मार्ग

अपनी प्रियतमा के वियोग से व्यथितमानस असहाय होकर यक्ष मेघ से अलकापुरी स्थित अपनी प्रियतमा के लिये सन्देश ले जाने की अभ्यर्थना करता है। इस सन्दर्भ में वह अपनी नगरी को जाने वाले मार्ग को मेघ को विस्तारपूर्वक बतलाता है जिसमें वह मार्ग में पड़ने वाले प्रमुख स्थानों, नदियों एवं पर्वतों के विषय में विधिवत् प्रकाश डालता है क्योंकि वह चाहता है कि मेघ उसकी प्रियतमा तक बिना किसी अन्तराय के शीघ्र ही पहुँच सके ताकि उसका सन्देश उसकी प्रियतमा को शीघ्र ही पहुँच सके। मेघ के द्वारा सन्देश ले जाने की अभ्यर्थना को स्वीकार कर लेने के उपरान्त यक्ष उसे मार्ग को इस प्रकार बतलाता है कि हे मेघ! तुमको मार्ग में आकाश-मार्ग से जाते हुये पथिकों की सुन्दरियाँ केशों के अग्रभागों को ऊपर उठाकर देखेंगी।

"त्वामारूढं पवनपदवीमुदगृहीतालकान्ताः
प्रेक्षिष्यन्ते पथिकवनिताः प्रत्ययादाश्वसत्यः ।"

भोली-भाली सिद्धसुन्दरियाँ तुम्हें चाह तथा आश्चर्यभरी दृष्टि से देखेंगी। गाँवों की सीधी-सादी सुन्दरियाँ तुम्हें सतृष्ण नेत्रों से आदरपूर्वक देखेंगी, क्योंकि वे समझती हैं, कि खेती का फल तुम्हारे ही अधीन है अतएव स्वाभाविक प्रेम से आर्द्र और गद्‌गद होकर वे तुम्हारा सम्मान करेंगी—

"त्वय्यायत्तं कृषिफलमिति भ्रूविलासानभिज्ञैः
प्रीतिस्निग्धैर्जनपदवधूलोचनैः पीयमानः ।"

इस प्रकार गाँव की भोली-भाली सुन्दरियों से सादर देखे जाते हुये तुम मालप्रदेश से होते हुये कुछ पश्चिम की ओर जाकर फिर उत्तर की ओर चलना, आगे चलकर तुम्हें आम्रकूट नामक पर्वत मिलेगा।[1] वनवासियों की सुन्दरियों से उपभुक्त कुञ्जों वाले उस आम्रकूट नामक पर्वत पर थोड़ी देर रुक कर जल की वृष्टि के द्वारा कुछ हलके होकर आगे प्रस्थान करना।

इसके पश्चात् विन्ध्य नामक पर्वत की तलहटी में बिखरी हुई 'नर्मदा' नदी के जल का पान करना। तुम्हारी गम्भीर गरज से भयातुर एवं काँपती हुयी सिद्ध सुन्दरियों से आलिङ्गित सिद्ध लोग तुम्हारे प्रति कृतज्ञ होंगे। इसके पश्चात् 'दशार्ण' नामक देश मिलेगा, जहाँ बगीचों के किनारे लगे हुए केवड़े के बाड़े पीले-पीले लग रहे होंगे क्योंकि इनके कलियों के ऊपरी भाग खिले होंगे और हंस थोड़े ही दिन रुक सकेंगे—

"पाण्डुच्छायोपवनवृतयः केतकैः सूचिभिन्नैः,
....
....
सम्पत्स्यन्ते कतिपयदिनस्थायिहंसा दशार्णाः ॥"

'दशार्ण' देश की राजधानी का नाम विदिशा है जो कि सर्वत्र विख्यात है—

'तेषां दिक्षु प्रथितविदिशालक्षणां राजधानीम् ।'

---

१. त्वामासारप्रशमितवनोपप्लवं साधु मूर्ध्ना
वक्ष्यत्यध्वश्रमपरिगतं सानुमानाम्रकूटः ।

विदिशा में पहुँचकर 'वेत्रवती' नदी के मुख का पान करके 'नीचैः' पर्वत पर विश्राम कर लेना, जहाँ की गुफाओं से रतिव्यापार में आसक्त वेश्याओं के शरीर की सुगन्ध निकल रही होगी। कुछ विश्राम के उपरान्त मार्ग में पानी बरसाते, छाया करते हुए—यद्यपि तुम उत्तर की ओर चल रहे होगे फिर भी मार्ग के वक्र (चक्कर से) होने पर भी उज्जयिनी दर्शन की लालसा का परित्याग न करना, क्योंकि वहाँ की स्त्रियों के चञ्चल कोवों वाले नेत्र बिजली की कौंध से चकित हो जायेंगे और यदि इस प्रकार के नयनों के दर्शन से अपने आप को आनन्दित न किया तो तुम अपना जीवन व्यर्थ ही समझना। अतः उज्जयिनी होते हुए आगे की यात्रा करना—

"वक्रः पन्था यद्यपि भवतः प्रस्थितस्योत्तराशां
सौधोत्सङ्गप्रणयविमुखो मा स्म भूरुज्जयिन्याः।
विद्युद्दामस्फुरितचकितैस्तत्र पौराङ्गनानां
लोलापाङ्गैर्यदि न रमसे लोचनैर्वञ्चितोऽसि ॥"

वहाँ पहुँचकर 'निर्विन्ध्या' नामक नदी से अवश्य मिल लेना। उज्जयिनी में स्थित 'शिप्रा' नदी की वायु सुगन्धित है। उस नगरी में रत्नों का बाहुल्य है। जहाँ उदयन-वासवदत्ता की प्रेम कथा अब भी सुनने को मिलती है। वहाँ महाकाल के मन्दिर में पहुँचकर पूजन के समय अपनी गर्जना रूपी मृदङ्गवादन कला से पुण्यलाभ करना। महाकाल के मन्दिर में वेश्यायें नृत्य कर रही होंगी। हे मेघ! इन वेश्याओं पर जब तुम वर्षा करोगे तो उनके शरीर पर प्रियतम द्वारा सम्भोग काल में किये गये नाखूनों की खरोचों के स्थान पर आराम मिलेगा, इसलिए लम्बे कटाक्ष फेकेंगी। एतदतिरिक्त अभिसारिकाओं को रात्रि में विद्युत्प्रकाश से उनके अभिसरण कार्य में मार्गदर्शन करना। अनवरत यात्रा करते हुए तुम्हारी पत्नी विद्युत् थक जायेगी। इसलिए वहाँ रात्रि में घर के किसी छज्जे पर ठहर कर विश्राम कर लेना। प्रातः होते ही पुनः प्रस्थान कर देना, परन्तु देवगिरि पर स्थित स्वामिकार्तिकेय की पूजा करना न भूलना तथा अपनी गर्जन से उनके वाहन मोर को

अवश्य नचा देना। तत्पश्चात् चर्मण्वती नदी को प्रणाम करके दशपुर की सुन्दरियों की आँखों के सामने से होकर निकलना। इसके बाद सरस्वती नदी के जल का पान करके कनखल की ओर निकल जाना। हिमालय पर्वत पर पहुँच कर वहाँ एक शिलातल पर अङ्कित शिव-चरण को प्रणाम करना। तत्पश्चात् क्रौञ्चरन्ध्र से निकलकर उत्तर की ओर चलकर कैलाश पर्वत पर पहुँचना। कैलाश पर्वत पर स्थित सुर-सुन्दरियाँ कंगनों से काट-काट कर जल बहाने वाले तुमको फव्वारे का घर बना देंगी। ऐसी दशा में अपनी गर्जना द्वारा उन्हें भयभीत कर देना तथा वहाँ से भाग निकलना--

"तत्रावश्यं वलयकुलिशोद्घट्टनोद्गीर्णतोयं
नेष्यन्ति त्वां सुरयुवतयो यन्त्रधारागृहत्वम्।
ताभ्यो मोक्षस्तव यदि सखे घर्मलब्धस्य न स्यात्
क्रीडालोलाः श्रवणपरुषैर्गर्जितैर्भाययेस्ताः॥"

उस कैलाश पर्वत की गोद में उसकी प्रियतमा के समान स्थित अलका को देखकर तुम समझ जाओगे कि यहाँ अलकापुरी है, जिसका गङ्गा रूपी धवल वस्त्र खिसक सा रहा होगा--

"तस्योत्सङ्गे प्रणयिन इव स्रस्तगङ्गादुकूलां
न त्वं दृष्ट्वा न पुनरलकां ज्ञास्यसे कामचारिन्।"

इस प्रकार की अलका के सतखण्डे महलों पर पहुँचकर पानी बरसाने लगना तो ऐसा लगेगा कि मानों कामिनी के केशपाश में मुक्ताओं का जाल पुहा हो--

"या वः काले वहति सलिलोद्गारमुच्चैर्विमाना
मुक्ताजालग्रथितमलकं कामिनीवाभ्रवृन्दम्।"

अन्यथा–अन्य + थाल् । वृत्तिः–वृत् + क्तिन् । चेतः–'चित्तं तु चेतो हृदयं स्वान्तं हृन्मानसं मनः'–अमरकोश । कण्ठाश्लेषप्रणयिनि–कण्ठे आश्लेषः कण्ठाश्लेषः (सप्तमी तत्पुरुष) कण्ठाश्लेषे प्रणयी, तस्मिन् (सप्तमी तत्पुरुष) । यह जने का विशेषण है । आश्लेषः–आश्लेषणमिति, आङ् + श्लिष + घञ् । प्रणयी–प्रणयः अस्यास्तीति, प्रणय + इनि । दूरसंस्थे–दूरे संस्था यस्य सः, तस्मिन । (बहुव्रीहि) । संस्था–संस्थानमिति–सम् + स्था + अङ् + टाप् । कौतुकाधानहेतोः–मेघ को यहाँ उत्कण्ठा उत्पत्ति का कारण बतलाया गया है । यक्ष अपने कौतुक की उत्पत्ति के कारणभूत मेघ के समक्ष बड़ी कठिनाई से खड़ा होता है क्योंकि वही (मेघ ही) उसकी उत्कण्ठा का कारण है । मेघालोके...... .....दूरसंस्थे —यह पद अत्यन्त व्यञ्जक है । कवि का कथन है कि मेघ के दर्शन से जब अवियुक्त सुखी व्यक्ति का भी चित्त उत्कण्ठित हो जाता है तो फिर कामी यक्ष का कहना ही क्या ? उसके विषय में तो जो कुछ कहा जाये थोड़ा है । यहाँ पूर्वार्द्ध स्थित चिन्ता रूप पदार्थ का उत्तरार्ध के द्वारा समर्थन होने के कारण अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है । लक्षण–"सामान्य वा विशेषो वा तदन्येन समर्थ्यते । यत्र सोऽर्थान्तरन्यासः साधर्म्येणेतरेण वा ।।" किं पुनर्दूरसंस्थे इस कथन से कैमुत्यन्याय से अर्थापत्ति अलङ्कार है । लक्षण—"दण्डापूपिकयान्यार्थागमोऽर्थापत्तिरिष्यते ।" दोनों की निरपेक्ष स्थिति होने के कारण संसृष्टि है । लक्षण—'मिथोऽनपेक्षयैतेषां स्थितिः संसृष्टिरुच्यते ।' प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति तथा मन्दाक्रान्ता छन्द है ।। ३ ।।

प्रसङ्ग—श्रावणमास के समीप होने से विरहव्यथित यक्षिणी के प्राणों की रक्षा के लिये यक्ष ने मेघ के द्वारा अपनी प्रेयसी के पास अपने कुशल वृत्तान्त को भेजने की योजना बनाई । एतदर्थ उसने सर्वप्रथम चमेली के नये फूलों से मेघ को अर्घ्य देकर प्रेमपरिपूर्ण वचनों से उसका स्वागत किया—

प्रत्यासन्ने नभसि दयिताजीवितालम्बनार्थी
जीमूतेन स्वकुशलमयीं हारयिष्यन् प्रवृत्तिम् ।
स प्रत्यग्रैः कुटजकुसुमैः कल्पितार्घाय तस्मै
प्रीतः प्रीतिप्रमुखवचनं स्वागतं व्याजहार ।। ४ ।।

पदच्छेद—प्रत्यासन्ने नभसि दयिताजीविताल‍म्बनार्थी जीमूतेन स्वकुशलमयीं प्रवृत्तिम् हारयिष्यन् प्रीतः सः प्रत्यग्रैः कुटजकुसुमैः कल्पितार्घाय तस्मै प्रीतिप्रमुखवचनं स्वागतं व्याजहार ॥ ४ ॥

अन्वय—नभसि प्रत्यासन्ने दयिताजीविताल‍म्बनार्थी जीमूतेन स्वकुशलमयीं प्रवृत्तिं हारयिष्यन् प्रीतः सः प्रत्यग्रैः कुटजकुसुमैः कल्पितार्घाय तस्मै प्रीतिप्रमुखवचनं स्वागतं व्याजहार ॥ ४ ॥

शब्दार्थ–नभसि=श्रवणमास के, प्रत्यासन्ने=समीप होने पर, दयिताजीविताल‍म्बनार्थी =प्रियतमा के प्राणों को सहारा देने का इच्छुक, जीमूतेन= मेघ के द्वारा, स्वकुशलमयीं=अपनी कुशलमयी, प्रवृत्तिं=वार्ता को, हारयिष्यन् =भेजने की इच्छा करते हुये, प्रीतः=प्रसन्न, सः=उस यक्ष ने, प्रत्यग्रैः= ताजे, कुटजकुसुमैः=गिरि मल्लिका के फूलों से कल्पितार्घाय=जिसे अर्घ्य दिया है (ऐसे), तस्मै=उस (मेघ) से, प्रीतिप्रमुखवचनं=प्रेम में सने वचनों से, स्वागतं=स्वागत, व्याजहार=कहा ॥ ४ ॥

हिन्दी अनुवाद-श्रावण (मास) के समीप होने से प्रेयसी (यक्षिणी) के प्राणों को सहारा देने के इच्छुक मेघ के द्वारा अपनी कुशलवार्ता को भेजने की इच्छा करते हुये प्रसन्न उस (यक्ष) ने नये गिरिमल्लिका के फूलों से जिसे अर्घ्य दिया है (ऐसे) उस (मेघ) से प्रेम पगे वचनों से स्वागत कहा ॥ ४ ॥

संस्कृत व्याख्या–नभसि=श्रावणे, प्रत्यासन्ने=समीपवर्तिनि (सति), दयिताजीविताल‍म्बनार्थी=प्रियतमाजीवनरक्षणेच्छुकः, जीमूतेन=मेघेन, स्वकुशलमयीं=स्वक्षेममयीम्, प्रवृत्तिं=वार्ताम्, हारयिष्यन्=प्रापयिष्यन्, प्रीतः= प्रसन्नः, सः=यक्षः, प्रत्यग्रैः=नूतनैः, कुटजकुसुमैः=गिरिमल्लिकापुष्पैः, कल्पितार्घाय=अनुष्ठितपूजाविधये, तस्मै=मेघाय, प्रीतिप्रमुखवचनं=प्रणयप्रधानवचनम्, स्वागतं=स्वागतवचः, व्याजहार=जगाद ॥ ४ ॥

आलोक

प्रत्यासन्ने—प्रति+आङ्+सद्+क्त । नभसि–श्रावण के महीने में । 'नभः खं श्रावणे नभाः'–अमरकोश । दयिताजीविताल‍म्बनार्थी–दयितायाः

जीवितं दयिताजीवितम् (षष्ठी तत्पुरुष) दयिताजीवितस्य आलम्बनं (षष्ठी तत्पुरुष) । दयिताजीवितालम्बनम् अर्थयते तच्छीलः—दयिताजीवितालम्बन+अर्थ्+णिनि—यहाँ 'सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये' इस सूत्र से णिनि प्रत्यय हुआ है । 'दयितं वल्लभं प्रियम्'—अमरकोश । जीवितम्—जीव धातु से 'नपुंसके भावे क्तः', से क्त प्रत्यय हुआ है । आलम्बनम्—आङ्+लबि+ल्युट् । जीमूतेन—मेघ के द्वारा । जीवनं जलं मूतं बद्धमनेन, यहाँ 'मूङ् बन्धने' धातु से कर्म में क्त प्रत्यय हुआ है । पृषोदरादि नियम से सिद्धि होती है । 'धाराधरो जलधरस्तडित्वान्वारिदोऽम्बुभृत् । घन-जीमूत-मुदिर-जलमुग्धूमयोनयः ॥'—अमरकोश । स्वकुशलमयीं—स्वस्य कुशलं स्वकुशलम् (षष्ठी तत्पुरुष) । प्रचुरं स्वकुशलं यस्यां सा, ताम्—यहाँ 'तत्प्रकृतवचने मयट्' से मयट् प्रत्यय हुआ है । स्वकुशल+मयट्+ङीप् । हारयिष्यन्—हारयिष्यति इति हृ+णिच्+लृट् ऐसी स्थिति में 'लृटः सद्वा' से शतृ प्रत्यय होता है । प्रवृत्तिम्—प्र+वृत्+क्तिन् । 'वार्ता प्रवृत्तिर्वृत्तान्त उदन्तः स्यात्'—अमरकोश । प्रत्यग्रैः—प्रति नवम् अग्रं येषां तानि, तैः (बहुव्रीहि) 'प्रत्यग्रोऽभिनवो नव्यो नवीनो नूतनो नवः'—अमरकोश । यह कुटजकुसुम का विशेषण है । कुटजकुसुमैः—कुटजानि च तानि कुसुमानि कुटजकुसुमानि, तैः (कर्मधारय) यहाँ 'साधकतमं करणम्' से करणसंज्ञा तथा 'कर्तृकरणयोस्तृतीया' से तृतीया हुई है । 'प्रसून कुसुमं समम्'—अमरकोश । 'कुटजो गिरिमल्लिका'—अमरकोश । कल्पितार्घाय कल्पितः अर्घः यस्य सः, तस्मै (बहुव्रीहि) । अर्घ शब्द का प्रयोग पूजा के अर्थ में हुआ है—'मूल्ये पूजाविधावर्घः'—अमरकोश । तस्मै—यहाँ 'क्रियया यमभिप्रैति सोऽपि सम्प्रदानम्' से सम्प्रदान संज्ञा तथा 'चतुर्थी सम्प्रदाने' से चतुर्थी हुई है । प्रीतः—प्री+क्त । प्रीतिप्रमुखवचनम्—प्रीतिः प्रमुखं येषां तानि प्रीतिप्रमुखानि (बहुव्रीहि) । प्रीतिप्रमुखानि वचनानि यस्मिन कर्मणि तद् यथा स्यात्तथा (बहुव्रीहि) । यह क्रियाविशेषण है । 'क्लीबे प्रधानं प्रमुखं प्रवेकाऽनुत्तमोत्तमाः'—अमरकोश । स्वागतम्—शोभनम् आगमनम् तत्, 'कुगति प्रादयः' से समास । व्याजहार—वि+आङ्+हृञ्+लिट् लकार प्रथम पुरुष एकवचन । संस्कृत साहित्य में अनेक

स्थानों पर ऐसे वर्णन मिलते हैं कि वसन्त, ग्रीष्म और वर्षा वियोगियों के लिये अत्यन्त दुःखप्रद होते हैं। वर्षा ऋतु में तो प्रायः प्रवासी लोग भी अपने-अपने घरों में आ जाते हैं। वाल्मीकि रामायण में लिखा है कि—'प्रवासिनो यान्ति नराः स्वदेशान्'। वर्षा ऋतु में रमणियों की स्थिति का वर्णन करते हुये महाकवि कालिदास इस प्रकार लिखते हैं—'दधति वरकुचाग्रैरुन्नतैर्हारयष्टिं प्रतनुसितदुकूलान्यायतैः श्रोणिबिम्बैः। नवजलकणसेकादुद्धतां रोमराजीं ललितवलिविभंगैर्मध्यदेशैश्च नार्यः॥" इस प्रकार कुबेर के शाप के कारण अपनी प्रियतमा के समीप पहुँचने में असमर्थ यक्ष प्रियतमा के अनिष्ट की आशंका से मेघ के द्वारा अपने कुशलक्षेम को भेजकर उसे धैर्य बँधाना चाहता है। कवि यक्ष को मेघ के समक्ष अत्यन्त चातुर्य के साथ प्रस्तुत करता है। यक्ष सर्वप्रथम मेघ की चमेली के फूलों से पूजा करता है और तत्पश्चात् स्वागत-वचन कहता है। वह इस प्रकार के शिष्टाचार के द्वारा मेघ को प्रभावित कर देता है जिससे मेघ उसके कार्य को करने में असमर्थता व्यक्त नहीं करता। यहाँ अनुप्रास अलङ्कार है। लक्षण—'वर्णसाम्यमनुप्रासः'। मेघ को देखकर यक्ष प्रहर्षित हो उठता है, अतः प्रहर्षण अलङ्कार भी है। प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति तथा मन्दाक्रान्ता छन्द है॥४॥

प्रसङ्ग—कामार्त्त व्यक्ति सब कुछ विस्मृत कर जाते हैं। यहाँ तक कि उन्हें जड़-चेतन में भी भेद नहीं दिखाई देता है। यही कारण है कि यक्ष धूमाग्निसलिलवायु के संघातभूत मेघ से सन्देश ले जाने के लिये याचना कर रहा है—

धूमज्योतिःसलिलमरुतां सन्निपातः क्व मेघः
सन्देशार्थाः क्व पटुकरणैः प्राणिभिः प्रापणीयाः।
इत्यौत्सुक्यादपरिगणयन्गुह्यकस्तं ययाचे
कामार्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु॥५॥

पदच्छेद—धूमज्योतिःसलिलमरुतां सन्निपातः क्व मेघः सन्देशार्थाः क्व पटुकरणैः प्राणिभिः प्रापणीयाः। इति औत्सुक्यात् अपरिगणयन् गुह्यकः तं ययाचे कामार्ताः हि प्रकृतिकृपणाः चेतनाचेतनेषु॥५॥

अन्वय--धूमज्योतिः सलिलमरुतां सन्निपातः मेघः क्व ? पटुकरणैः प्राणिभिः प्रापणीयाः सन्देशार्थाः क्व ? इति औत्सुक्यात् अपरिगणयन् गुह्यकः तं ययाचे हि कामार्ताः चेतनाचेतनेषु प्रकृतिकृपणाः ॥५॥

शब्दार्थ--धूमज्योतिःसलिलमरुताम्=धुआँ, तेज, जल एवं वायु का सन्निपातः=सम्मिश्रण, मेघः क्व=कहाँ मेघ, पटुकरणैः=चतुर इन्द्रियों वाले, प्राणिभिः=प्राणियों के द्वारा, प्रापणीयाः=भेजे जाने वाले, सन्देशार्थाः क्व=कहाँ सन्देश जैसे विषय, इति=इस विषय का, औत्सुक्यात्=उत्कण्ठा के कारण, अपरिगणयन्=विचार न करते हुये, गुह्यकः=यक्ष ने, तं=उस (मेघ) से, ययाचे=याचना की, हि=क्योंकि, कामार्ताः=काम से पीड़ित (प्राणी), चेतनाचेतनेषु=चेतन और जड़ के विषय में, प्रकृतिकृपणाः=स्वभाव से ही दीन हो जाते हैं ॥५॥

हिन्दी अनुवाद--कहाँ तो धुआँ, तेज, जल और वायु का सम्मिश्रण मेघ और कहां कुशल इन्द्रियों से युक्त प्राणियों के द्वारा भेजे जाने वाले सन्देश के वचन ? इस बात का उत्कण्ठा के कारण विचार न करते हुये यक्ष ने उस (मेघ) से याचना की क्योंकि काम से पीड़ित व्यक्ति चेतन और जड़ के विषय में स्वभाव से ही दीन (असमर्थ) हो जाते हैं ॥५॥

(संस्कृत व्याख्या--धूमज्योतिःसलिलमरुतां=धूमतेजोजलपवनानाम्, सन्निपातः=समुदायः, मेघः=वलाहकः, क्व=कुत्र, पटुकरणैः=चतुरेन्द्रियैः, प्राणिभिः=चेतनैः, प्रापणीयाः=प्रापयितव्याः, सन्देशार्थाः-सन्देशविषयाः, क्व=कुत्र, इति=एवम्, औत्सुक्यात्=औत्कण्ठ्यात्, अपरिगणयन्=अविचारयन्, गुह्यकः=यक्षः, तं=मेघम्, ययाचे-याचितवान्, हि=यतः, कामार्ताः=मदनपीडिताः, चेतनाचेतनेषु=चेतनजडेषु, प्रकृतिकृपणाः=स्वभावदीनाः भवन्तीति शेषः । अत्रार्थान्तरन्यासाऽनुप्राणितो विषमालङ्कारः । मन्दाक्रान्ता वृत्तम् ॥५॥)

आलोक

धूमज्योतिःसलिलमरुताम्--धूमश्च ज्योतिश्च सलिलं च मरुच्चेति धूमज्योतिसलिलमरुतः, तेषाम् ! यहाँ 'चार्थे द्वन्द्वः' से इतरेतरद्वन्द्व समास हुआ

है। सलिल—'सलिलं कमलं जलम्'—अमरकोश। सन्निपातः—सम+नि+पत्+घञ्। यहाँ भाव में घञ् प्रत्यय हुआ है। सन्देशार्थाः—सन्देशाः एव अर्थाः यहाँ मयूरव्यंसकादित्वात् समास हुआ है। सन्देश—सन्दिश्यते इति—सम्+दिश्+घञ्। पटुकरणैः—पटूनि करणानि येषां, तैः (बहुव्रीहि)। करणानि—क्रियन्ते एभिः इति करणानि। यहाँ कृ धातु से 'करणाधिकरणयोश्च' इस सूत्र से करण के अर्थ में ल्युट् प्रत्यय हुआ है। करण शब्द का प्रयोग यहाँ इन्द्रिय के अर्थ में हुआ है—'करणं साधकतमं क्षेत्रगात्रेन्द्रियेष्वपि'—अमरकोश। प्राणिभिः—प्राणाः सन्ति येषां, तैः, प्राण+इनि। 'प्राणी तु चेतनो जन्मी जन्तुजन्यशरीरिणः' अमरकोश। प्रापणीयाः—प्रापयितुं योग्याः—प्र+आप्+अनीयर्। औत्सुक्यात्—उत्सुकस्य भावः कर्म वा औत्सुक्यम्, तस्मात्। उत्सुक+ष्यञ्। यहाँ 'गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च' इस सूत्र से ष्यञ् प्रत्यय हुआ है। 'इष्टार्थोद्युक्त उत्सुकः'—अमरकोश। अपरिगणयन्—परिगणयतीति परिगणयन्—परि+गण्+णिच्+शतृ। 'लटः शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे' से सामानाधिकरण्य में भी शतृ प्रत्यय का विधान है। न परिगणयन्—'नञ्' सूत्र से समास तथा 'नलोपो नञः' सूत्र से नकार का लोप। गुह्यकः—गूहति=निधिं रक्षतीति—'गुह्+ण्वुल्', 'ण्वुल्तृचौ' से ण्वुल् प्रत्यय तथा 'पृषोदरादि' नियम से सिद्धि होती है। "विद्याधराऽप्सरो यक्षरक्षोगन्धर्वकिन्नराः। पिशाचो गुह्यकः सिद्धो भूतोऽमी देवयोनयः॥"—अमरकोश। इस प्रकार अमरसिंह ने यक्ष और गुह्यक नामक दो पृथक् देवयोनियाँ बतलाई हैं जबकि महाकवि कालिदास ने यक्ष और गुह्यक को पर्यायवाची माना है अतएव यहाँ विरोध उपस्थित हो जाता है। कोशकार व्याडि निधि की रक्षा करने वाले यक्ष को गुह्यक बतलाते हैं—'निधिं रक्षन्ति ये यक्षास्ते स्युर्गुह्यकसंज्ञकाः'—व्याडि। इस प्रकार व्याडिकोश के अनुसार यक्ष और गुह्यक दो पृथक् योनियाँ नहीं ठहरती हैं। सम्भव है कि मेघदूत का यक्ष निधिरक्षक रहा हो अतएव उसे गुह्यक कहा गया है। ययाचे—याच् धातु, लिट् लकार, आत्मनेपद प्र०पु० ए०व०। हि—'हि हेताववधारणे'—अमरकोश। कामार्ताः—कामेन आर्ताः कामार्ताः (तृतीय तत्पुरुष)। प्रकृति-

कृपणाः—प्रकृत्या कृपणाः (तृतीया तत्पुरुष) प्रकृत्या में 'प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम्' से तृतीया विभक्ति हुई है। चेतनाचेतनेषु—चेतनाश्च अचेतनाश्चेति, तेषु (द्वन्द्व समास)। कामार्त व्यक्ति सब कुछ भूल जाता है। वह सभी पदार्थों को प्रायः अपने अनुकूल ही समझता है। अभिज्ञानशाकुन्तल में भी कवि ने इसी बात को कहा है—'कामी स्वतां पश्यति'। कामार्त के विषय में अन्यत्र भी कहा गया है—'न पश्यति च जन्मान्धः कामान्धो नैव पश्यति। मदोन्मत्ता न पश्यन्ति ह्यर्थी दोषं न पश्यति॥' तथा 'को वा महान्धो ? मदनातुरो यः।' कामार्त व्यक्ति की स्थिति विचित्र हो जाती है। कामव्यथा से व्यथित पुरूरवा उर्वशी को लक्ष्य कर हंस से इस प्रकार कहता है—"हंस प्रयच्छ मे कान्तां गतिरस्यास्त्वया हृता। विभावितैकदेशेन देयं यदभियुज्यते॥" अर्थात् हे हंस तुम मेरी प्रियतमा मुझे दे दो क्योंकि तूने उसकी चाल चुराई है चोरी का थोड़ा भी माल जिसके पास पकड़ा जाता है उसे पूरा माल वापस लौटाना होता है। यहाँ जड़ता नामक व्यभिचारी भाव की अभिव्यक्ति हो रही है। जडता का लक्षण—"अप्रतिपत्तिर्जडता स्यादिष्टानिष्टदर्शनश्रुतिभिः। अनिमिषनयननिरीक्षणतूष्णींभावादयस्तत्र॥" श्लोक के प्रथम और द्वितीय चरण में मेघ और सन्देश इन दो विरूप पदार्थों का संघटन होने के कारण विषम अलङ्कार है। लक्षण—"विरूपयोः संघटना या च तद्विषमं मतम्।" इसी प्रकार चतुर्थ चरण के सामान्य अर्थ से विशेष अर्थ का समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास अलङ्कार भी है। ये दोनों अङ्गाङ्गिभाव रूप में स्थित हैं, अतः सङ्करालङ्कार हो गया है। लक्षण—"अङ्गाङ्गित्वेऽलङ्कृतीनां तद्वदेकाश्रयस्थितौ। संदिग्धत्वे च भवति सङ्करस्त्रिविधः पुनः॥" प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति तथा मन्दाक्रान्ता छन्द है ॥५॥

प्रसङ्ग—यक्ष युक्तिपूर्वक मेघ से निवेदन करता है कि पुष्कर और आवर्तक नामक मेघों के वंश में उत्पन्न होने वाले तथा इन्द्र के प्रधान पुरुष, आप को मैं भलीभाँति जानता हूँ इसीलिये मैं तुमसे कुछ याचना कर रहा हूँ क्योंकि गुणी व्यक्ति से याचना निष्फल होते हुये भी उचित है तथा अधम पुरुष से याचना सफल होते हुये भी अनुचित है—

जातं वंशे भुवनविदिते पुष्करावर्तकानां
जानामि त्वां प्रकृतिपुरुषं कामरूपं मघोनः ।
तेनार्थित्वं त्वयि विधिवशाद् दूरबन्धुर्गतोऽहं
याच्ञा मोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा ॥६॥

पदच्छेद--जातं वंशे भुवनविदिते पुष्करावर्तकानां जानामि त्वां प्रकृतिपुरुषं कामरूपं मघोनः । तेन अर्थित्वं त्वयि विधिवशात् दूरबन्धुः गतः अहं याच्ञा मोघा वरम् अधिगुणे न अधमे लब्धकामा ॥६॥

अन्वय--भुवनविदिते पुष्करावर्तकानां वंशे जातं कामरूपं मघोनः प्रकृतिपुरुषं त्वां जानामि तेन विधिवशात् दूरबन्धुः अहं त्वयि अर्थित्वं गतः अधिगुणे याच्ञा मोघा (अपि) वरम् अधमे लब्धकामा (अपि) न (वरम्) ॥६॥

शब्दार्थ--भुवनविदिते=लोकप्रख्यात, पुष्करावर्तकानां=पुष्कर और आवर्तक (नामक मेघों) के, वंशे=कुल में, जातं=उत्पन्न, कामरूपं=इच्छानुसार रूप को धारण करने वाले, मघोनः=इन्द्र के, प्रकृतिपुरुषं=प्रधानपुरुष, त्वां=तुमको, जानामि=जानता हूँ, तेन=इस कारण से, विधिवशात्=दैववश, दूरबन्धुः=दूर बन्धु (पत्नी) वाला, अहं=मैं, त्वयि=तुममें, अर्थित्वं गतः=याचकता को प्राप्त हुआ हूँ, अधिगुणे=गुणी पुरुष से, याच्ञा=की गई याचना, मोघा अपि=निष्फल होने पर भी, वरम्=अच्छी है, अधमे=अधम पुरुष से, लब्धकामा (अपि)=याचना सफल होने पर भी न (वरम्)=अच्छी नहीं है ॥६॥

हिन्दी अनुवाद--लोकविख्यात पुष्कर और आवर्तक (नामक मेघों) के कुल में उत्पन्न इच्छानुसार रूप को धारण करने वाले तथा इन्द्र के प्रधानपुरुष तुमको जानता हूँ इस कारण से दैववश पत्नी से वियुक्त (बिछुड़ा हुआ) मैं तुमसे याचना करता हूँ । (क्योंकि) गुणी पुरुष से की गई याचना निष्फल होने पर भी अच्छी है परन्तु अधमपुरुष से की गई याचना सफल होने पर भी अच्छी नहीं होती है ॥६॥

संस्कृत व्याख्या—भुवनविदिते=लोकविख्याते, पुष्करावर्तकानां=पुष्करावर्तकनामधेयमेघानाम्, वंशे=कुले, जातं=उत्पन्नम्, कामरूपम्=इच्छाधीनरूपम्, मघोनः=इन्द्रस्य, प्रकृतिपुरुष=प्रधानपुरुषम्, त्वां=मेघम्, जानामि=वेद्मि, तेन=तेन कारणेन, विधिवशात्=दैववशात्, दूरबन्धुः=विप्रकृष्टस्थितप्रियजनः, अहं=यक्षः, त्वयि=भवति, अर्थित्वं गतः=याचकतां प्राप्तः, अधिगुणे=गुणशालिनि पुरुषे, याच्ञा=याचना, मोघा अपि=निष्फलम् अपि, वरं=प्रियम्, अधमे=निर्गुण पुरुषे, लब्धकामा अपि=सफलाभिलाषा अपि, न वरं=न प्रियं भवतीति शेषः। अर्थान्तरन्यासोऽलङ्कारः। मन्दाक्रान्ता वृत्तम् ॥६॥

आलोक

जातम्—जन्+क्त। भुवनविदिते—भुवनेषु विदिते (सप्तमी तत्पुरुष)। विदित—विद् धातु से 'निष्ठा' इस सूत्र से भूतार्थ में क्त प्रत्यय। पुष्करावर्तकानाम्—पुष्कराश्च आवर्तकाश्च पुष्करावर्तकाः, तेषाम्। इस प्रकार की व्युत्पत्ति करके मल्लिनाथ ने पुष्कर और आवर्तक दो श्रेष्ठ मेघ के रूप में प्रस्तुत किये हैं परन्तु कुछ विद्वान् पुष्करावर्तक शब्द की व्युत्पत्ति विष्णुपुराण के "पुष्करा नाम ये मेघा बृहन्तस्तोयमत्सराः। पुष्कराऽऽवर्तकास्तेन कारणेनेह शब्दिताः॥" इस श्लोक के आधार पर पुष्करम्=जलम् आवर्तयन्ति इति पुष्कर+आङ्+वृत्+ण्वुल इस प्रकार की व्युत्पत्ति देते हैं परन्तु मातृवंश और पितृवंश के आधार पर पुष्कर और आवर्तक प्रधान पुरुष हो सकते हैं। इस प्रकार से मल्लिनाथ की व्याख्या पर आपत्ति टल जाती है। प्रकृतिपुरुषम्—प्रकृतौ पुरुषः प्रकृतिपुरुषः, तं प्रकृतिपुरुषम् (सप्तमी तत्पुरुष) जानामि—ज्ञा धातु लट्लकार उ०पु०ए०व०। कामरूपम्—कामं रूपं यस्य सः, तम् (बहुव्रीहि) अथवा कामेन रूप यस्य तम् (व्यधिकरण बहुव्रीहि)। कामम्—कामः=इच्छा, अस्ति यस्मिन् तत्। यहाँ 'अर्श आदिभ्योऽच्' से अच् प्रत्यय होता है। मघोनः—मह्यते=पूज्यते इति इस अर्थ में 'मह पूजायाम्' धातु से 'श्वन्नुक्षन्'—इत्यादि उणादि सूत्र से मघवन् शब्द निपातित होता है। "इन्द्रो मरुत्वान् मघवा विडौजाः पाकशासनः। वृद्धश्रवाः सुनासीरः पुरुहूतः पुरंदरः।'

अमरकोश । अर्थित्वम्—असंनिहितः अर्थः अस्यास्तीति इस अर्थ में 'अर्थाच्चाऽसंनिहिते' इस सूत्र से इनि प्रत्यय होकर अर्थिन् शब्द बनता है। अर्थिनः भावः अर्थित्वम् । अर्थिन्+त्वल्–'त्वान्तं क्लीबम्' से क्लीबत्व होता है। विधिवशात्–विधेः वशः, तस्मात् (षष्ठी तत्पुरुष) दूरवन्धुः—दूरे वन्धुः यस्य सः (व्यधिकरण बहुव्रीहि) । बन्धुः—स्नेहादिना मनः वध्नाति इति वन्धुः, बन्ध्+उ। गतः–गम्+क्त । याच्ञा–याचनमिति इस अर्थ में याच् धातु से (यजयाचयतविच्छप्रच्छरक्षो नङ्)इस सूत्र से नङ् प्रत्यय श्चुत्व तथा टाप् होकर याच्ञा रूप बनता है। अधिगुणे–अधिकाः गुणाः यस्य तस्मिन् (बहुव्रीहि) । 'देवाद्वृते वरः श्रेष्ठे त्रिषु क्लीबे मनाक् प्रिये' अमरकोश । लब्धकामा—लब्धः कामः यया सा (बहुव्रीहि) । प्रस्तुत श्लोक के द्वारा यक्ष का वाक्चातुर्य ध्वनित हो रहा है। वह अपने काम के कहने से पहले मेघ की स्तुति, अपनी कमजोरी और लोकमर्यादा की बात करता है। मेघ की स्तुति में वह कहता है कि आप पुष्कर और आवर्तक नाम वाले मेघों के श्रेष्ठ कुल में उत्पन्न हुए हैं, स्वेच्छानुसार विचरण करने वाले और इन्द्र के प्रमुख पुरुषों, ऐसे आपको मेरी सहायता करनी ही चाहिये। मैं भी दूर्भाग्यवशात् आपसे याचना कर रहा हूं। आप अत्यन्त गुणी एवं परोपकारी हैं। याचना सदैव गुणी पुरुष से ही करनी चाहिए अधम से नहीं क्योंकि गुणी पुरुष से की गई याचना निष्फल होने पर भी अच्छी है और अधम पुरुष से सफल याचना भी अच्छी नहीं है। यक्ष अपनी बात को इस प्रकार से प्रस्तुत करता है कि मेघ उसकी याचना को अवश्य ही स्वीकार कर ले। कवि के इस श्लोक के भाव को अन्यत्र भी देखें–"इत्याश्वासादभिमतविधौ कामये त्वां नियोक्तुं न्यस्तः साधीयसि सफलता–मर्थभारो हि धत्ते ॥"—उद्धवसन्देश । "अतोऽहं दुःखार्ता शरणमबला त्वां गतवती । न भिक्षा सत्पक्षे व्रजति ही कदाचिद्विफलताम् ॥" हंसदूतम् । यहाँ चतुर्थ चरण गत सामान्य अर्थ से विशेष अर्थ का समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है। यक्ष के इस प्रियतर आख्यान के प्रस्तुत किये जाने के कारण प्रेय अलङ्कार भी है। लक्षण–'प्रेयः प्रियतराख्यानम्' । प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति तथा मन्दाक्रान्ता छन्द है ॥६॥

प्रसङ्ग—यक्ष अपने सन्देश की भूमिका बाँधता हुआ मेघ से कहता है कि हे मेघ तुम सन्तापयुक्त जनों की शरण हो इसलिए कुबेर के क्रोध से वियुक्त मुझ प्रेमी के सन्देश को लेकर कुबेर की नगरी अलकापुरी की ओर जाने का कष्ट करो--

सन्तप्तानां त्वमसि शरणं तत्पयोद प्रियायाः
सन्देशं मे हर धनपतिक्रोधविश्लेषितस्य ।
गन्तव्या ते वसतिरलका नाम यक्षेश्वराणां
बाह्योद्यानस्थितहरशिरश्चन्द्रिकाधौतहर्म्या ॥७॥

पदच्छेद—सन्तप्तानां त्वम् असि शरणं तत् पयोद प्रियायाः सन्देशं मे हर धनपतिक्रोधविश्लेषितस्य । गन्तव्या ते वसतिः अलका नाम यक्षेश्वराणां बाह्योद्यानस्थितहरशिरश्चन्द्रिकाधौतहर्म्या ॥७॥

अन्वय—पयोद त्वं सन्तप्तानां शरणम् असि तत् धनपतिक्रोधविश्लेषितस्य मे सन्देशं प्रियायाः हर । ते बाह्योद्यानस्थितहरशिरश्चन्द्रिकाधौतहर्म्या यक्षेश्वराणां वसतिः अलका नाम गन्तव्या ॥७॥

शब्दार्थ--पयोद=हे मेघ, त्वं=तुम, सन्तप्तानां=सन्ताप से युक्त लोगों के, शरणं=रक्षक, असि=हो, तत्=इसलिये, धनपतिक्रोधविश्लेषितस्य= कुबेर के क्रोध से वियुक्त किए गये, मे=मेरे, सन्देशं=सन्देश को, प्रियायाः= प्रिया के समीप, हर=ले जाओ, ते=तुम्हें, बाह्योद्यानस्थितहरशिरश्चन्द्रिका-धौतहर्म्या=बाहर के उद्यान में स्थित शिव जी के शिर में (विद्यमान चन्द्रमा) की चन्द्रिका से उज्ज्वल महलों वाली, यक्षेश्वराणां वसतिः—कुबेर की नगरी, अलका नाम=अलकापुरी में, गन्तव्या=जाना होगा ॥७॥

हिन्दी अनुवाद—हे मेघ ! तुम सन्ताप से युक्त लोगों के रक्षक हो इसलिए कुबेर के क्रोध से (पत्नी से) वियुक्त किये गये मेरे सन्देश को प्रिया के समीप ले जाओ । बाहर के उद्यान में स्थित शिव जी के शिर (पर विद्यमान) की चन्द्रिका से धुले हुये महलों वाली कुबेर की नगरी अलकापुरी में जाना होगा ॥७॥

संस्कृत व्याख्या—पयोद=मेघ, त्वं=भवान्, सन्तप्तानां=सन्तापयुक्तानां जनानाम्, शरणं=रक्षकः, असि=वर्तसे, तत्=तस्मादेव कारणात्, धनपति-क्रोधविश्लेषितस्य=कुवेरकोपवियोजितस्य, मे=मम, सन्देशं=सन्देशवचनम्, प्रियायाः=दयितायाः, हर=नय, ते=तव, बाह्योद्यानहरशिरश्चन्द्रिकाधौतहर्म्या = बहिरुद्यानविद्यमानशिव मस्तकस्थितचन्द्रज्योत्स्नाप्रक्षालितधनिकभवना, यक्षेश्वराणां=गुह्यकपतीनाम्, वसतिः=निवासस्थानम्, अलका नाम = अलकेति प्रसिद्धा, गन्तव्या=गमनीया वर्तते । अत्रोत्प्रेक्षालङ्कारः मन्द्राक्रान्ता वृत्तम् ॥७॥

आलोक

सन्तप्तानाम्—सम्+तप्+क्त । 'सन्ताप. सञ्ज्वरः समौ'—अमरकोष । शरणम्—रक्षक । शरणं गृहरक्षित्रोः । पयोद—पयः ददाति इति पयोदः, तत्सम्बुद्धौ । यहाँ पयस् उपपदपूर्वक दा धातु से 'आतोऽनुपसर्गे कः' से क प्रत्यय, पयस्+दा+क । प्रियायाः—प्रीणातीति प्रिया, तस्याः—'प्री+क' यहाँ 'इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः' से क प्रत्यय हुआ है तथा 'अजाद्यतष्टाप्' से टाप् । सन्देशम्—सम्+दिश्+घञ् । हर-हृ धातु लोट् लकार म० पु० ए० व० । धनपतिक्रोधविश्लेषितस्य—धनस्य पतिः धनपतिः (षष्ठी तत्पुरुष), धनपतेः क्रोधः (षष्ठी तत्पुरुष), धनपतिक्रोधेन विश्लेषितस्य (तृतीया तत्पुरुष) । विश्लेषितः—वि+श्लिष्+णिच्+क्त । गन्तव्या—गम्+तव्यत्+टाप् । ते—यहाँ कृत्य प्रत्यान्त गन्तव्या के योग में 'कृत्यानां कर्तरि वा' इस सूत्र से विकल्प से षष्ठी हुई है । वसतिः—वस्+अति—यहाँ 'वहिवस्यर्तिभ्यश्च' इस सूत्र से अति प्रत्यय होता है । अलका—अलति=भूषयति इति—अल भूषणादिषु धातु से 'क्वुनशिल्पिसंज्ञयोरपूर्वस्यापि' इस सूत्र से क्वुन् प्रत्यय, अल+क्वुन्+टाप् । कुवेर की नगरी (City) का नाम अलका है—'अलका पूः' अमरकोश । 'अलका कुवेरपुर्यामस्त्रियां चूर्णकुन्तले'—मेदिनीकोश । यक्षेश्वराणाम्—यक्षाणाम् ईश्वराः, तेषाम् । यहाँ ईश्वर शब्द का अर्थ स्वामी है—'ईश्वरः प्रभुरीशिता'—अमरकोश । बाह्योद्यानस्थितहरशिरश्चन्द्रिकाधौतहर्म्या—बाह्यं च तत् उद्यानं

बाह्योद्यानम् (कर्मधारय), तस्मिन् स्थितः बाह्योद्यानस्थितः (सप्तमी तत्पुरुष) स चासौ हरः (कर्मधारय), तस्य शिरः (षष्ठी तत्पुरुष), तस्मिन् चन्द्रिका बाह्योद्यानस्थितहरशिरश्चन्द्रिका (सप्तमी तत्पुरुष), तया धौतानि (तृतीया तत्पुरुष), तादृशानि हर्म्याणि यस्यां सा (बहुव्रीहि) । स्थितः—स्था (ष्ठा) + क्त । हरः—हरति अघमति—'हृ + अच्' यहाँ 'पचाद्यच्' हुआ है । 'हरो नाशकरु-प्रयोः । वैश्वानरेऽपि च'—हेमचन्द्र । चन्द्रिका—चन्द्रोऽस्त्यस्याः—चन्द्र + ठन् अथवा चन्द्रयतीति 'तत्करोति'—इति ण्यन्तात् ण्वुल् । 'चन्द्रिका चन्द्रिमा चार्वी'—शब्दार्णवः । 'चन्द्रिका कौमुदी ज्योत्स्ना'—अमरकोष । हर्म्य—धनिक लोगों के गृहों को हर्म्य कहते हैं—'हर्म्यादि धनिनां वासः'—अमरकोष । यक्ष का कथन है कि हे मेघ ! तुम सन्तप्तों के शरण हो और मैं प्रियतमा के वियोग से सन्तप्त हूँ अतएव तुम्हें मेरी प्रियतमा तक सन्देशप्रेषण के द्वारा मेरे सन्ताप को कम करना चाहिये । यह ध्वनि कवि के 'सन्तप्तानां त्वमसि शरणम्' इस वाक्य से निकलती है । इस पद्य के द्वारा कवि ने अलकापुरी की विशिष्टता की ओर सङ्केत किया है । यक्ष का कथन है कि अलकापुरी कोई ऐसी-वैसी नगरी नहीं है । अलकापुरी के बाह्य उद्यान में विराजमान भगवान् शङ्कर के शिर पर स्थित चन्द्रिका से समुज्ज्वल भवनों से विभूषित उस नगरी में प्रवेश का सौभाग्य तुम्हें मेरे संदेश को ले जाने से ही प्राप्त होगा । चन्द्रिका के द्वारा समुज्ज्वल अलकापुरी को प्रस्तुत करने से वहाँ की उज्ज्वलता, शीतलता एव सुन्दरता को प्रस्फुटित किया गया है । कहने का भाव यह है कि अलकापुरी में वे सभी गुण विद्यमान हैं जो कि विलासी लोगों के उपभोग के योग्य होते हैं । अलकापुरी के वैशिष्ट्य के विषय में उत्तरमेघ में भलीभाँति प्रकाश डाला गया है । यहाँ प्रतिमानोत्प्रेक्षा तथा प्रेय नामक अलङ्कार हैं । अनुप्रास की छटा तो छिटक ही रही है । प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति तथा मन्दाक्रान्ता छन्द है ॥७॥

प्रसङ्ग—यक्ष कहता है कि हे मेघ ! जब तुम आकाश में उड़ोगे तो पथिक वनितायें तुम्हें अपने बालों के अगले भाग को ऊपर उठाकर इस विश्वास से देखेंगी कि अब मेरे प्रियतम आ रहे होंगे—

त्वामारूढं पवनपदवीमुद्गृहीतालकान्ताः
प्रेक्षिष्यन्ते पथिकवनिताः प्रत्ययादाश्वसत्यः ।
कः सन्नद्धे विरहविधुरां त्वय्युपेक्षेत जायां
न स्यादन्योऽप्यहमिव जनो यः पराधीनवृत्तिः ॥८॥

पदच्छेद—त्वाम् आरूढम् पवनपदवीम् उद्गृहीतालकान्ताः प्रेक्षिष्यन्ते पथिकवनिताः प्रत्ययात् आश्वसत्यः । कः सन्नद्धे विरहविधुरां त्वयि उपेक्षेत जायां न स्यात् अन्यः अपि अहम् इव जनः यः पराधीनवृत्तिः ॥८॥

अन्वय—पवनपदवीम् आरूढं त्वां पथिकवनिताः प्रत्ययात् आश्वसत्यः उद्गृहीतालकान्ताः (सत्यः) प्रेक्षिष्यन्ते । त्वयि सन्नद्धे (सति) अहम् इव यः जनः पराधीनवृत्तिः न स्यात् (सः) कः अन्यः विरहविधुरां जायाम् उपेक्षेत ॥८॥

शब्दार्थ—पवनपदवीम्=आकाशमार्ग से, आरूढम्=विचरण करने वाले, त्वाम्=तुमको, पथिकवनिताः=पथिकों की स्त्रियाँ, प्रत्ययात्=विश्वास से, आश्वसत्यः=आश्वस्त होती हुई, उद्गृहीतालकान्ताः=केशों के अग्रभाग को उठाकर, प्रेक्षिष्यन्ते=देखेंगी, त्वयि=तुम्हारे, सन्नद्धे = छा जाने पर, अहमिव=मेरे समान, यः=जो, जनः=व्यक्ति, पराधीनवृत्तिः=पराधीन व्यवहार वाला, न स्यात्=न हो, (सः) कः अन्यः=ऐसा कौन दूसरा (होगा जो), विरहविधुरां=वियोग से व्यथित, जायां=अपनी पत्नी की, उपेक्षेत=उपेक्षा करेगा ॥८॥

हिंदी अनुवाद—आकाशमार्ग से विचरण करने वाले तुमको पथिकों की स्त्रियाँ (पति के आगमन के) विश्वास से आश्वस्त होती हुईं अपने घुँघराले बालों के अग्रभाग को उठाकर (उत्कण्ठा पूर्वक) देखेंगी । तुम्हारे आ जाने पर मेरे समान जो व्यक्ति पराधीन व्यवहार वाला नहीं होगा अन्य कौन (व्यक्ति) वियोग से व्यथित अपनी पत्नी की उपेक्षा करेगा ? अर्थात् कोई भी उपेक्षा नहीं करेगा ॥८॥

संस्कृत व्याख्या--पवनपदवीं=आकाशमार्गम्, आरूढं=प्राप्तम्, त्वां=भवन्तम्, पथिकवनिताः=पान्थललनाः, प्रत्ययात्—विश्वासात्, आश्वसत्यः=धैर्य-युताः, उद्गृहीतालकान्ताः=उद्गृहीतचूर्णकुन्तलान्ताः, प्रेक्षिष्यन्ते=विलोकयिष्यन्ति, त्वयि=मेघे, सन्नद्धे=व्यापृते, अहमिव=यक्ष इव, यः जनः=यः लोकः, पराधीनवृत्तिः=परायत्तव्यवहारः, न स्यात्=न भवेत्, कः कतमः, अन्यः=इतरः, विरहविधुरां=वियोगव्यथिताम्, जायां=भार्याम्, उपेक्षेत=उपेक्षां कुर्यात्, न कोऽपि भार्य्याम् उपेक्षेत इति भावः। अर्थान्तरन्यासोऽलङ्कारः। मन्दाक्रान्ता वृत्तम् ॥८॥

आलोक

पवनपदवीम्—पवनस्य पदवी पवनपदवी, ताम् (षष्ठी तत्पुरुष)। पवनः—पुनाति इति इस अर्थ में 'बहुलमन्यत्रापि' इस सूत्र से युच् प्रत्यय होता है। 'नभस्वद्वातपवनपवमानप्रभञ्जनाः'—अमरकोश। आरूढम्—आ+रुह्+क्त। उद्गृहीतालकान्ताः—अलकानाम् अन्तः अलकान्तः (षष्ठी तत्पुरुष)। उद्गृहीताः अलकान्ताः याभिः ताः (बहुव्रीहि)। अलक—घुँघराले बालों को अलक कहते हैं— 'अलकाश्चुर्णकुन्तलाः'—अमरकोश। उद्गृहीत—उत्+ग्रह+क्त। प्रेक्षिष्यन्ते—प्र+ईक्ष्+लृट् प्रथम पुरुष बहुवचन। पथिकवनिताः—पथिकानां वनिताः पथिकवनिताः। पथिकवनितायें वे हैं जिनके परदेश में गये हुये पति घर के लिये लौट रहे हैं अतएव अभी मार्ग में स्थित हैं। पथिकवनितायें वस्तुतः प्रोषितभर्तृकायें हैं। प्रोषितभर्तृका का लक्षण—"नानाकार्य—वशाद्यस्या दूरदेशं गतः पतिः। सा मनोभवदुःखार्ता भवेत्प्रोषितभर्तृका ॥" पथिकः—पन्थानं गच्छति इति इस अर्थ में 'पथः ष्कन्' से ष्कन् प्रत्यय। 'अध्वनीनोऽध्वगोऽध्वन्यः पान्थः पथिक इत्यपि'—अमरकोश। प्रत्ययात्—यहाँ 'विभाषा गुणेऽस्त्रियाम्' से पञ्चमी हुई है। यहाँ विश्वास के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है—'प्रत्ययोऽधीनशपथज्ञानविश्वासहेतुषु'—अमरकोश। आश्वसत्यः—आश्वसन्ति इति इस अर्थ में आङ् उपसर्ग पूर्वक श्वस् धातु से शतृ प्रत्यय तथा ङीप्। कुछ लोग आश्वसन्त्यः ऐसा पाठ मानते हैं। और अपने पक्ष को पुष्ट करने के

लिये 'भ्वादिस्तु आकृतिगण:, तेन चलुम्पतीत्यादि संग्रह:' इस सिद्धान्तकौमुदी के प्रमाण को प्रस्तुत करते हैं। सन्नद्धे— सम्+नह+क्त। विरहविधुराम्-विरहेण विधुरा विरहविधुरा, ताम् (तृतीया तत्पुरुष)। यह जायाम् का विशेषण है। विधुरा—विगता धू: (भार:) यस्याः सा (बहुव्रीहि)। यहाँ 'ऋक्पूरब्धू: पथामानक्षे' से समासान्त अ प्रत्यय। जायाम्—जायते अस्यामिति जाया, ताम्। जन्+यक्+टाप्—यहाँ 'जनेर्यक्' से यक् प्रत्यय हुआ है। 'भार्या जायाथ पूंभूम्नि दारा:'—अमरकोश; मनुस्मृति में बतलाया गया है कि पति गर्भरूप से पत्नी में उत्पन्न होता है इसीलिये उसे जाया कहते हैं— "पतिर्भार्यां सम्प्रविश्य गर्भो भूत्वेह जायते। जायायास्तद्धि जायात्वं यदस्यां जायते पुन:॥" उपेक्षेत—उप+ईक्ष्+विधिलिङ्लकार प्र० पु० ए० व०। स्यात्—अस् धातु विधिलिङ्लकार प्र० पु० ए० व०। पराधीनवृत्ति:—पराधीना वृत्ति: यस्य स: (बहुव्रीहि) पराधीना—परस्मिन् आधीना पराधीना (सप्तमी तत्पुरुष)। वृत्ति:- वर्तनम्-वृत्+क्तिन्। इस श्लोक में उद्गृहीतालकान्ता: शब्द के द्वारा बालों के छोरों को ऊपर उठाकर अपने प्रियतम के आगमन के प्रति आश्वस्त होती हुई पथिक वनिताओं के चित्र को महाकवि कालिदास ने अत्यन्त स्वाभाविकता के साथ खींचा है। इससे उनके केशों की सुन्दरता, चितवन की चञ्चलता, भावों की भङ्गिमा, विलास का सुन्दर लास तथा पतिप्रियता अभिव्यञ्जित होती है। श्लोक के उत्तरार्ध के द्वारा यक्ष यह स्पष्ट कर देता है कि हे मेघ! तुम्हारे आगमन के समय पर मुझ जैसे पराधीन लोगों को छोड़कर कोई भी सहृदय अपनी प्रेयसी की उपेक्षा नहीं कर सकता अतएव मुझ जैसे असहाय की आप सहायता करें। यहां पथिकवनिताओं के 'उद्गृहीतालकान्ता:' इस स्वभाविक व्यापार के प्रस्तुत किये जाने के कारण स्वभावोक्ति अलङ्कार है तथा सामान्य से विशेष का समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास अलङ्कार भी है। यहाँ कुतूहल नामक नायिकालङ्कार है। लक्षण—'रम्यवस्तुसमालोके लोलता स्यात्कुतूहलम्।' प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति तथा मन्दाक्रान्ता छन्द है॥८॥

प्रसङ्ग :–यक्ष का कथन है कि हे मेघ! मुझे विश्वास है कि तुम अप्रतिहत गति से अलकापुरी में जाकर अपनी भाभी को अवश्य ही जीवितावस्था में

देख सकोगे क्योंकि आशा का बन्धन स्त्रियों के प्रेमी हृदय को प्रायः रोक रखता है—

तां चावश्यं दिवसगणनातत्परामेकपत्नी-
मव्यापन्नामविहतगतिर्द्रक्ष्यसि भ्रातृजायाम् ।
आशाबन्धः कुसुमसदृशं प्रायशो ह्यङ्गनानां
सद्यःपाति प्रणयि हृदयं विप्रयोगे रुणद्धि ॥९॥

पदच्छेद— तां च अवश्यं दिवसगणनातत्पराम् एकपत्नीम् अव्यापन्नाम् अविहतगतिः द्रक्ष्यसि भ्रातृजायाम् । आशाबन्धः कुसुमसदृशं प्रायशः हि अङ्ग-नानां सद्यःपाति प्रणयि हृदयं विप्रयोगे रुणद्धि ॥९॥

अन्वय — अविहतगतिः दिवसगणनातत्पराम् एकपत्नीं तां भ्रातृजायां च अव्यापन्नाम् अवश्यं द्रक्ष्यसि । हि आशाबन्धः अङ्गनानां कुसुमसदृशं विप्रयोगे सद्यःपाति प्रणयि हृदयं प्रायशः रुणद्धि ॥९॥

शब्दार्थ—अविहतगतिः=अप्रतिहत [अविच्छिन्न] गति वाले [तुम], दिवस-गणनातत्पराम्=दिनों के गिनने में लगी हुई, एकपत्नीं=पतिव्रता, तां=उस, भ्रातृजायाम्=भाभी को, अव्यापन्नाम्=जीवित, अवश्यम्=अवश्य, द्रक्ष्यसि = देखोगे, हि= क्योंकि, आशाबन्धः=आशा का बन्धन, अङ्गनानाम्=अब लाओं के, कुसुमसदृशम्=पुष्प के समान [कोमल] विप्रयोगे=वियोग में, सद्यःपाति=शीघ्र नष्ट होने वाले, प्रणयि=प्रेमी, हृदयम्=हृदय को प्रायशः=प्रायः, रुणद्धि=रोक रखता है ॥९॥

हिन्दी अनुवाद — अप्रतिहत (अविच्छिन्न) गति वाले (तुम) दिनों के गिनने में लगी हुई पतिव्रता उस अपनी भाभी को जीवित रूप में अवश्य देखोगे क्योंकि आशा का बन्धन अबलाओं के पुष्प के समान (कोमल) वियोग में शीघ्र नष्ट होने वाले प्रेमी हृदय को प्रायः रोक रखता है ॥९॥

संस्कृत व्याख्या - अविहतगतिः=अप्रतिहतगतिः, दिवसगणनातत्परां= दिनसंख्यानासक्ताम्, एकपत्नीं = पतिव्रताम्, तां = पूर्वोक्ताम् भ्रातृजायां=प्रजावतीम्, अव्यापन्नां=अमृताम्, अवश्यं=निश्चितं यथा स्यात्तथा, द्रक्ष्यसि=विलोकयिष्यसि, हि=यतोहि, आशाबन्धः=तृष्णाबन्धनम्

अङ्गनानां=अबलानाम्, कुसुमसदृशं=पुष्पतुल्यम्, विप्रयोगे=वियोगे,सद्यःपाति =तत्क्षणपतनशीलम्, प्रणयि=प्रेमयुक्तम्, हृदयं=जीवितम्, प्रायशः=प्रायेण, रुणद्धि=प्रतिबध्नाति । अर्थान्तरन्यासोऽलङ्कारः । मन्दाक्रान्ता वृत्तम् ॥९॥

आलोक

श्लोक संख्या ९ से १२ तक क्रम में गड़बड़ी है । किन्ही संस्करणों में कोई श्लोक कहीं रक्खा गया है तो कोई कहीं । अवश्यम् -यह दर्शनक्रिया का विशेषण है । दिवसगणनातत्पराम्–दिवसानां गणना दिवसगणना (षष्ठी–तत्पुरुष) तस्यां तत्परा दिवसगणनातत्परा, ताम् (सप्तमी तत्पुरुष) गणना–गण् + णिच् + युच् + टाप् । 'तत्परेप्रसितासक्तौ'–अमरकोश । एकपत्नीम्–एकः पतिः यस्याः सा एकपत्नी, ताम् (बहुव्रीहि)। यहाँ 'नित्यं सपत्न्यादिषु इस सूत्र से ङीप् तथा नकार हुआ है अथवा एका चासौ पत्नी, ताम् (कर्मधारय) । अव्यापन्नाम्–न व्यापन्ना अव्यापन्ना, ताम् (नञ् तत्पुरुष)। वि+आङ्+पद्+क्त+टाप् । अविहतगतिः– अविहता गतिः यस्य सः (बहुव्रीहि) अविहता-न विहता (नञ् तत्पुरुष) । गतिः–गमनमिति गम्+क्तिन् । भ्रातृजायाम्–भ्रातुः जाया भ्रातृजाया, ताम् [षष्ठी तत्पुरुष] । मेघ को अपनी पत्नी को भाभी के रूप में प्रस्तुत करता हुआ यक्ष यह स्पष्ट कर देता है कि तुम उसे देखकर सन्देश कथन की योग्यता रखते हो क्योंकि भाभी होने के कारण परस्त्री दर्शन एवं अभिभाषणजन्य दोष तुम्हें नहीं लगेगा । इससे यक्ष का व्यवहार चातुर्य ध्वनित होता है । आशाबन्धः– आशा एव बन्धः [रूपक०]। बन्धः–बध्यते अनेन इति–बन्ध्+घञ । आशा शब्द का प्रयोग यहाँ अतितृष्णा के अर्थ में हुआ है–'आशादिगतितृष्णयोः'– यादवकोश । कुसुमसदृशम्–कुसुमेन सदृशम (तृतीया तत्पुरुष)। प्रायश –प्राय शब्द से बह्वल्पार्थाच्छसरकारकादन्यतरस्याम्' से शस् प्रत्यय । 'प्रायश्चानशने 'मृत्यौ प्रायः बाहुल्यतुल्ययोः'–अमरकोश । अङ्गनानाम–प्रशस्तानि अङ्गानि यासां ताः तासाम्-यहाँ अङ्ग शब्द से 'लोमादिपामादिपिच्छादिभ्यः शनेलचः' इस सूत्र के 'अङ्गात्कल्याणे'इस वार्तिक से न प्रत्यय तथा टाप् होकर अङ्गना शब्द बनताहै सुन्दर अङ्गों वाली कामनियों को अङ्गना कहते हैं- 'विशेषास्त्वङ्गना भीरुःकामिनी वाम लोचना'-अमरकोश । सद्यःपाति–सद्यपतति इति तच्छीलम्–सद्यस्+पत्+णिनि ।

प्रणयि–प्रणयः अस्यास्तीति–प्रणय + इनि । हृदयम्–'चित्तं तु चेतो हृदयं स्वान्तं हृन्मानसं मन:'–अमरकोश । विप्रयोगे – वि + प्र + युज् + घञ् । रुणद्धि—रुध् धातु लट् लकार प्र० पु० ए० व० । यक्ष आशा प्रकट करता है कि मेघ उसकी पत्नी (अपनी भाभी) को जीवितावस्था में अवश्य ही देख सकेगा । एकपत्नी शब्द को प्रयुक्त कर कवि ने यक्षिणी के पातिव्रत्य की प्रशंसा की है । अन्यथा तो उसका दिवसगणनातत्परत्व ही व्यर्थ हो जाता और इसी प्रकार यक्ष की प्रगाढ़ अनुरक्ति भी महत्त्व खो बैठती । कवि ने यहाँ आशा को अत्यधिक महत्त्व दिया है । व्यक्ति दुर्लभ पदार्थ में आशा रखता हुआ जीवित रहता है अन्यथा यदि उसे उससे निराश कर दिया जाय तो वह अपने स्वत्व को खो बैठे । अतएव कहा भी गया है–'आशा हि परमं ज्योतिः नैराश्यं परमं तमः' । कुसुमसदृशम् विषय पर महाकवि भवभूति भी लिखते हैं–'पुरन्ध्रीणां चित्तं कुसुमसुकुमारं हि भवति ।' यहां 'आशाबन्धः' में रूपक, 'कुसुमसदृशम्' में उपमा अलङ्कार हैं । श्लोक के उत्तरार्ध में सामान्य अर्थ से विशेष अर्थ के समर्थित होने से अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है। इन अलङ्कारों का अङ्गाङ्गिभाव सङ्कर है । रूपक का लक्षण–'तद्रूपकमभेदो य उपमानोपमेययोः' । प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति तथा मन्दाक्रान्ता छन्द है ।।९।।

प्रसङ्ग—यक्ष मेघ से कह रहा है कि हमारे सन्देश को ले जाने के लिये कितने अच्छे शकुन हो रहे हैं ? पवन तुम्हें धीरे-धीरे प्रेरित कर रहा है । तुम्हारे वामभाग में स्थित यह पपीहा मधुर शब्द कर रहा है और ये आकाश में पंक्तिबद्ध होकर उड़ने वाली बगुलियां आपका सेवन अवश्य करेंगी—

मन्दं मन्दं नुदति पवनश्चानुकूलो यथा त्वां
वामश्चायं नदति मधुरं चातकस्ते सगन्धः ।
गर्भाधानक्षणपरिचयान्नूनमाबद्धमालाः
सेविष्यन्ते नयनसुभगं खे भवन्तं बलाकाः ।।१०।।

पदच्छेद—मन्दं मन्दं नुदति पवनः च अनुकूलः यथा त्वां वामः च अयं नदति मधुरं चातकः ते सगन्धः । गर्भाधानक्षणपरिचयात् नूनम् आबद्धमालाः

सेविष्यन्ते नयनसुभगं खे भवन्तं बलाकाः ॥ १० ॥

अन्वय—यथा च अनुकूलः पवनः त्वां मन्दं मन्दं नुदति अयं च ते सगन्धः चातकः वामः (सन्) मधुरं नदति, नूनं गर्भाधानक्षणपरिचयात् आबद्धमालाः बलाकाः नयनसुभगं भवन्तं खे सेविष्यन्ते ॥ १० ॥

शब्दार्थ—यथा च=और जैसे कि, अनुकूलः=अनुकूल, पवनः=वायु, त्वां=तुम्हें, मन्दं मन्दम्=धीरे-धीरे, नुदति=प्रेरित कर रहा है. (गतिशील वना रहा है), अयं च= और यह, ते=तुम्हारा, सगन्धः=सम्बन्धी, चातकः= चातक, वामः=बाई ओर, मधुरम्=मधुर, नदति = शब्द कर रहा है, नूनम्=निश्चय ही, गर्भाधानक्षणपरिचयात् = गर्भाधान रूपी उत्सव के परिचय से, आबद्धमालाः= पंक्तियाँ वनाये हुये, बलाकाः=वगुलियाँ, नयनसुभगम्= नेत्रों को सुन्दर लगने वाले, भवन्तम्= आपकी, खे = आकाश में, सेविष्यन्ते = सेवा करेंगी ॥ १० ॥

हिन्दी अनुवाद—और जैसे कि अनुकूल वायु तुम्हें धीरे-धीरे प्रेरित कर रहा है (गतिशील बना रहा है) और यह तुम्हारा सम्बन्धी चातक बाईं ओर स्थित होकर मधुर शब्द कर रहा है। निश्चय ही गर्भाधानरूपी उत्सव के परिचय से पंक्तियाँ बाँधे हुये वगुलियाँ नेत्रों को सुन्दर लगने वाले आपका आकाश में सेवन (उपभोग) करेंगी ॥ १० ॥

संस्कृत व्याख्या—यथा च=यतः च, अनुकूलः=अनुगुणः, पवनः= सदागतिः, त्वां=भवन्तम्, मन्दं मन्दं=शनैः शनैः, नुदति=प्रेरयति, अयं च=समीपस्थः, ते=तव, सगन्धः=सगर्वः, चातकः=सारङ्गः, वामः= वामभागस्थः, मधुरं=कर्णप्रियम्, नदति=व्याहरति, नूनं=निश्चितम् यथा स्यात्तथा, गर्भाधानक्षणपरिचयात्=सम्भोगकालोत्सवज्ञानात्, आबद्धमालाः= बद्धपंक्तयः, बलाकाः=बलाकाङ्गनाः, नयनसुभगं=नेत्रप्रियम्, भवन्तं=त्वाम्, खे =आकाशे, सेविष्यन्ते=सेवां करिष्यन्ति। उदात्तालङ्कारः। मन्दाक्रान्ता वृत्तम् ॥ १० ॥

आलोक

मन्दं मन्दम्—यह मेघ का विशेषण है ऐसा कुछ विद्वानों का विचार है

वस्तुतः यह नुदति क्रिया का विशेषण है। नुदति–नुद् धातु लट् लकार प्र० पु० ए० व०। अनुकूल:—जिस ओर मेघ को जाना है उसी ओर को वायु वह रहा है इस प्रकार वायु की अनूकूलता मेघ की यात्रा में सहायक ठहरती है। अनुकूल मन्द पवन शुभ शकुन का भी सूचक है। पवनः–'नभस्वद्वातपवन–पवमानप्रभञ्जनाः'– अमरकोश। यथा–'यथा सादृश्ययोग्यत्ववीप्सास्वार्थानितिक्रमे'– यादवकोश। वामः– यहाँ बायें के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है–'वामस्तु वक्रे रम्ये स्यात् सव्ये वामगतेऽपि च'–शब्दार्णव। नदति — नद् (णद्) लट् लकार प्र० पु० ए० व०। मधुरम्—यह नदति का क्रिया विशेषण है। मधु–माधुर्यं राति इति—मधु + रा + क अथवा मधु अस्ति अत्र–मधु + र। 'मधुरस्तु रसे विषे। मधुरं रसवत् स्वादुप्रियेषु मधुरोऽन्यवत्'—विश्वकोश। चातकः–चतति इति–चत् + ण्वुल्। 'अथ सारङ्गः (शारङ्गः) स्तोककश्चातकः समाः'—अमरकोश। चातक को हिन्दी में पपीहा भी कहते हैं। सगन्धः—गन्धेन सहितः यहाँ 'तेन सहेति तुल्ययोगे' इस सूत्र से बहुव्रीहि समास तथा 'वोपसर्जनस्य' से सह को विकल्प से सादेश हो जाता है। 'गन्धो गन्धक आमोदे लेशे सम्बन्धगर्वयोः,–विश्वकोश। 'सगन्धो बन्धुरिष्यते'–हलायुधकोश। गर्भाधानक्षणपरिचयात्—गर्भस्य आधानं गर्भाधानम् (षष्ठी तत्पुरुष), गर्भाधानम् एव क्षणः, तस्मिन् परिचयः, तस्मात् (सप्तमी तत्पुरुष)। क्षण शब्द का प्रयोग यहाँ उत्सव के अर्थ में हुआ है—'निर्व्यापारस्थितौ कालविशेषोत्सवयोः क्षणः'–अमरकोष। आबद्धमाला:—आबद्धा माला याभिः ताः (बहुव्रीहि)। सेविष्यन्ते–सेव् धातु लट्लकार प्र० पु० ब० व०। नयनसुभगम्–नयनयोः सुभगः नयनसुभगः, तम् (सप्तमी तत्पुरुष)। खे–खन्यते इति–खन् + ड। 'खस्वः संविदि व्योमनीन्द्रिये। शून्ये बिन्दौ मुखे (सुखे) खस्तु सूर्ये,–हेमचन्द्र। बलाकाः–'बलाका बिसकण्ठिका'–अमरकोश। मेघ यक्ष से कहता है कि यह शीतल मन्द समीरण आप के अनुकूल है। पपीहा वामभाग में स्थित होकर मधुर शब्द बोल रहा है। आकाश में बगुलियाँ तुम्हारा सेवन करेंगी। ये तुम्हारी यात्रा के शुभ शकुन हैं। 'नयनसुभगम्' पद के द्वारा

जहाँ मेघ की नयनाभिरामता सूचित होती है वहीं वह एक सुभग नायक के रूप में प्रस्तुत होता है और नेत्रानन्ददायी उस सुभग नायक मेघ के लिए वगुलियों का लालायित होना स्वाभाविक ही है। यहाँ शकुनरूप लोकातिशय सम्पत्ति के वर्णित होने के कारण उदात्त अलङ्कार है। उदात्त का लक्षण— 'लोकातिशयसम्पत्तिवर्णनोदात्तमुच्यते।' जिस प्रकार 'मन्दं मन्दम्' इत्यादि के द्वारा अनुकूल पवन के द्वारा मेघ को प्रेरित होना वतलाया गया है उसी प्रकार 'मन्दं मन्दम्' इस प्रकार की भाषा के द्वारा कवि का मन्दाक्रान्ता छन्द भी उत्प्रेरित हो रहा है। इस श्लोक में भाषा एवं भाव के लालित्य की ललित योजना है। प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति तथा मन्दाक्रान्ता छन्द है ॥१०॥

प्रसङ्ग—यहाँ यक्ष मेघ के श्रवणसुखद गर्जन का वर्णन करता है जो कुकुरमुत्ता को उत्पन्न करता है और जिसे सुनकर राजहंस मानसरोवर को जाने के लिये उत्कण्ठित हो उठते हैं। यक्ष का कथन है कि वे उत्कण्ठित हंस मार्ग में खाने के लिये कमलनाल के टुकड़ों को चोंच में दवाकर कैलास तक आप के साथ यात्रा करेंगे—

कर्तुं यच्च प्रभवति महीमुच्छिलीन्ध्रामवन्ध्यां
तच्छ्रुत्वा ते श्रवणसुभगं गर्जितं मानसोत्काः।
आ कैलासाद्विसकिसलयच्छेदपाथेयवन्तः
सम्पत्स्यन्ते नभसि भवतो राजहंसाः सहायाः ॥११॥

पदच्छेद—कर्तुं, यत् च प्रभवति महीम् उच्छिलीन्ध्राम् अवन्ध्यां तत् श्रुत्वा ते श्रवणसुभगं गर्जितं मानसोत्काः। आ कैलासात् विसकिसलयच्छेदपाथेयवन्तः सम्पत्स्यन्ते नभसि भवतः राजहंसाः सहायाः ॥ ११ ॥

अन्वय—यत् महीम् उच्छिलीन्ध्राम् अवन्ध्यां च कर्तुं प्रभवति तत् श्रवणसुभगं ते गर्जितं श्रुत्वा मानसोत्काः विसकिसलयच्छेदपाथेयवन्तः राजहंसाः नभसि आ कैलासात् भवतः सहायाः सम्पत्स्यन्ते ॥ ११ ॥

शब्दार्थ—यत् = जो, महीम् = पृथ्वी को, उच्छिलीन्ध्राम् = उगे हुये कुकुरमुत्तों वाली, अवन्ध्यां च = और सफल (उपजाऊ), कर्तुम् = करने में, प्रभवति = समर्थ होता है, तत् = उस, श्रवणसुभगम् = कानों को सुख देने वाले, ते = तुम्हारे, गर्जितम् = गर्जन को, श्रुत्वा = सुनकर, मानसोत्काः = मानसरोवर को जाने के लिए उत्कण्ठित, बिसकिसलयच्छेदपाथेयवन्तः = मार्ग में खाने के लिए मृणाल के अग्रभाग के टुकड़ों से युक्त, राजहंसा = राजहंस, नभसि = आकाश में, आ कैलासात् = कैलास पर्वत तक, भवतः = आपके, सहायाः = सहचर, सम्पत्स्यन्ते = होंगे ॥११॥

हिन्दी अनुवाद—जो पृथ्वी को उगे हुये कुकुरमुत्तों (शिलीन्ध्रपुष्पों) से युक्त और सफल (उपजाऊ) करने में समर्थ होता है, कानों को सुख देने वाले तुम्हारे उस गर्जन को सुनकर मानसरोवर को जाने के लिये उत्कण्ठित राजहंस मार्ग में खाने के लिये मृणाल के अग्रभाग के टुकड़ों को लिये हुये आकाश में कैलास पर्वत तक तुम्हारे सहचर होंगे ॥११॥

संस्कृत व्याख्या—यत् = गर्जितम्, महीं = पृथ्वीम्, उच्छिलीन्ध्रां = उद्गत्कन्दलिकाम्, अवन्ध्यां च = सफलां च, कर्तुं = विधातुम्, प्रभवति = शक्नोति, तत् = गर्जितम्, श्रवणसुभगं = कर्णमधुरम्, ते = तव, गर्जितं = स्तनितम्, श्रुत्वा = आकर्ण्य, मानसोत्काः = मानससरोवरोत्कण्ठिताः, बिस-किसलयच्छेदपाथेयवन्तः = मृणालाग्रखण्डसम्बलवन्तः, राजहंसाः = विशिष्टमरालाः, नभसि = गगने, आ कैलासात् = कैलासपर्यन्तम्, भवतः = तव, सहायाः = सहचराः, सम्पत्स्यन्ते = सम्भविष्यन्ति । अनुप्रासोऽलङ्कारः । मन्दाक्रान्ता वृत्तम् ॥११॥

आलोक

कर्तुम्—कृ + तुमुन् । प्रभवति–प्र + भू धातु लट् लकार प्र० पु० ए० व० । भू धातु का अर्थ होना है परन्तु प्र उपसर्ग जुड़ जाने से उसका अर्थ समर्थ होना हो जाता है । उपसर्ग के द्वारा धातु का अर्थ बदल जाता है । कहा भी गया है—"उपसर्गेण धात्वर्थो बलादन्यत्र नीयते । प्रहाराहारसंहारवि-

हारपरिहारवत् ॥" महीम्-मह्यते इति–'मह पूजायाम् ण्यन्त धातु से 'अच इः' से इ प्रत्यय तथा ङीप् । "सर्वंसहा वसुमती वसुधोर्वी वसुन्धरा। गोत्रा कुः पृथिवी पृथ्वी क्ष्मावनिर्मेदिनी मही" ॥ उच्छिलीन्ध्राम्–उद्गतानि शिलीन्ध्राणि यस्यां सा, ताम् उच्छिलीध्राम् (बहुव्रीहि) । 'कदल्यां च शिलीन्ध्रः स्यात्'-शब्दार्णव। अवन्ध्याम्–न वन्ध्या अवन्ध्या, ताम् (नञ् तत्पुरुष, अर्थात् जो वन्ध्या ऊसर वंजर नहीं है, उपजाऊ है। श्रुत्वा-श्रु+क्त्वा । श्रवणसुभगम्-श्रवणयोः सुभगम्, तत् यह गर्जितम् का विशेषण है श्रवणं श्रूयते आभ्यामिति– इस अर्थ में श्रु धातु से 'करणाधिकरणयोश्च' से करण में ल्युट् प्रत्यय। 'श्रुतिः स्त्री श्रवणं श्रवः'-अमरकोश । गर्जितम्–गर्ज्+क्त यहाँ 'नपुंसके भावे क्तः' से 'क्त प्रत्यय हुआ है। मानसोत्काः-मानसे उत्काः (सप्तमी तत्पुरुष) । मानस–ब्रह्मा जी ने अपने मन से इस सरोवर की रचना की थी इसलिये इसे मानससरोवर कहते हैं। वर्षाकाल में मानससरोवर हिमरहित हो जाता है अतः इस समय हंस मानससरोवर को जाते हैं ऐसी कवि प्रसिद्धि है। कविराज विश्वनाथ ने अपने साहित्यदर्पण में इस प्रकार लिखा है—'जलधरसमये मानसं यान्ति हंसाः' । उत्कः—'उत्क उन्मनाः' इस सूत्र से उत् उपसर्ग से कन् प्रत्यय होकर निपातनात् उत्क शब्द सिद्ध होता है। आ कैलासात्—यहाँ 'आङ् मर्यादावचने' से आङ् की कर्मप्रवचनीय संज्ञा तथा कर्मप्रवचनीय संज्ञक आङ् के योग में 'पञ्चम्यपाङ्-परिभिः' इस सूत्र से कैलास शब्द में पञ्चमी विभक्ति हुई है। बिसकिसलय-च्छेदपाथेयवन्तः–बिसानां किसलयानि (षष्ठी तत्पुरुष) बिसकिसलयानि, तेषां छेदाः बिसकिसलयच्छेदा बिसकिसलयच्छेदाः, एव पाथेयम् अस्ति येषां ते बिस-किसलयच्छेदपाथेयवन्तः । पाथेयवन्तः–पथि साधु इति इस अर्थ में पथिन् शब्द से 'पथ्यतिथिवसतिस्वपतेर्ढञ्' इस सूत्र से ढञ् प्रत्यय तथा ढ को एय आदेश होकर पाथेय शब्द बनता है। पाथेय शब्द से 'तदस्याऽऽस्त्यस्मिन्निति मतुप्' इस सूत्र से मतुप् प्रत्यय तथा मकार को वकार आदेश होता है। सम्पत्स्यन्ते–सम्+पद् धातु लृट् लकार प्र० पु० ब० व० । नभसि–नभते इति–नभ् (णभ्) +असुन् । 'नभः क्लीवं व्योम्नि पुमान् घने । घ्राणश्रावणवर्षासु बिसतन्तौ

पतद्गृहे' मेदिनीकोश। राजहंसा-हंसानां राजानः (षष्ठी तत्पुरुष)। यहाँ 'राजदन्सूत्रतादिषु परम्' इस सूत्र से राजन् पद का पूर्व प्रयोग हुआ है। राजहंस उन हंसों को कहते हैं जिनके चोंच और चरण लाल होते हैं तथा पंख सफेद होते हैं—राजहंसास्तु ते चञ्चुचरणैर्लोहिताः सिताः'—अमरकोश। ऐसा कहा जाता है कि जब मेघ गरजता है तो भूमि पर शिलीन्ध्रपुष्प उत्पन्न होते हैं। कवि यहाँ पर मेघ के गर्जन को श्रवणसुभग बतलाता है क्योंकि इसके द्वारा वन्ध्यात्व का विघात होता है। अतएव इस श्लोक से यह अभिव्यक्त होता है कि यह मेघ गर्जन यक्षिणी को मधुर लगेगा, वह इसे सुनकर उत्कण्ठित होगी और भविष्य में प्रियसमागम से उसके वन्ध्याभाव का विघात होगा। मेघ के साथ हंसों का मानसरोवर की ओर प्रस्थान स्वाभाविकता को लिये हुये है अतः यहाँ स्वाभावोक्ति अलङ्कार है। स्वभावोक्ति का लक्षण—'स्वभावोक्तिर्दुरूहार्थस्वक्रियारूपवर्णनम्'। अनुप्रास भी है। प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति तथा मन्दाक्रान्ता छन्द है ॥११॥

प्रसङ्ग—यक्ष कहता है कि हे मेघ ! यह रामगिरि पर्वत तुम्हारा प्रिय मित्र है। इससे भलीभाँति मिलकर विदा ले लो क्योंकि यह तुमसे मिलने पर आँसुओं को बहाकर अपने प्रेम को प्रकट किया करता है—

आपृच्छस्व प्रियसखममुं तुङ्गमालिङ्ग्य शैलं
वन्द्यैः पुंसां रघुपतिपदैरङ्कितं मेखलासु ।
काले काले भवति भवतो यस्य संयोगमेत्य
स्नेहव्यक्तिश्चिरविरहजं मुञ्चतो बाष्पमुष्णम् ॥१२॥

पदच्छेद—आपृच्छस्व प्रियसखम् अमुम् तुङ्गम् आलिङ्ग्य शैलं वन्द्यैः पुंसां रघुपतिपदैः अङ्कितं मेखलासु। काले काले भवति भवतः संयोगम् एत्य स्नेहव्यक्तिः चिरविरहज मुञ्चतः बाष्पम् उष्णम् ॥१२॥

अन्वय—पुंसां वन्द्यैः रघुपतिपदैः मेखलासु अङ्कितं प्रियसखम् अमुं तुङ्गं शैलम् आलिङ्ग्य आपृच्छस्व, काले काले भवतः संयोगम् एत्य चिरविरहजम् उष्णं बाष्पं मुञ्चतः यस्य स्नेहव्यक्तिः भवति ॥१२॥

शब्दार्थ--पुंसाम्=लोगों के, वन्द्यैः=वन्दनीय, रघुपतिपदैः=रामचन्द्र के चरणों से, मेखलासु=मध्य भागों में, अङ्कितम्=चिह्नित, प्रियसखम्=प्रियमित्र, अमुम्=इस, तुङ्गम्=उन्नत, शैलम्=रामगिरि पर्वत का, आलिङ्ग्य=आलिङ्गन करके, आपृच्छस्व=विदा ले लो, काले काले=समय समय पर (वर्षा काल में), भवतः=आप के, संयोगम्=सम्पर्क को, एत्य=पाकर, चिरविरहजम्=बहुत समय के वियोग से उत्पन्न, उष्णम्=गर्म, वाष्पम्=वाष्प (भाप या आँसू), मुञ्चतः=छोड़ते हुये, 'यस्य=जिस (पर्वत) की, स्नेहव्यक्तिः=प्रेम की अभिव्यक्ति, भवति=होती है ॥१२॥

हिन्दी अनुवाद--लोक के वन्दनीय रामचन्द्र के चरण (न्यासों) से मध्यभागों में चिह्नित प्रियमित्र इस उन्नत (रामगिरि) पर्वत का आलिङ्गन करके विदा ले लो। समय समय पर (वर्षाकाल में) आपके सम्पर्क को पाकर बहुत समय के वियोग से उत्पन्न गर्म वाष्प (भाप या आँसू) छोड़ने वाले जिस (रामगिरि पर्वत) के प्रेम की अभिव्यक्ति होती है ॥१२॥

संस्कृत व्याख्या—पुंसां=लोकानाम्, वन्द्यैः=वन्दनीयैः, रघुपतिपदैः=रामचन्द्रचरणैः, मेखलासु=मध्यभागेषु, अङ्कित=चिह्नितम्, प्रियसख=प्रियमित्रम्, अमुं=एतम्, तुङ्गं=उन्नतम्, शैलं=गिरिम्, आलिङ्ग्य=आश्लिष्य, आपृच्छस्व=अनुज्ञां गृहाण, काले काले=समये समये, भवतः=तव, संयोगं=सम्पर्कम्, एत्य=प्राप्य, चिरविरहजं=दीर्घकालवियोगोद्भूतम्, उष्णं=अशीतम्, बाष्पं=नेत्रजलम्, मुञ्चतः=परित्यजतः, यस्य=रामगिरेः, स्नेहव्यक्तिः=प्रेमाभिव्यक्तिः, भवति=जायते। सामासोक्तिरलङ्कारः। मन्दाक्रान्ता वृत्तम् ॥१२॥

आलोक

आपृच्छस्व-आङ्+प्रच्छ्+लोट्+थास्। यहाँ 'आङि नु प्रच्छयोः' इस सूत्र से आत्मनेपद का विधान होता है। प्रियसखम्–प्रियश्चासौ सखा चेति प्रियसखा, तम् (कर्मधारय)। प्रियसखिन्+टच्—यहां 'राजाहःसखिभ्यष्टच्' से टच् प्रत्यय हुआ है। आलिङ्ग्य-आङ्+लिङ्+क्त्वा→ल्यप्। शैलम्–

प्रचुराः शिलाः सन्ति अत्र–शिला+अण् । यहाँ ज्योत्स्नादित्वात् अण् प्रत्यय हुआ है । "महीध्रे शिखरिक्ष्माभृदहार्यधरपर्वताः । अद्रिगोत्रगिरिग्रावाचलशैल-शिलोच्चयाः ॥" वन्द्यैः—वन्दितुं योग्यानि वन्द्यानि, तैः—वन्द्+ण्यत् । पुंसाम्—यहाँ कृत्य प्रत्ययान्त वन्द्यैः के योग में 'कृत्यानां कर्तरि वा' इस सूत्र से विकल्प से षष्ठी हुई है । रघुपतिपदैः—रघूणां पतिः रघुपतिः (षष्ठी तत्पुरुष), रघुपतेः पदानि रघुपतिपदानि, तैः (षष्ठी तत्पुरुष) । मेखलासु—मेखला शब्द का प्रयोग यहाँ पर्वत के मध्यभाग के अर्थ में हुआ है—'मेखला खड्गबन्धे स्यात् काञ्चीशैलनितम्बयोः' । काले काले—यहाँ 'नित्यवीप्सयोः' से वीप्सा के अर्थ में द्विरुक्ति हुई है । संयोगम्—सम्+युज्+घञ् । एत्य—आङ्+इण्+क्त्वा→ल्यप् । स्नेहव्यक्तिः—स्नेहस्य व्यक्तिः (षष्ठी तत्पुरुष) । स्नेहः—स्निह्+घञ् । व्यक्तिः—व्यञ्जनं-वि+अञ्ज्+क्तिन् । चिरविरहजम्—चिरं विरहः चिरविरहः (यहाँ 'अत्यन्तसंयोगे' से द्वितीया तत्पुरुष समास हुआ है) चिर विरहात् जातः चिरविरहजः, चिरविरह+जन्+ड । यहाँ 'पञ्चम्यामजातौ' से ड प्रत्यय हुआ है । मुञ्चतः—मुच्+शतृ (षष्ठी एकवचन) । बाष्पम्—'बाष्पो नेत्रजलोष्मणोः'—विश्वकोश । यक्ष मेघ को रामगिरि पर्वत से मिलकर अनुज्ञा लेने की बात करता है । इसके लिये वह रामगिरि के मेघ के प्रति अन्तर्निगूढ प्रेम को उद्घाटित करता हुआ कहता है कि आठ महीने के बाद जब तुम इसके पास आते हो तो यह तुमसे मिल भेंटकर रोता हुआ अपने प्रेम को प्रकट करता है । इसका व्यवहार ठीक उसी प्रकार है जिस प्रकार किसी व्यक्ति का उसके घनिष्ठ मित्र से रहता है । 'पुंसां वन्द्यैः रघुपतिपदैः अङ्कितम्' के द्वारा रामगिरि पर्वत की उत्कृष्टता तथा पवित्रता ध्वनित हो रही है । रामगिरि पर्वत पर एक मित्र के व्यवहार के समारोपित किये जाने के कारण यहाँ समासोक्ति अलङ्कार की अभिव्यक्ति हो रही है साथ ही 'बाष्पम्' पद के द्वारा भाप तथा आँसू अर्थ के अभिव्यक्त होने से श्लेष की स्थिति है । श्लेष अलङ्कार का लक्षण–'श्लिष्टैः पदैरनेकार्थाभिधाने श्लेष इष्यते ।' समासोक्ति अलङ्कार का लक्षण—"समासोक्तिः समैर्यत्र 'कार्यलिङ्गविशेषणैः । व्यवहारसमारोपः प्रस्तुतेऽन्यस्य वस्तुनः ॥" काले काले भवति भवतः' ये पद

भाषासौन्दर्य की वृद्धि कर रहे हैं। प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति तथा मन्दाक्रान्ता छन्द है ॥१२॥

प्रसङ्ग—यक्ष मेघ से कहता है कि पहले तो आप अपनी यात्रा के अनुकूल मार्ग को सुन लें तत्पश्चात् मैं कान से पीने योग्य अर्थात् अत्यन्त ही मधुर सन्देश कहूँगा—

मार्गं तावच्छृणु कथयतस्त्वत्प्रयाणानुरूपं
सन्देशं मे तदनु जलद! श्रोष्यसि श्रोत्रपेयम् ।
खिन्नः खिन्नः शिखरिषु पदं न्यस्य गन्तासि यत्र
क्षीणः क्षीणः परिलघु पयः स्रोतसां चोपभुज्य ॥१३॥

पदच्छेद—मार्गं तावत् शृणु कथयतः त्वत्प्रयाणानुरूप सन्देश मे तदनु जलद श्रोष्यसि श्रोत्रपेयम् । खिन्नः खिन्नः शिखरिषु पदं न्यस्य गन्तासि यत्र क्षीणः क्षीणः परिलघु पयः स्रोतसां च उपभुज्य ॥१३॥

अन्वय-जलद ! तावत् कथयतः (मत्तः) त्वत्प्रयाणानुरूपं मार्गं शृणु यत्र खिन्नः खिन्नः शिखरिषु पदं न्यस्य क्षीणः क्षीणः च स्रोतसां परिलघु पयः उपभुज्य गन्तासि, तदनु श्रोत्रपेयं मे सन्देशं श्रोष्यसि ॥१३॥

शब्दार्थ-जलद=हे मेघ, तावत्=अब, कथयतः=कह रहे (मत्तः=मुझसे) त्वत्प्रयाणानुरूपम्=अपनी यात्रा के अनुरूप, मार्गम्=मार्ग को शृणु=सुनो, यत्र=जिस (मार्ग) में, खिन्नः खिन्नः=अत्यधिक खिन्न, शिखरिषु=पर्वतों पर, पदं=पैर, न्यस्य=रखकर, क्षीणः क्षीणः च=और पुनः पुनः कृश हुआ, स्रोतसाम्=नदियों के, परिलघु=बहुत हल्के, पयः=जल का, उपभुज्य=उपभोग करके, गन्तासि=जायेगा, तदनु=तत्पश्चात्, श्रोत्रपेयम्=कानों के द्वारा पिये जाने के योग्य, मे=मेरे, सन्देशं=सन्देश को, श्रोष्यसि=सुनेगा ॥१३॥

हिन्दी अनुवाद—हे मेघ ! अब (तू) मुझ कहने वाले से अपनी यात्रा के योग्य मार्ग को सुन जिस (मार्ग) में पुनः पुनः थका हुआ तू पर्वतों पर पैर रखकर और पुनः पुनः कृश हुआ नदियों के अत्यन्त हल्के जल का उपभोग

करके जायेगा तत्पश्चात् कानों के द्वारा पिये जाने के योग्य मेरे सन्देश को सुनेगा ।'१३।।

संस्कृत व्याख्या—जलद=मेघ, तावत=अधुना, कथयतः=भणतः, त्वत्प्रयाणानुरूपं=भवत्प्रस्थानानुकूलम्, मार्गं=पन्थानम्, शृणु=आकर्ण्य, यत्र=यस्मिन् मार्गे, खिन्नः खिन्नः=पुनः पुनः खिन्न, शिखरिषु=अचलेषु, पदं=चरणम्, न्यस्य=निक्षिप्य, क्षीणः क्षीणः च=पुनः पुनः कृशशरीरः सन्, स्रोतसां=नदीनाम्, परिलघु=गुरुत्वदोषशून्यम्, पयः=सलिलम्, उपभुज्य=निपीय, गन्तासि=गमिष्यसि, तदनु=तदनन्तरम्, श्रोत्रपेयं=श्रवणपान-योग्यम्, मे=मम, सन्देशं=वाचिकम्, श्रोष्यसि=आकर्णयिष्यसि। समासोक्ति-रलङ्कारः। मन्दाक्रान्ता वृत्तम् ।।१३।।

आलोक

शृणु—श्रु धातु लोट्लकार म० पु० ए० व० । कथयतः=कथ्+णिच्+शतृ । यहाँ 'आख्यातोपयोगे' से पञ्चमी हुई है । त्वत्प्रयाणानुरूपम्—तव प्रयाणं त्वत्प्रयाणम् (षष्ठी तत्पुरुष), त्वत्प्रयाणस्य अनुरूपः, तम् (षष्ठी तत्पुरुष) । यह मार्गम् का विशेषण है । प्रयाणम्—प्र+या=ल्युट् । त्वत्प्रयाणम् में समास होने पर 'प्रत्ययोत्तरपदयोश्च' इस सूत्र से युष्मद् शब्द के स्थान पर त्वद् आदेश । अनुरूपः—रूपम् अनुगतः—यहाँ 'अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया' इस वार्तिक से समास हुआ है। सन्देशम्—सम्+दिश्+घञ् । तदनु—'अनुर्लक्षणे' से अनु की कर्मप्रवचनीय संज्ञा तथा 'कर्मप्रवचनीययुक्ते द्वितीया' से द्वितीया हुयी है । जलद—जलं ददातीति जलदः तत्सम्बुद्धौ-जल+दा+क । यहाँ 'आतोऽनुपसर्गे कः' से क प्रत्यय हुआ है । 'सलिलं कमलं जलम्'—अमरकोश । श्रोष्यसि—श्रु धातु लृट् लकार म० पु० ए० व० । श्रोत्रपेयम्—श्रोत्राभ्यां पेयः श्रोत्रपेयः, तम् (तृतीया तत्पुरुष) । श्रोत्रे—श्रूयते आभ्यां ते इस अर्थ में श्रु धातु से ष्ट्रन् प्रत्यय होता है । पेयः-पातुं योग्यः-पा धातु से 'अचो यत्' इस सूत्र के द्वारा यत् प्रत्यय तथा 'ईद्यति' से आकार के स्थान पर ईकार और गुणकार्य होते हैं । श्रोत्रपेयम् पद सन्देशम् का विशेषण है । किन्हीं-किन्हीं पुस्तकों में श्रोत्रपेयम् के स्थान पर श्रव्यबन्धम् पाठ मिलता है जिसकी व्युत्पत्ति 'श्रव्यो

वन्धो यस्मिन् तम्' इस प्रकार होगी। खिन्नः खिन्नः–'नित्यवीप्सयोः' से द्वित्व का विधान हुआ है। खिद्+क्त=खिन्न। शिखरिषु–शिखरिणः सन्ति येषु तेषु–शिखर+इनि। 'महीध्रे शिखरिक्ष्माभृदहार्यधरपर्वताः'–अमरकोश। न्यस्य–नि+अस्+क्त्वा→ल्यप्। गन्तासि–गम् धातु लुट् लकार म० पु० ए० व०। यत्र–यस्मिन्निति–यद्+त्रल् – यहां 'सप्तम्यास्त्रल्' से त्रल् प्रत्यय हुआ है। क्षीणः क्षीणः–'नित्यवीप्सयोः से द्वित्व। क्षि+क्त। 'क्षियो दीर्घात्' से दीर्घ हुआ है। परिलघु--परितः लघु 'कुगति प्रादयः' से समास। आचार्य वाग्भट का कथन है कि पर्वतीय नदियों का जल पत्थरों से प्रताड़ित होने के कारण हल्का और पथ्य हो जाता है–"उपलास्फालनक्षेपविच्छेदैः खेदितोदकाः। हिमवन्मलयोद्भूताः पथ्या नद्यो भवत्यमूः।" पयः–यहां जल के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। पयते पीयते वा पयगतौ अथवा पीङ् पाने धातु से असुन् प्रत्यय होता है। 'पयः क्षीरे च नीरे च' – हेमचन्द्र। स्रोतसाम्–स्रवति इति श्रु गतौ धातु से 'श्रुरीभ्यां तुट् च' से असुन् प्रत्यय तथा तुड़ागम। 'स्रोतोऽम्बुवेग इन्द्रिये' –मेदिनीकोश। उपभुज्य–उप+भुज्+क्त्वा→ल्यप्। यक्ष पहले मेघ को उसकी यात्रा के अनुकूल मार्ग को बतलाता है। वह उसे मार्गजनित थकान से परिचित कराता हुआ उसके निराकरण का उपाय बतलाता है। उसका कथन है कि तुम मार्ग में पहाड़ों पर चलते हुये अत्यन्त कृश हो जाओगे अतएव अपनी कृशता को दूर करने के लिये पर्वतीय नदियों के हल्के जल को पीकर आगे प्रस्थान करना। यक्ष अपने सन्देश को श्रोत्रपेय बतलाता है अतएव उसका सन्देश अमृत के साथ साम्य रखता है। कानों के द्वारा पिया नहीं जा सकता है, सुना जाता है अतएव यहां श्रोत्रपेय पद में लक्षणा है जिसका लक्षण इस प्रकार है–"मुख्यार्थबाधे तद्युक्तो ययाऽन्योऽर्थः प्रतीयते। रूढ़ेः प्रयोजनाद्वाऽसौ लक्षणा शक्तिरर्पिता॥" यहाँ मेघ में पथिक के व्यवहार का समारोप होने से समासोक्ति अलङ्कार है। खिन्नः खिन्नः क्षीणः क्षीणः पदों में नादसौन्दर्य है। प्रसाद गुण वैदर्भी रीति तथा मन्दाक्रान्ता छन्द है॥१३॥

प्रसङ्ग–यक्ष कहता है कि हे मेघ! तुम्हारे विशाल शरीर को देखकर सिद्धों की भोली-भाली सुन्दरियां क्या पवन पर्वत की चोटी को उड़ाये लिये

जा रहा है ? यह विचार कर तुम्हारे उत्साह को, किंवा हमारे सन्देश को तेजी से ले जाने वाले तुमको अत्यन्त आश्चर्य के साथ देखेंगी—

अद्रेः शृङ्गं हरति पवनः किंस्विदित्युन्मुखीभि—
दृष्टोत्साहश्चकितचकितं मुग्धसिद्धाङ्गनाभिः ।
स्थानादस्मात्सरसनिचुलादुत्पतोदङ्मुखः खं
दिङ्नागानां पथि परिहरन् स्थूलहस्तावलेपान् ॥१४॥

पदच्छेद--अद्रेः शृङ्गं हरति पवनः किंस्वित् इति उन्मुखीभिः दृष्टोत्साहः चकितचकितं मुग्धसिद्धाङ्गनाभिः । स्थानात् अस्मात् सरसनिचुलात् उत्पत उदङ्मुखः खं दिङ्नागानां पथि परिहरन् स्थूलहस्तावलेपान् ॥१४॥

अन्वय—पवनः अद्रेः शृङ्गं हरति किंस्वित् ? इति उन्मुखीभिः मुग्धसिद्धाङ्गनाभिः चकितचकितं दृष्टोत्साहः पथि दिङ्नागानां स्थूलहस्तावलेपान् परिहरन् अस्मात् सरसनिचुलात् स्थानात् उदङ्मुखः खं उत्पत ॥१४॥

शब्दार्थ--पवन=वायु, अद्रेः=पर्वत की, शृङ्गम्=चोटी को, हरति=लिये जा रहा है, किंस्वित्=क्या, इति=यह सोचकर, उन्मुखीभिः=ऊपर की ओर मुख किये हुये, मुग्धसिद्धाङ्गनाभिः=भोली-भाली सिद्धों की सुन्दरियों के द्वारा, चकितचकितम्=अत्यन्त आश्चर्यपूर्वक, दृष्टोत्साहः=देखे गये उत्साह वाले (तुम), पथि=मार्ग में, दिङ्नागानां=दिग्गजों के, स्थूलहस्तावलेपान्=मोटी सूँड़ों के आक्रमण को, परिहरन्=बचाते हुये, अस्मात्=इस, सरसनिचुलात्=स्थलवेतसों से युक्त, स्थानात्=स्थान से, उदङ्मुखः=उत्तराभिमुख होकर, उत्पत=उड़ जाना ॥१४॥

हिन्दी अनुवाद--क्या पवन पर्वत की चोटी को लिये जा रहा है ? (उड़ाये लिये जा रहा है) यह सोचकर ऊपर की ओर मुख किये हुये भोली-भाली सिद्धों की सुन्दरियों के द्वारा अत्यन्त आश्चर्यपूर्वक देखे गये उत्साह वाले (तुम) मार्ग में दिग्गजों की मोटी सूँड़ों के आक्रमण का परित्याग करते हुये इस हरे-भरे स्थलवेतसों से युक्त स्थान से उत्तराभिमुख होकर (उत्तर की ओर मुख करके) उड़ जाना ॥१४॥

संस्कृत व्याख्या--पवनः=वायुः, अद्रेः=पर्वतस्य, शृङ्गं=शिखरम्, हरति=नयति, किंस्वित्=किम, इति=एवं विचिन्त्य, उन्मुखीभिः=उन्नताननाभिः, चकितचकित=साश्चर्यम्, दृष्टोत्साहः=अविलोकितोद्योगः, पथि=मार्गे, दिङ्नागानां=दिग्गजानाम्, स्थूलहस्तावलेपान्=पीवरशुण्डाक्षेपान्, परिहरन्=परित्यजन्, अस्मात्=एतस्मात्, सरसनिचुलात्=आर्द्रस्थलवेतसात्, स्थानात=प्रदेशात्, उदङ्मुखः=उत्तराभिमुखः, ख=आकाशम्, उत्पत=उद्गच्छ । श्लेपोऽलङ्कारः । मन्दाक्रान्ता वृत्तम् ।

आलोक

अद्रेः—'अद्रिगोत्रगिरिग्रावाचलशैलशिलोच्चयः'-अमरकोश । शृङ्गम्-पर्वत की चोटी—'कूटोऽस्त्री शिखरं शृङ्गम्'—अमरकोश । हरति—हृ धातु लट् लकार प्र० पु० ए० व० । पवनः—'नभस्वद्वातपवनपवमानप्रभञ्जनाः'—अमरकोश । किंस्वित्—किम्+स्वित्–यहाँ वितर्क के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है । उन्मुखीभिः—उन्नतं मुखं यासां ताः उन्मुख्यः, ताभिः (बहुव्रीहि) । यहाँ 'स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात्' सूत्र से स्त्रीत्व विवक्षा में ङीष् प्रत्यय । दृष्टोत्साहः--दृष्टः उत्साहः यस्य सः (बहुव्रीहि) । दृष्टः--दृश्+क्त । चकितचकितम्--चकितप्रकारं यथा तथा–यहाँ 'प्रकारे गुणवचनस्य' से द्वित्व हुआ है । मुग्धसिद्धाङ्गनाभिः—सिद्धानाम् अङ्गनाः सिद्धाङ्गनाः (षष्ठी तत्पुरुष)। मुग्धाश्च ताः सिद्धाङ्गनाः, ताभिः (कर्मधारय)। सिद्ध–यह देवयोनि विशेष का नाम है–'विद्याधराऽप्सरो-यक्ष-रक्षो-गन्धर्व-किन्नराः । पिशाचो गुह्यकः सिद्धो भूतोऽमी देवयोनयः ॥" मुग्धा--मुग्धा नायिका की मीमांसा करते हुये कविराज विश्वनाथ लिखते हैं–"प्रथमावतीर्णयौवनमदनविकारा रतौ वामा । कथिता मृदुश्च माने समधिकलज्जावती मुग्धा ॥" अङ्गना--प्रशस्त अङ्गों वाली कामिनी को अङ्गना कहते हैं । 'अङ्गात् कल्याणे' इस वार्तिक के द्वारा अङ्गना शब्द की सिद्धि होती है । स्थानात्—स्था+ल्युट् (पञ्चमी एकवचन) । सरसनिचुलात्—सरसाः निचुलाः यस्मिन् तत्, तस्मात् (बहुव्रीहि) । 'वानीरे कविभेदे स्यान्निचुलः स्थलवेतसे'—शब्दार्णव । उत्पत--उत् उपसर्ग पूर्वक पत्

धातु लोट् लकार म० पु० ए० व० । उदङ्मुखः—उदक् मुखं यस्य सः (बहुव्रीहि) । खम्--खन्+ड । 'नभोऽन्तरिक्षं गगनमनन्तं सुरवर्त्म खम्'--अमरकोश । दिङ्नागानाम्--दिशां नागाः दिङ्नागाः, तेषां (षष्ठी तत्पुरुष) । 'मतङ्गजो गजो नागः कुञ्जरो वारणः करी'—अमरकोश । आठ दिशाओं में क्रमशः आठ दिग्गज रहते हैं । जैसा कि कहा गया है--"ऐरावतः पुण्डरीको वामनः कुमुदोऽञ्जनः । पुष्पदन्तः सार्वभौमः सुप्रतीकश्च दिग्गजाः ।।" परिहरन्--परि+हृ+शतृ । स्थूलहस्तावलेपान्—स्थूलाश्च ते हस्ताश्चेति स्थूलहस्ताः (कर्मधारय), तेषाम् अवलेपान् (षष्ठी तत्पुरुष) । हस्त शब्द का प्रयोग यहाँ हाथी की सूँड़ के अर्थ में हुआ है–'हस्तो नक्षत्रभेदे स्यात् करेभकरयोरपि'--विश्वकोश । अवलेप शब्द का प्रयोग आक्षेप (आक्रमण) के अर्थ में हुआ है--'अवलेपस्तु गर्वे स्यात् क्षेपणे दूषणेऽपि च'–विश्वकोश । 'अद्रेः शृङ्गं हरति पवनः' इत्यादि के द्वारा यहाँ अद्भुत रस की व्यञ्जना हो रही है । भोलीभाली सिद्ध सुन्दरियों के द्वारा आश्चर्ययुक्त दृष्टि से प्रेक्षण सहज सौन्दर्यसुधा की वृष्टि कर रहा है । मुग्ध सिद्धाङ्गनाओं के द्वारा अवलोकन स्वभावोक्ति की अभिव्यक्ति कर रहा है । मुग्धसिद्धाङ्गनाओं के द्वारा शृङ्गार की व्यञ्जना हो रही है । टीकाकार मल्लिनाथ ने यहाँ श्लेष की योजना कर एक दूसरे अर्थ को प्रस्तुत किया है–सरसनिचुलात् पद से कालिदास के सहपाठी कोई रसिक निचुल व्यक्ति उपस्थित होते हैं जो कि उनके दोषों का निराकरण करने वाले थे अतएव यह अर्थ ध्वनित होता है कि जिस स्थान में निचुल जैसे रसिक कवि निवास करते थे उस स्थान से निर्दोष होने के कारण ऊँचे मुख वाले होते हुये दिङ्नाग (कालिदास के विरोधी आचार्य) के हस्तावलेपों को अर्थात् हाथों को उठा-उठा कर खण्डन व्यापार को परिहरण करते हुये पर्वत तुल्य समन्नत उन दिङ्नाग आचार्य के प्रधानत्व का क्या परिहरण करता है ? अतएव सिद्ध महाकवियों से और गुणयुक्त सुन्दरियों से उद्योग देखे जाते हुये आकाश में उड़ जाओ । इस प्रकार मल्लिनाथ का यह विचार है कि महाकवि कालिदास ने इस श्लोक के द्वारा अपने तथा अपने कृतित्व के प्रति प्रकाश

डाला है[१]। परन्तु मल्लिनाथ का यह मत सर्वसम्मत नहीं है। संस्कृत में दिङ्नाग नाम के अनेक आचार्य हुए हैं। बौद्ध दिङ्नाग कालिदास के समकालीन थे—यह कथन प्रामाणिक नहीं है। कालिदास का स्थितिकाल विक्रम की प्रथम शताब्दी ठहरता है जबकि वसुबन्धु के शिष्य दिङ्नाग की स्थिति पाँचवीं शताब्दी मानी गयी है। इस प्रकार स्थितिकाल की भिन्नता के कारण दिङ्नाग कालिदास के विरोधी कैसे हो सकते हैं? एतदतिरिक्त कालिदास ने 'दिङ्नागानाम्' बहुवचनान्त पद का प्रयोग किया है, इससे भी उक्त विषय पुष्ट नहीं होता। प्रामाणिकता के अभाव में कुछ भी निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता है। इस श्लोक में प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति, तथा मन्दाक्रान्ता छन्द है ॥१४॥

प्रसङ्ग—यक्ष मेघ से कह रहा है कि देखो सामने बाँबी के अग्रभाग से यह रुचिर इन्द्रधनुष का टुकड़ा निकल रहा है। इस इन्द्रधनुष के टुकड़े से तुम्हारा श्यामला शरीर गोपवेशधारी भगवान् के समान सुशोभित हो रहा है—

रत्नच्छायाव्यतिकर इव प्रेक्ष्यमेतत्पुरस्ता—
द्वल्मीकाग्रात्प्रभवति धनुष्खण्डमाखण्डलस्य ।

१—"अत्रेदमप्यर्थान्तरं ध्वनयति—रसिको निचुलो नाम महाकविः कालिदासस्य सहाध्यायी परापादितानां कालिदासप्रबन्धदूषणानां परिहर्ता यस्मिन्स्थाने तस्मात्स्थानादुदङ्मुखो निर्दोषत्वादुन्नतमुखः सन्पथि सारस्वतमार्गे। दिङ्नागानाम्। पूजायां बहुवचनम्। दिङ्नागाचार्यस्य कालिदासप्रतिपक्षस्य हस्तावलेपान्हस्तविन्यासपूर्वकाणि दूषणानि परिहरन्। 'अवलेपस्तु गर्वे स्याल्लेपने दूषणेऽपि च' इति विश्वः। अद्रेरद्रिकल्पस्य दिङ्नागाचार्यस्य शृङ्गं प्राधान्यम्। 'शृङ्गं प्राधान्यसान्वोश्च' इत्यमरः। हरति किंस्विदिति हेतुना सिद्धैः सारस्वतसिद्धैर्महाकविभिरङ्गनाभिश्चदृष्टोत्साहः सन्खमुत्पतोच्चैर्भवेति स्वप्रबन्धमात्मानं वा प्रति कवेरुक्तिरिति। संसर्गतो दोषगुणा भवन्तीत्येतन्मृषा येन जलाशयेऽपि। स्थित्वाऽनुकूलं निचुलश्चलन्तमात्मानमारक्षति सिन्धुवेगात्। इत्येतच्छ्लोकनिर्माणात्तस्य कवेर्निचुलसञ्ज्ञेत्याहुः"।

येन श्यामं वपुरतितरां कान्तिमापत्स्यते ते
बर्हेणेव स्फुरितरुचिना गोपवेशस्य विष्णोः ॥१५॥

पदच्छेद--रत्नच्छायाव्यतिकरः इव प्रेक्ष्यम् एतत् पुरस्तात् वल्मीकाग्रात् प्रभवति धनुष्खण्डम् आखण्डलस्य येन श्यामं वपुः अतितरां कान्तिम् आपत्स्यते ते बर्हेण इव स्फुरितरुचिना गोपवेशस्य विष्णोः ॥१५॥

अन्वय--रत्नच्छायाव्यतिकर इव प्रेक्ष्यम् एतत् आखण्डलस्य धनुष्खण्डं पुरस्तात् वल्मीकाग्रात् प्रभवति । येन ते श्यामं वपुः स्फुरितरुचिना बर्हेण गोपवेशस्य विष्णोः (श्यामं वपुः) इव अतितरां कान्तिम् आपत्स्यते ॥१५॥

शब्दार्थ--रत्नच्छायाव्यतिकरः इव=मणियों की कान्तियों के सम्मिश्रण के सामन, प्रेक्ष्यं=दर्शनीय (सुन्दर), एतत्=यह, आखण्डलस्य=इन्द्र के, धनुष्खण्ड=धनुष का टुकड़ा, पुरस्तात्=आगे, वल्मीकाग्रात्=वल्मीक (बाँवी) के अग्रभाग से, प्रभवति=निकल रहा है, येन=जिससे, ते=तुम्हारा, श्यामं=श्यामला, वपुः=शरीर, स्फुरितरुचिना=समुज्ज्वल कान्ति वाले, बर्हेण=मयूरपिच्छ से, गोपवेशस्य=गोपाल वेशधारी, विष्णोः=कृष्ण (के श्यामले शरीर) के, इव=समान, अतितरां=अतिशय, कान्तिं=शोभा को, आपत्स्यते=प्राप्त कर लेगा ॥१५॥

हिन्दी अनुवाद—मणियों की कान्तियों के सम्मिश्रण के समान दर्शनीय (सुन्दर) इन्द्र के धनुष का टुकड़ा सामने वल्मीक (बाँवी) के अग्रभाग से निकल रहा है (दिखाई पड़ रहा है)। जिससे तुम्हारा श्यामला शरीर समुज्ज्वल कान्ति वाले मयूरपिच्छ से गोपवेशधारी कृष्ण (के श्यामले शरीर) के समान अत्यधिक शोभा को प्राप्त कर लेगा।

संस्कृत व्याख्या—रत्नच्छायाव्यतिकरः=मणिप्रभासम्मिश्रणम्, इव=यथा, प्रेक्ष्यं=दर्शनीयम्, एतत=पुरोवर्ति, आखण्डलस्य=इन्द्रस्य, धनुष्खण्डं=चापशकलम्, पुरस्तात्=अग्रे, वल्मीकाऽग्रात्=वामलूरविवरात्, प्रभवति=आविर्भवति, येन=धनुष्खण्डेन, ते=तव, श्यामं=कृष्णवर्णम्, वपुः=शरीरम्, स्फुरितरुचिना=समुज्ज्वलकान्तिना, बर्हेण=पिच्छेन, गोपवेशस्य=गोपाल-

वेषस्य, विष्णो=कृष्णस्य, 'श्यामं वपुः', इव=यथा, अतितरां=अतिशयाम्, कान्तिं=शोभाम्, आपत्स्यते=प्राप्स्यते । उपमालङ्कारः । मन्दाक्रान्ता वृत्तम् ॥१५॥

आलोक

रत्नच्छायाव्यतिकरः---रत्नानां छायाः रत्नच्छायम् (षष्ठी तत्पुरुष) यहाँ 'छाया बाहुल्ये' से क्लीबत्व हुआ है। रत्नच्छायस्य आव्यतिकरः (षष्ठी तत्पुरुष) आ समन्तात व्यतिकरः आव्यतिकरः---'कुगतिप्रादयः' से समास। व्यतिकरः—'वि+अति+कॄ+अप्' 'ऋदोरप्' से अप् प्रत्यय। अथवा रत्नानां छायाः, तासां व्यतिकरः (षष्ठी तत्पुरुष)। छाया शब्द का प्रयोग यहाँ कान्ति के अर्थ में हुआ है—'छाया सूर्यप्रिया कान्तिः प्रतिबिम्ब-मनातपः'—अमरकोश। छाया—छ्यति इति 'छो छेदने' धातु से 'माछाशसिभ्यो यः' से 'य' प्रत्यय तथा टाप्। प्रेक्ष्यम्—प्रेक्षितुं, योग्यमिति—प्र+ईक्ष्+ण्यत्। एतत्--अत्यधिक निकटवर्ती पदार्थ के लिये 'एतत्' शब्द का प्रयोग होता है —'समीपतरवर्ति चैतदो रूपम्।' पुरस्तात्--पूर्वस्यां दिशि इस अर्थ में पूर्वा शब्द से 'दिक्शब्देभ्यः सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यो दिग्देशकालेष्वस्तातिः' से अस्ताति प्रत्यय तथा 'अस्ताति च' से पूर्वा के स्थान पर पुरादेश। वल्मीकाग्रात्---वल्मीकस्य अग्रमिति वल्मीकाग्रम्, तस्मात् (षष्ठी तत्पुरुष)। 'वलन्ते प्राणिनोऽत्र' इस अर्थ में 'अलीकादयश्च' से निपातनात् सिद्धि हुयी है। 'वामलूरश्च नाकुश्च वल्मीकं पुन्नपुंसकम्'—अमरकोष। प्रभवति—'प्र+भू' धातु लट् लकार प्रथम पुरुष एकवचन। धनुष्खण्डम्---धनुषः खण्डम् (षष्ठी तत्पुरुष)। यहाँ 'नित्यं समासेऽनुत्तरपदस्थस्य' से विसर्ग को मूर्धन्य षकार। इस प्रकार 'धनुः खण्डम्' पाठ अपाणिनीय है। आखण्डलस्य---आखण्डयतीति---'खडि भेदने' से 'वृषादिभ्यः कलच्' से कलच् प्रत्यय। 'संक्रन्दनो दुश्च्यवनस्तुराषाण्मेघवाहनः। आखण्डलः सहस्राक्ष ऋभुक्षाः'---अमरकोष। वपुः---'गात्रं संहननं वपुः'---अमरकोष। अतितराम्—अति+तरप्+आम् (आमु)। कान्तिम्---काम्यते—क्तिन्। 'कान्तिः शोभेच्छयोः

स्त्रियाम्' – मेदिनीकोष । 'शोभा कान्तिर्द्युतिश्छविः'--अमरकोष । आपत्स्यते— 'आङ्+पद्' धातु लृट् लकार प्र०पु० ए०व० । बर्हेण—बर्हति इति –बृह् वृद्धौ' धातु से अच् प्रत्यय । 'शिखण्डश्च पिच्छबर्हे नपुंसके'—अमरकोष । स्फुरितरुचिना—स्फुरिता रुचिः यस्य तत्, तेन (बहुव्रीहि) । स्फुरिता—स्फुर्+क्त+टाप् । गोपवेशस्य—गोपस्य इव वेशः यस्य, तस्य (व्यधिकरणपद बहुव्रीहि) । गोपः—गां पातीति—गो+पा+क (उपपदसमास) । विष्णोः— वेवेष्टि इति—'विष्लृ व्याप्तौ' धातु से 'विषेः किच्च' से 'नु' प्रत्यय । 'विष्णुर्नारायणः कृष्णो वैकुण्ठो विष्टरश्रवाः'—अमरकोष । इन्द्रधनुष के विषय में वराहमिहिर ने इस प्रकार लिखा है–"सूर्यस्य विविधवर्णाः पवनेन विघट्टिताः साऽभ्रे । वियति धनुःसंस्थाना ये दृश्यन्ते तदिन्द्रधनुः ।। केचिदनन्तकुलोरगनिःश्वासोद्भूतमाहुराचार्याः ।" कवि की सौन्दर्ययोजना श्लाघनीय है । यहाँ इन्द्रधनुष की मणियों की कान्तियों के सम्मिश्रण के समान कमनीय बतलाया है । इन्द्रधनुष के द्वारा श्यामला मेघ इस प्रकार सुशोभित हो रहा है जिस प्रकार मयूर पिच्छधारी भगवान् कृष्ण सुशोभित होते हैं । यहाँ 'रत्नच्छायाव्यतिकर इव' तथा 'बर्हेणेव' में दो श्रौती उपमाओं की निरपेक्ष स्थिति होने के कारण संसृष्टि है । प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति तथा मन्दाक्रान्ता छन्द है ।।१५।।

प्रसङ्ग—यक्ष कहता है कि हे मेघ ! कृषि का फल आपके अधीन है, अतएव ग्रामीण स्त्रियाँ तुम्हें अत्यन्त आदर के साथ देखेंगी । इस प्रकार के आप माल प्रदेश से पश्चिम की ओर जाकर पुनः तेजी से उत्तर की ओर चल पड़ना—

त्वय्यायत्तं कृषिफलमिति भ्रूविलासानभिज्ञैः
प्रीतिस्निग्धैर्जनपदवधूलोचनैः पीयमानः ।
सद्यः सीरोत्कषणसुरभि क्षेत्रमारुह्य मालं
किञ्चित्पश्चाद् व्रज लघुगतिर्भूय एवोत्तरेण ।।१६।।

पदच्छेद--त्वयि आयत्तं कृषिफलम् इति भ्रूविलासानभिज्ञैः प्रीतिस्निग्धैः जनपदवधूलोचनैः पीयमानः । सद्यः सीरोत्कषणसुरभि क्षेत्रम् आरुह्य मालं किञ्चित् पश्चात् व्रज लघुगतिः भूयः एव उत्तरेण ॥१६॥

अन्वय—कृषिफल त्वयि आयत्तम् इति प्रीतिस्निग्धैः भ्रूविलासाऽनभिज्ञैः जनपदवधूलोचनैः पीयमानः मालं क्षेत्रं सद्यः सीरोत्कषणसुरभि आरुह्य किञ्चित् पश्चात् व्रज भूयः लघुगतिः उत्तरेण एव (व्रज) ॥१६॥

शब्दार्थ--कृषिफलं=खेती का फल, त्वयि=तुम्हारे, आयत्तं=अधीन है, इति=इस कारण, प्रीतिस्निग्धैः=स्वाभाविक स्नेह से आर्द्र, भ्रूविलासान-भिज्ञैः=भौंहों के विलासों से अनभिज्ञ, जनपदवधूलोचनैः=गाँवों की स्त्रियों के नेत्रों से, पीयमानः=सादर देखे जाते हुये (तुम), माल=माल, क्षेत्रं=क्षेत्र पर, सद्यः=तत्क्षण, सीरोत्कषणसुरभि=हल से जोते जाने के कारण सुगन्धित, आरुह्य=चढ़कर, किञ्चित्=कुछ, पश्चात्=पश्चिम की ओर, व्रज=जाना, भूयः=पुनः, लघुगतिः=तेजी से, उत्तरेण एव=उतर की ओर ही, (व्रज=जाना) ॥१६॥

हिन्दी अनुवाद—खेती का फल तुम्हारे अधीन है, इस कारण से स्वाभाविक स्नेह से आर्द्र (तथा) भौंहों के विलासों से अनभिज्ञ गाँवों की स्त्रियों के नेत्रों के द्वारा सादर देखे जाते हुये (तुम) तत्क्षण हल से जोते जाने के कारण सुगन्धित माल क्षेत्र पर चढ़कर कुछ पश्चिम की ओर जाना, पुनः तेजी से उत्तर की ओर ही जाना ॥१६॥

संस्कृत व्याख्या--कृषिफलं=कृषिलाभः, त्वयि=भवति, आयत्तं=अधीनम्, इति=अस्मात् कारणात्, प्रीतिस्निग्धैः=स्नेहार्द्रैः, भ्रूविलासान-भिज्ञैः=भ्रूविकारज्ञानशून्यैः, जनपदवधूलोचनैः=पल्लीवधूनयनैः, पीयमानः=सादरं विलोक्यमानः, मालं क्षेत्रं=मालाख्यं क्षेत्रम्, सद्यः=तत्क्षणम्, सीरोत्कषणसुरभि=हलोत्कर्षणसुरभि, आरुह्य=आरोहणं कृत्वा, किञ्चित्=अल्पकालम्, पश्चात्=पश्चिममार्गेण, व्रज=गच्छ, भूयः=पुनः, उत्तरेण=उत्तरमार्गेण, एव=हि, (व्रज=गच्छ) । स्वभावोक्तिरलङ्कारः । मन्दाक्रान्ता वृत्तम् ॥१६॥

आलोक

आयत्तम्—आङ्+यत्+क्त । 'अधीनो निघ्न आयत्तः'—अमरकोष । कृषिफलम्—कृषेः फलम् (षष्ठी तत्पुरुष) । भ्रूविलासानभिज्ञैः—भ्रुवोः विलासाः (षष्ठी तत्पुरुष), भ्रूविलासेषु अनभिज्ञानि, तैः (सप्तमी तत्पुरुष) । विलासः—वि+लस्+घञ् । विलास का लक्षण—'यानस्थानासनादीनां मुखनेत्रादिकर्मणाम् । विशेषस्तु विलासः स्यादिष्टसंदर्शनादिना ॥' अनभिज्ञैः—न अभिज्ञानि अनभिज्ञानि (नञ् तत्पुरुष) । ग्रामीण स्त्रियाँ नागरिक कामिनियों की तरह रसिक एवं चञ्चल नहीं होती हैं, इसलिये वे भ्रूविलासों से (कटाक्षनिक्षेपादि) में अनभिज्ञ होती है । यही कारण है कि वे भोली भाली कही जाती हैं । प्रीतिस्निग्धैः—प्रीत्या स्निग्धानि प्रीतिस्निग्धानि, तैः (तृतीया तत्पुरुष) । प्रीतिः—प्रीणनं—प्री+क्तिन् । स्निग्धम्—स्निह्+क्त । जनपदवधूलोचनैः—जनपदेषु वध्वः जनपदवध्वः (सप्तमी तत्पुरुष), जनपदवधूनां लोचनानि जनपदवधूलोचनानि, तैः (षष्ठी तत्पुरुष) । पीयमानः—पीयते, इति—पा+शानच् (कर्मणि) । सद्यः—समाने अहनि इस अर्थ में 'सद्यः परुत्० इत्यादि सूत्र से निपातनात् सद्यः शब्द की सिद्धि होती है । सीरोत्कषणसुरभि—सीरैः उत्कषणम् (तृतीया तत्पुरुष), तेन सुरभि (तृतीया तत्पुरुष) तद् यथा स्यात्तथा । उत्कषणम्—उत्+कष्+ल्युट् । क्षेत्रम्—"क्षेत्रं शरीरे केदारे सिद्धस्थानकलत्रयोः"—विश्वकोश । आरुह्य—आङ्+रुह्+क्त्वा→ल्यप् । मालम्—'मालमुन्नतभूतलम्'—उत्पलमाला । माल का अर्थ प्रो० विल्सन ने माल नामक देश करते हुये छत्तीसगढ़ में रतनपुर के समीप आधुनिक माल्दा माना है जबकि मल्लिनाथ ने माल नामक पहाड़ी ऊँचा स्थान (पठार) अर्थ किया है । लघुगतिः—लघ्वी गतिः यस्य सः (बहुव्रीहि) । 'लघु क्षिप्रमरं द्रुतम्'—अमरकोश । उत्तरेण—यहाँ 'प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम्' से तृतीया हुई है । व्रज—व्रज् धातु लोट् लकार म०पु० ए०व० । किञ्चित् पश्चात्—कुछ टीकाकारों ने इसका अर्थ कुछ 'पश्चिम की ओर' तथा दूसरे टीकाकारों ने कुछ 'देर बाद' ऐसा अर्थ किया है । 'स्वय्य.यत्तं

कृषिफलमिति' के द्वारा मेघ की महत्ता तथा प्रतिष्ठा अभिव्यञ्जित हो रही है। 'भ्रूविलासानभिज्ञैः' के द्वारा ग्रामीण स्त्रियों का मुग्ध स्वभाव तथा भोला-भालापन प्रकट होता है। 'जनपदवधूलोचनैः पीयमानः' के द्वारा मेघ के प्रति जनपदवधुओं का समादर ध्वनित हो रहा है। 'पीयमानः' में लक्षणा है। स्वभावोक्ति अलङ्कार है। प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति तथा मन्दाक्रान्ता छन्द है ॥१६॥

प्रसङ्ग—यक्ष कहता है कि हे मेघ ! वृष्टि के द्वारा शान्ति प्राप्त करने वाला आम्रकूट पर्वत परिश्रान्त आपको शिर पर धारण कर लेगा। इस प्रकार आम्रकूट पर्वत आपके द्वारा किये गये उपकार के बदले आपकी सेवा करेगा, क्योंकि कृतज्ञ लोगों का यही स्वभाव होता है—

त्वामासारप्रशमितवनोपप्लवं साधु मूर्ध्ना
वक्ष्यत्यध्वश्रमपरिगतं सानुमानाम्रकूटः।
न क्षुद्रोऽपि प्रथमसुकृतापेक्षया संश्रयाय
प्राप्ते मित्रे भवति विमुखः किं पुनर्यस्तथोच्चैः ॥१७॥

पदच्छेद—त्वाम् आसारप्रशमितवनोपप्लवम् साधु मूर्ध्ना वक्ष्यति अध्वश्रमपरिगतं सानुमान् आम्रकूटः न क्षुद्रः अपि प्रथमसुकृतापेक्षया संश्रयाय प्राप्ते मित्रे भवति विमुखः किं पुनः यः तथा उच्चैः ॥१७॥

अन्वय—आम्रकूटः सानुमान् आसारप्रशमितवनोपप्लवम् अध्वश्रमपरिगतं त्वां मूर्ध्ना साधु वक्ष्यति। क्षुद्रः अपि मित्रे संश्रयाय प्राप्ते प्रथमसुकृतापेक्षया विमुखः न भवति यः तथा उच्चैः (सः) पुनः किम् ? ॥ १७ ॥

शब्दार्थ—आम्रकूटः = आम्रकूट, सानुमान = पर्वत, आसारप्रशमितवनोपप्लवम् = मूसलाधार वृष्टि के द्वारा वन के उत्पात को शान्त कर देने वाले, अध्वश्रमपरिगतम् = मार्ग के परिश्रम से क्लान्त, त्वाम् = तुम्हें, मूर्ध्ना = अपनी चोटी से, साधु = भलीभाँति, वक्ष्यति = धारण कर लेगा, क्षुद्रः अपि = क्षुद्र पुरुष भी, मित्रे = मित्र के, संश्रयाय = आश्रय के लिये, प्राप्ते = आने पर, प्रथमसुकृतापेक्षया = पहले के उपकार की अपेक्षा कर, विमुख. = विमुख, न

भवति=नहीं होता है, यः=जो, तथा=उस प्रकार, उच्चैः=ऊँचा है, (सः =वह आम्रकूट), पुनः=फिर, किम्=कैसे ? ॥ १७ ॥

हिन्दी अनुवाद—आम्रकूट पर्वत मूसलाधार वृष्टि के द्वारा वन के उत्पात को शान्त करने वाले (तथा) मार्ग—परिश्रम से क्लान्त तुम्हें अपनी चोटी से भलीभाँति धारण कर लेगा क्योंकि क्षुद्र पुरुष भी मित्र के आश्रय के लिये आने पर पहले के उपकार की अपेक्षा कर विमुख नहीं होता, जो उस प्रकार ऊँचा है (वह आम्रकूट, फिर कैसे ? (विमुख होगा) ॥ १७ ॥

संस्कृत व्याख्या—आम्रकूटः=एतदाख्यः, सानुमान्=पर्वतः, आसारप्रशमितवनोपप्लवं=धारासम्पातनिवारितविपिनोपद्रवम्, अध्वश्रमपरिगत=मार्गपरिश्रमयुक्तम्, त्वां=मेघम्, मूर्ध्ना=शिरसा, साधु=समीचीनम्, वक्ष्यति=धारयिष्यति, क्षुद्रोऽपि=कृपणोऽपि, मित्रे=सुहृदि, संश्रयाय=आश्रयाय, प्राप्ते =आगते, प्रथमसुकृतापेक्षया=पूर्वविहितापकारचिन्तया, विमुखः=पराङ्मुखः, न भवति=न जायते, यः=प्रसिद्धः, तथा=तेन प्रकारेण, उच्चैः=उन्नतः (सः), पुनः=भूयः, किं=किं विमुखो न भवति । अर्थान्तरन्यासोऽलङ्कारः । मन्दाक्रान्ता वृत्तम् ॥ १७ ॥

आलोक

आसारप्रशमितवनोपप्लवम्—आसारेण प्रशमितः आसारप्रशमितः (तृतीया तत्पुरुष) । आसारप्रशमितः वनोपप्लवः येन सः, तम् (बहुव्रीहि) । आसारः —मूसलाधार वृष्टि को आसार कहते हैं—"धारासम्पात आसारः"—अमरकोश । प्रशमितः—प्र+शम्+णिच्+क्त । वनोपप्लवः—वनस्य उपप्लवः (षष्ठी तत्पुरुष) "अटव्यरण्यं विपिनं गहनं काननं वनम्"—अमरकोश । मूर्ध्ना—यहाँ करण में तृतीया हुई है । वक्ष्यति-वह् धातु लृट् लकार प्र० पु० ए० व० । अध्वश्रमपरिगतम्—अध्वनः श्रमः अध्वश्रमः (षष्ठी तत्पुरुष), अध्वश्रमेण परिगतः, तम् (तृतीया तत्पुरुष) । श्रमः—श्रम्+घञ् । सानुमान्—सानवः सन्ति यस्मिन् सः—सानु+मतुप् । 'स्नुः प्रस्थः सानुरस्त्रियौ'—अमरकोश । आम्रकूटः—आम्राः कूटेषु यस्य सः (व्यधिकरणपद बहुव्रीहि) ।जिस पर्वत की चोटियों में आम्र के वृक्ष हैं उसे आम्रकूट पर्वत कहते हैं । विल्सन इसे अमरकण्टक

बतलाते हैं। क्षुद्रः—'क्षुद्रो दरिद्रः कृपणे नृशंसे'—यादवकोश। प्रथमसुकृतापेक्षया —प्रथमं च तत् सुकृतं प्रथमसुकृतम् (कर्मधारय), प्रथमसुकृतस्य अपेक्षा प्रथम-सुकृतापेक्षा, तया (षष्ठी तत्पुरुष)। संश्रयाय—संश्रयणमिति संश्रयः, तस्मै —सम्+श्रि+अच्। यहाँ 'एरच्' से अच् प्रत्यय हुआ है और 'तुमर्थाच्च भाववचनात्' से चतुर्थी। प्राप्ते—प्र+आप्+क्त। मित्रे—'अथ मित्रं सखा सुहृत्'—अमरकोश। विमुखः—विरुद्धं मुखं यस्य सः (बहुव्रीहि)। तथा—तेन प्रकारेण—तद्+थाल्। यहाँ 'प्रकारवचने थाल्' से थाल् प्रत्यय हुआ है। कवि का कथन है कि साधारण पुरुष भी कृतज्ञता का प्रकाशन करता हुआ आश्रय के लिये उपस्थित मित्र को विमुख नहीं करता है तो भला उतना ऊँचा आम्रकूट पर्वत मेघ का समादर क्यों नहीं करेगा? जिसने अपनी मूसलाधार वर्षा के द्वारा उसके उत्पात को शान्त किया है। मेघ के प्रथम विराम में ही सौख्यलाभ के द्वारा यक्ष की कार्य सिद्धि को अभिव्यञ्जित किया गया है। 'प्रथमावसथे यस्य सौख्यं तस्याखिलेऽध्वनि। शिवं भवति यात्रायामन्यथा त्वशुभं ध्रुवम्।' यहाँ उत्तरार्ध के द्वारा पूर्वार्द्ध का समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है। अर्थापत्ति भी है। लक्षण—'दण्डापूपिकयान्यार्थागमोऽर्थापत्तिरिष्यते।' दोनों का अङ्गाङ्गिभाव होने से सङ्कर है। प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति तथा मन्दाक्रान्ता छन्द है ॥ १७ ॥

प्रसङ्ग—यक्ष आम्रकूट पर्वत के वैशिष्टच का वर्णन करता हुआ मेघ से कहता है कि जब श्याम वर्ण वाले तुम इस आम्रकूट पर्वत के शिखर पर पहुँच जाओगे तो यह पीतवर्ण वाला पर्वत, परन्तु तुम्हारे कारण शिखर पर काला होने से देव दम्पतियों को देखने में ऐसा लगेगा कि मनो वसुन्धरा का स्तन हो—

छन्नोपान्तः परिणतफलद्योतिभिः काननाम्रै-
स्त्वय्यारूढे शिखरमचलः स्निग्धवेणीसवर्णे।
नूनं यास्यत्यमरमिथुनप्रेक्षणीयामवस्थां
मध्ये श्यामः स्तन इव भुवः शेषविस्तारपाण्डुः ॥ १८ ॥

पदच्छेद—छन्नोपान्तः परिणतफलद्योतिभिः काननाम्रैः त्वयि आरूढे शिखरम् अचलः स्निग्धवेणीसवर्णे । नूनं यास्यति अमरमिथुनप्रेक्षणीयाम् अवस्थां मध्ये श्यामः स्तनः इव भुवः शेषविस्तारपाण्डुः ॥ १८ ॥

अन्वय—परिणतफलद्योतिभिः काननाम्रैः छन्नोपान्तः अचलः स्निग्धवेणीसवर्णे त्वयि शिखरम् आरूढे (सति) मध्ये श्यामः शेषविस्तारपाण्डुः भुवः स्तनः इव नूनम् अमरमिथुनप्रेक्षणीयाम् अवस्थां यास्यति ॥ १८ ॥

शब्दार्थ—परिणतफलद्योतिभिः=पके हुये फलों से सुशोभित, काननाम्रैः =वन के आम्रवृक्षों से, छन्नोपान्तः ढके हुये प्रान्तभागों वाला, अचलः= (आम्रकूट) पर्वत, स्निग्धवेणीसवर्णे=चिकनी चोटी के समान, त्वयि= तुम्हारे, शिखरम्=शिखर पर, आरूढे (सति) =चढ़ जाने पर, मध्ये=मध्य-भाग में, श्यामः=काला, शेषविस्तारपाण्डुः=शेष विस्तृत भाग में पीला, भुवः= पृथ्वी के, स्तनः इव=स्तन के समान, नूनम्=अवश्य ही, अमरमिथुनप्रेक्ष-णीयाम्=देव-दम्पतियों के द्वारा दर्शनीय, अवस्थाम्=अवस्था को, यास्यति =प्राप्त होगा ॥ १८ ॥

हिन्दी अनुवाद-पके हुये फलों से सुशोभित, वन के आम्रवृक्षों से आच्छा-दित प्रान्त भागों वाला (आम्रकूट) पर्वत चिकनी चोटी के समान वर्ण वाले तुम्हारे शिखर पर चढ़ जाने पर मध्यभाग में काला तथा शेष विस्तृत भाग में पीला पृथ्वी के स्तन के समान अवश्य ही देव दम्पतियों के द्वारा दर्शनीय अवस्था को प्राप्त कर लेगा ॥ १८ ॥

संस्कृत व्याख्या—परिणतफलद्योतिभिः=परिपक्वफलशोभिभिः, कान-नाम्रैः=विपिनरसालैः, छन्नोपान्तः=आच्छादितपार्श्वप्रदेशः, अचलः=गिरिः, स्निग्धवेणीसवर्णे=मसृणकेशबन्धतुल्यवर्णे, त्वयि=भवति, शिखरं=शृङ्गम्, आरूढे=आरुह्य स्थिते (सति), मध्ये=मध्यभागे, श्यामः=असितवर्णः, शेषविस्तारपाण्डुः=अवशिष्टव्यासपाण्डुरः, भुवः=पृथिव्याः, स्तनः इव= पयोधरः इव, नूनं=निश्चयेन, अमरमिथुनप्रेक्षणीयां=देवदम्पतिदर्शनीयाम्, अवस्थां=दशाम्, यास्यति=लप्स्यते । उपमालङ्कारः । मन्दाक्रान्ता वृत्तम् ॥१८॥

आलोक

छन्नोपान्तः — छन्नः उपान्तः यस्य सः (बहुव्रीहि) । छन्नः–छद् + क्त । परिणतफलद्योतिभिः–परिणतानि च तानि फलानि परिणतफलानि (कर्मधारय) । परिणतफलैः द्योतन्ते तच्छीलाः परिणतफलद्योतिनः तैः (उपपद समास) परिणतफल + द्युत् + णिनि । परिणत–परि + नम् + क्त । काननाम्रैः–कानने आम्राः काननाम्राः, तैः (सप्तमी तत्पुरुष) । 'आम्रश्चूतो रसालोऽसौ'–अमरकोश । आरूढे–आ + रुह + क्त । अचलः–न चलः अचलः (नञ् तत्पुरुष) । स्निग्धवेणीसवर्णे–स्निग्धा चासौ वेणी स्निग्धवेणी (कर्मधारय), स्निग्धवेण्याः सवर्णः स्निग्धवेणीसवर्णः, तस्मिन् (तृतीया तत्पुरुष) । 'वेणी तु केशबन्धे जलस्रुतौ–' यादवकोश । स्निग्धं–स्निह + क्त । सवर्णः– समानः वर्णः यस्य सः यहाँ 'ज्योतिर्जनपदरात्रिनाभिनामगोत्ररूपस्थानवर्णवयोवचनबन्धुषु' इस सूत्र से समान के स्थान पर सकारादेश हो जाता है । यास्यति–या धातु लृट् लकार प्र० पु० ए० व० । अमरमिथुनप्रेक्षणीयाम्–अमराणां मिथुनानि अमरमिथुनानि (षष्ठी तत्पुरुष) । अमरमिथुनानां प्रेक्षणीया, ताम् । अमर–'अमरा निर्जरा देवास्त्रिदशा विबुधाः सुराः–' अमरकोश । प्रेक्षणीया–प्र + ईक्ष् + अनीयर् + टाप् । शेषविस्तारपाण्डुः शेषश्चासौ विस्तारः शेषविस्तारः (कर्मधारय) । शेषविस्तारे पाण्डुः (सप्तमी तत्पुरुष) । विस्तारः– वि + स्तृ + घञ् । 'विस्तारो विग्रहो व्यासः'–अमरकोश । 'हरिणः पाण्डुरः पाण्डुः'–अमरकोश । यक्ष कहता है कि हे मेघ! जब आप आम्रकूट पर्वत के ऊपर पहुँचेंगे तो पृथ्वी के स्तन के समान सौन्दर्य को धारण करेंगे । अतएव देवदम्पतियों के द्वारा दर्शनीय दशा को प्राप्त होंगे । इस श्लोक से यह ध्वनित होता है कि जिस प्रकार कोई परिश्रान्त कामी कामिनी के कुचकलश पर विश्रान्त होता हुआ शयन करता है उसी प्रकार मेघ भी पृथ्वी रूपी नायिका के स्तन पर विश्राम को प्राप्त करता है । यहाँ 'स्निग्धवेणीसवर्णे' में आर्थी उपमा अलङ्कार है । 'स्तनः इव' में उत्प्रेक्षा अलङ्कार है । उत्प्रेक्षा अलङ्कार का लक्षण इस प्रकार है—सम्भावनमथोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य परेण यत्' । प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति तथा मन्दाक्रान्ता छन्द है ॥१८॥

प्रसङ्ग यक्ष कहता है कि इस प्रकार के उस आम्रकूट पर्वत पर थोड़ी देर तक ठहर कर जलवृष्टि के कारण हल्के हो जाने से अपेक्षाकृत तेज गति वाले तुम आगे के मार्ग को पार करके विन्ध्य नामक पर्वत की तलहटी पर फैली हुई नर्मदा नामक नदी का दर्शन करोगे —

स्थित्वा तस्मिन्वनचरवधूभुक्तकुञ्जे मुहूर्तं
तोयोत्सर्गद्रुततरगतिस्तत्परं वर्त्म तीर्णः ।
रेवां द्रक्ष्यस्युपलविषमे विन्ध्यपादे विशीर्णां
भक्तिच्छेदैरिव विरचितां भूतिमङ्गे गजस्य ॥१९॥

पदच्छेद–स्थित्वा तस्मिन् वनचरवधूभुक्तकुञ्जे मुहूर्तं तोयोत्सर्गद्रुततरगतिः तत्परं वर्त्म तीर्णः । रेवां द्रक्ष्यसि उपलविषमे विन्ध्यपादे विशीर्णां भक्तिच्छेदैः इव विरचितां भूतिम् अङ्गे गजस्य ॥१९॥

अन्वय–वनचरवधूभुक्तकुञ्जे तस्मिन् मुहूर्तं स्थित्वा तोयोत्सर्गद्रुततरगतिः तत्परं वर्त्म तीर्णः (त्वम्) उपलविषमे विन्ध्यपादे विशीर्णां रेवां गजस्य अङ्गे भक्तिच्छेदैः विरचितां भूतिम् इव द्रक्ष्यसि ॥१९॥

शब्दार्थ- वनचरवधूभुक्तकुञ्जे=वनवासियों की रमणियों से उपभुक्तलता-मण्डपों से युक्त, तस्मिन्=उस आम्रकूट पर्वत पर, मुहुर्तं=थोड़ी देर, स्थित्वा=ठहरकर, तोयोत्सर्गद्रुततरगतिः=जल की वृष्टि के कारण अतिशीघ्र गति वाले, तत्परं =उसके बाद के, वर्त्म =मार्ग को, तीर्णः=पार करके, (त्व=तुम), उपलविषमे=पत्थरों के कारण विषम, विन्ध्यपादे=विन्ध्याचल की तलहटी में, विशीर्णां=फैली हुयी, रेवां=नर्मदा को, गजस्य = हाथी के, अङ्गे=शरीर में, भक्तिच्छेदैः=रेखाचित्र के द्वारा, विरचितां=किये गये, भूतिमिव=शृङ्गार के समान, द्रक्ष्यसि=देखोगे ॥१९॥

हिन्दी अनुवाद–वनवासियों (किरात आदि) की रमणियों से उपभुक्त लतामण्डपों से युक्त उस (आम्रकूट पर्वत) पर थोड़ी देर ठहरकर जल बरसा देने के कारण अधिक तेज गति वाले होकर उसमे आगे के मार्ग को पार करके

(तुम) पत्थरों के कारण विषम विन्ध्याचल की तलहटी में फैली हुयी नर्मदा को हाथी के शरीर पर रेखाचित्र के द्वारा किये गये शृङ्गार के समान देखोगे ॥१९॥

संस्कृत व्याख्या—वनचरवधूभुक्तकुञ्जे = विपिनचरवनिताजनोपभुक्तलता-मण्डपे, तस्मिन् = आम्रकूटाख्ये पर्वते, मुहूर्तं = अल्पकालम्, स्थित्वा = विरम्य, तोयोत्सर्गद्रुततरगतिः = सलिलोत्सर्गशीघ्रगमनशीलः सन्, तत्पर = ततः परम्, वर्त्म = मार्गम्, तीर्णः = अतिक्रान्तः सन, उपलविषमे = पाषाणनिम्नोन्नते, विन्ध्यपादे = विन्ध्यप्रत्यन्तपर्वते, विशीर्णां = प्रसृताम्, रेवां = नर्मदाम्, गजस्य = करिणः, अङ्गे = शरीरे, भक्तिच्छेदैः = रेखाभङ्गिभिः, विरचितां = निर्मिताम्, भूतिमिव = शृङ्गारमिव, द्रक्ष्यसि = विलोकयिष्यसि । उपमालङ्कारः । मन्दाक्रान्ता वृत्तम् ॥१९॥

आलोक

स्थित्वा = स्था + क्त्वा । वनचरवधूभुक्तकुञ्जे वनचराणां वध्वः वनचरवध्वः (षष्ठी तत्पुरुष), वनचरवधूभिः भुक्ताः कुञ्जाः यस्मिन् सः तस्मिन् (बहुव्रीहि) । वनचरः—वने चरतीति—'वन + चर् + ट' यहाँ 'चरेष्टः, से 'ट' प्रत्यय हुआ है । 'तत्पुरुषे कृति बहुलम्' से वैकल्पिक अलुक् का विधान होने से 'वनेचरः तथा वनचरः' दो रूप बनते हैं । कुञ्ज—'निकुञ्जकुञ्जौ वा क्लीबे लतादिपिहितोदरे'—अमरकोष । मुहूर्तं—यहाँ 'कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे' से अत्यन्त संयोग में द्वितीया हुयी है । तोयोत्सर्गद्रुततरगतिः—तोयस्य उत्सर्गः तोयोत्सर्गः (षष्ठी तत्पुरुष) । तोयोत्सर्गेण द्रुततरगतिः (तृतीया तत्पुरुष) । द्रुततरगतिः—अतिशयेन द्रुता-द्रुततरा द्रुत + तरप् + टाप् । द्रुततरा गतिः यस्य सः (बहुव्रीहि) । गतिः—गम् + क्तिन् । तोयम्—तौतीति—'तु' सौत्र आवरणार्थः, औणादिको यः । 'अम्भोऽर्ण-स्तोयपानीयनीरक्षीराम्बुशंवरम् । मेघपुष्पं घनरसः'— अमरकोष । तत्परं—तस्मात् परम्, तत् (पञ्चमी तत्पुरुष) तीर्णः—तॄ + क्त । रेवाम्—रेवते इति 'रेवृ प्लवगतौ' धातु से पचाद्यच् तथा टाप् । 'रेवा तु नर्मदा सोमोद्भवा मेकल-कन्यका'—अमरकोष । भारतवर्ष की प्रतिष्ठित नदियों में नर्मदा का नाम

आता है–'गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति । नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु ॥" द्रक्ष्यसि–दृश् धातु लृट् लकार म० पु० ए० व० । उपलविषमे—उपलैः विषमः, तस्मिन् (तृतीया तत्पुरुष) । विन्ध्यपादे–विन्ध्यस्य पादः तस्मिन् (षष्ठी तत्पुरुष) । सात कुलपर्वतों में विन्ध्य भी आता है–"महेन्द्रो मलयः सह्यः शुक्तिमानृक्षपर्वतः । विन्ध्यश्च पारियात्रश्च सप्तैते कुलपर्वताः ॥" नर्मदा नदी विन्ध्य पर्वत से ही निकलती है । 'पादाः प्रत्यन्त-पर्वताः'–अमरकोष । विशीर्णाम्– वि+शॄ+क्त+टाप् । भक्तिच्छेदैः–भक्तीनां छेदाः, तैः (षष्ठी तत्पुरुष) । भक्ति–भज्+क्तिन् । 'भक्ति-र्निषेवणे भागे रचनायाम्'–शब्दार्णव । छेदः–छिद्+घञ् । विरचिताम्– वि+रच्+क्त+टाप् । रेखाओं के द्वारा की गयी चित्ररचना को 'भक्तिच्छेद' कहते हैं । भूतिम् –हाथी के शृङ्गार को भूति कहते हैं–'भूतिर्मातङ्गशृङ्गारे जातौ भस्मनि संपदि'—विश्वकोष । गजस्य –'मतङ्गजो गजो नागः कुञ्जरो वारणः करी'–अमरकोष । यहाँ रेवा नदी तथा विन्ध्याचल में नायिका एवं नायक के व्यवहारों का समारोप होने से समासोक्ति अलङ्कार है । 'भक्तिच्छेदैरिव' में श्रौती उपमा अलङ्कार है । दोनों का अङ्गाङ्गिभाव सङ्कर है । प्रसादगुण, वैदर्भी रीति तथा मन्दाक्रान्ता छन्द है ॥१९॥

प्रसङ्ग –यक्ष का कथन है कि वृष्टि कर चुकने के कारण तुम हल्के हो जाओगे, अतः रेवा के जल को ग्रहण करके आगे चलना । रेवा के जल से पुष्ट तुम्हें पवन नहीं उड़ा सकेगा क्योंकि खाली वस्तु हल्की होती है, अतएव हल्केपन की द्योतक होती है तथा पूर्णता गौरव की द्योतक होती है –

तस्यास्तिक्तैर्वनगजमदैर्वासितं वान्तवृष्टि–
जम्बूकुञ्जप्रतिहतरयं तोयमादाय गच्छेः ।
अन्तःसारं घन! तुलयितुं नानिलः शक्ष्यति त्वां
रिक्तः सर्वो भवति हि लघुः पूर्णता गौरवाय ॥२०॥

पदच्छेद- तस्याः तिक्तैः वनगजमदैः वासितं वान्तवृष्टिः जम्बूकुञ्जप्रतिहत-

हतरयं तोयम् आदाय गच्छेः । अन्तःसारं घन तुलयितुं न अनिलः शक्ष्यति त्वां रिक्तः सर्वः भवति हि लघुः पूर्णता गौरवाय ॥२०॥

अन्वय—वान्तवृष्टिः तिक्तैः वनगजमदैः वासितं जम्बूकुञ्जप्रतिहतरयं तस्याः तोयम् आदाय गच्छेः । घन ! अनिलः अन्तःसारं त्वां तुलयितुं न शक्ष्यति हि रिक्तः सर्वः लघुः भवति पूर्णता गौरवाय (भवति) ॥२०॥

शब्दार्थ—वान्तवृष्टिः=वृष्टि कर चुके हुये (तुम), तिक्तैः=कटु, वनगजमदैः=वनैले हाथियों के मद से, वासितम्=सुगन्धित, जम्बूकुञ्जप्रतिहतरयम्=जामुन के वृक्षों के कुञ्ज से रुके हुये वेग वाले, तस्याः=उस (नर्मदा) के, तोयम्=जल को, आदाय=लेकर, गच्छेः=जाना, घन=हे मेघ, अनिलः=पवन, अन्तःसारम्=अन्दर से सारयुक्त, त्वाम्=तुमको, तुलयितुं न शक्ष्यति=आन्दोलित नहीं कर सकेगा, हि=क्योंकि, रिक्तः=रिक्त, सर्वः=सब, लघुः=हलका, भवति=होता है, पूर्णता=पूर्णता, गौरवाय=गौरव के लिये, (भवति=होती है) ॥२०॥

हिन्दी अनुवाद—वृष्टि कर चुके हुये तुम कटु गन्ध वाले वनैले हाथियों के मद से सुगन्धित (और) जामुन के वृक्षों के कुञ्ज से रुके हुये वेग वाले उस (नर्मदा) के जल को लेकर जाना । हे मेघ ! अन्दर से सार वाले तुमको पवन हिला न सकेगा क्योंकि सभी रिक्त (रीता) पदार्थ हल्का होता है और पूर्णता गौरव के लिये होती है ॥२०॥

संस्कृत व्याख्या-वान्तवृष्टिः=उद्गीर्णवर्षः(त्वम्), तिक्तैः=तिक्तरसयुक्तैः, वनगजमदैः=अरण्यकरिदानजलैः, वासितं=सुरभितम्, जम्बूकुञ्जप्रतिहतरयं=जम्बूवृक्षनिकुञ्जप्रतिबद्धवेगम्, तस्याः=रेवायाः, तोयं=सलिलम्, आदाय=गृहीत्वा, गच्छेः=व्रजेः, घन=मेघ, अनिलः=पवनः, अन्तःसारं=अन्तःस्थितबलम्, त्वां=भवन्तम्, तुलयितुं=कम्पयितुम्, न शक्ष्यति=न शक्तो भविष्यति, हि=यतः, रिक्तः=शून्यः, सर्वः=समस्तः, लघुः=लाघवयुक्तः, भवति=वर्तते, पूर्णता=समग्रता, गौरवाय=गुरुत्वाय, भवतीति शेषः । अर्थान्तरन्यासोऽलङ्कारः । मन्दाक्रान्ता वृत्तम् ॥२०॥

आलोक

तिक्तैः-'तिक्तो रसे सुगन्धौ च'-विश्वकोश। रस छः होते हैं-मधुर, अम्ल, लवण, कटु, कषाय और तिक्त। जिसका ग्रहण रसना के द्वारा होता है उसे रस कहते हैं—'रसनामात्रग्राह्यो गुणो रसः'-तर्कसंग्रह। वनगजमदैः—वने गजाः वनगजाः (सप्तमी तत्पुरुष), वनगजानां मदाः, तैः (षष्ठी तत्पुरुष)। 'मतङ्गजो गजो नागः कुञ्जरो वारणः करी'-अमरकोश। वासितम्—वस् + णिच् + क्त। वान्तवृष्टिः—वान्ता वृष्टिः येन सः (बहुव्रीहि)। वान्त—वम् + क्त। वान्तवृष्टि के द्वारा वमन अर्थ अभिव्यञ्जित हो रहा है परन्तु उससे जुगुप्साव्यञ्जक अश्लीलता की आशंका नहीं करनी चाहिए क्योंकि यहाँ गौणवृत्ति का आश्रय लिया गया है। 'वृष्टिर्वर्षम्'—अमरकोश। जम्बूकुञ्जप्रतिहतरयम्—जम्बूनां कुञ्जाः जम्बूकुञ्जाः (षष्ठी तत्पुरुष), जम्बूकुञ्जैः प्रतिहतरयं जम्बूकुञ्जप्रतिहतरयम् (तृतीया तत्पुरुष)। प्रतिहतरयम्—प्रतिहतः रयः यस्य तत् (बहुव्रीहि)। प्रतिहत—प्रति + हन् + क्त। रयः—'रंहस्तरसी तु रयः स्यदः। जवः'-अमरकोश। रयते अनेन रय् गतौ धातु से घ प्रत्यय अथवा रिणाति अनेन—'री गतिरेषणयोः' धातु से अच् प्रत्यय। रय का अर्थ वेग है। तोयम्—'अम्भोऽर्णस्तोयपानीयनीरक्षीराम्बुशम्बरम्'—अमरकोश। आदाय—आङ् + दा + क्त्वा – ल्यप्। गच्छेः—गम् धातु विधिलिङ्लकार म० पु० ए० व०। यहाँ 'विधिनिमन्त्रणामन्त्रणाधीष्टसंप्रश्नप्रार्थनेषु लिङ्' इस सूत्र के द्वारा विधिलिङ्कार का विधान हुआ है। अन्तःसारम्—अन्तः सारः यस्य सः, तम् (बहुव्रीहि)। 'सारो बले स्थिरांशे च'—अमरकोश। घन = हन्यते वायुना इस अर्थ में हन् धातु से 'मूर्तौ घनः' इस सूत्र से अप् प्रत्यय तथा कुत्व होता है। 'घनं स्यात्कांस्यतालादिवाद्यमध्यमनृत्ययोः। ना मुस्ताब्दौघदार्ढ्येषु विस्तारे लोहमुद्गरे। त्रिषु सान्द्रे दृढे च'—मेदिनीकोश। 'घनजीमूतमुदिरजलमुग्धूमयोनयः'—अमरकोश। तुलयितुम्—तुल् + णिच् + तुमुन्—यहाँ 'तत्करोति तदाचष्टे' से णिच् तथा 'समानकर्तृकेषु तुमुन्' से तुमुन् प्रत्यय होता है। अनिलः—"श्वसनः स्पर्शनो वायुर्मातरिश्वा सदागतिः। पृषदश्वो गन्धवहो गन्धवाहानिलाशुगाः॥"—अमरकोश। शक्ष्यति—शक् धातु लृट्लकार प्र० पु० ए० व०। रिक्तः—रिच् + क्त। पूर्णता—पूर्णस्य

भाव: पूरी+क्त । गौरवाय–गुरो: भाव: गौरवम्, तस्मै । गुरु+अण् । यहाँ 'क्लृपि संपद्यमाने च' इस वार्तिक से चतुर्थी हुई है । महामहोपाध्याय मल्लिनाथ ने वान्तवृष्टि: आदि पदों का एक अन्य अर्थ भी निकाला है ।[1] जिसका भाव यह है कि वमन करने के पश्चात् कफ का शोषण करने के लिए हल्का, कड़ुआ और तीखा (चरपरा) जल पीने से शक्ति प्राप्त करने वाले पुरुष को वायु के द्वारा कम्पन नहीं होता है । 'रिक्त: सर्वो भवति.........।' इत्यादि के द्वारा कवि ने यह प्रतिपादित किया है कि रिक्त (धनादि तथा वस्त्रादि से रहित) व्यक्ति लघु होता है । उसके प्रति लोग आदर नहीं रखते हैं और पूर्ण व्यक्ति का गौरव होता है अत: लोग उसका समादर करते हैं । इसी भाव को अन्यत्र देखें–"गुणयुक्तोऽप्यधो याति रिक्त: कूपे यथा घट: । गुणहीनोऽपि सम्पूर्णो जनै: शिरसि धार्यते ॥" यहाँ चतुर्थ चरण के सामान्य अर्थ के द्वारा तृतीय चरण के विशेष अर्थ का समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है । प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति तथा मन्दाक्रान्ता छन्द है ॥२०॥

प्रसङ्ग—यक्ष कहता है कि हे मेघ ! हाथी आधे उगे हुये केसरों वाले स्थलकदम्ब के हरे तथा कपिश वर्ण के फूलों को देखकर, केलों को खाकर, पृथ्वी की गन्ध को सूँघकर, जललव बरसाने वाले तुम्हारे मार्ग को सूचित करेंगे—

नीपं दृष्ट्वा हरितकपिशं केसरैरर्धरूढै—
राविर्भूतप्रथममुकुला: कन्दलीश्चानुकच्छम् ।

१– "अयमत्र ध्वनि:—आदौ वमनशोधितस्य पुंस: पश्चाच्छ्लेष्मशोषणाय लघुतिक्तकषायाम्बुपानाल्लब्धबलस्य वातप्रकम्पो न स्यादिति । तथा वाग्भट:—कषायाश्चाहिमास्तस्य विशुद्धौ श्लेष्मणो हिता: । किमु तिक्तकषाया वा ये निसर्गात्कफापहा: । कृतशुद्धे: क्रमात्पीतपेयादे: पथ्यभोजिन: । वातादिभिर्न बाधा स्यादिन्द्रियैरिव योगिन: । इति ।"

जग्ध्वारण्येष्वधिकसुरभिं गन्धमाघ्राय चोर्व्याः
सारंगास्ते जललवमुचः सूचयिष्यन्ति मार्गम् ॥२१॥

पदच्छेद नीपं दृष्ट्वा हरितकपिशं केसरैः अर्धरूढैः आविर्भूतप्रथममुकुलाः कन्दलीः च अनुकच्छम् । जग्ध्वा अरण्येषु अधिकसुरभि गन्धम् आघ्राय च उर्व्याः सारङ्गाः ते जललवमुचः सूचयिष्यन्ति मार्गम् ॥२१॥

अन्वय—सारङ्गाः अर्धरूढैः केसरैः हरितकपिशं नीपं दृष्ट्वा अनुकच्छम् आविर्भूतप्रथममुकुलाः कन्दलीः च जग्ध्वा अरण्येषु अधिकसुरभिम् उर्व्याः गन्धम् आघ्राय जललवमुचः ते मार्गं सूचयिष्यन्ति ॥२१॥

शब्दार्थ—सारङ्गाः=हाथी (या हरिण), अर्धरूढैः=आधे उगे हुये, केसरैः—केसरों से, हरितकपिशम्=हरे और कृष्णलोहित, नीपम्=स्थलकदम्बपुष्प को, दृष्ट्वा=देखकर, अनुकच्छम्=दलदल में, आविर्भूतप्रथममुकुलाः—पहली वार प्रकट हुई कलियों वाले, कन्दलीः=केलों को, जग्ध्वा=खाकर, अरण्येषु=वनों में, अधिकसुरभिम्=अत्यधिक सुगन्धित, उर्व्याः=पृथ्वी की, गन्धम्=गन्ध को, आघ्राय=सूँघकर, जललवमुचः=जल की बूंदों को बरसाने वाले, ते=तुम्हारे, मार्गम्=मार्ग को, सूचयिष्यन्ति=सूचित करेंगें ॥२१॥

हिन्दी अनुवाद—हाथी (अथवा हरिण) आधे उगे हुये (अर्द्धविकसित) केसरों से हरे तथा कृष्णलोहित स्थलकदम्बपुष्प को देखकर दलदल में पहली वार प्रकट हुई कलियों वाले केलों को खाकर वनों में अत्यधिक सुगन्धित पृथ्वी की गन्ध को सूँघकर जल के कणों को बरसाने वाले तुम्हारे मार्ग को सूचित करेंगे ॥२१॥

संस्कृत व्याख्या—सारङ्गाः=मतङ्गजाः कुरङ्गाः वा, अर्धरूढैः=अर्धोत्पन्नैः, केसरैः=किञ्जल्कैः, हरितकपिशं=पलाशवर्णकृष्णपीतम्, नीपं=स्थलकदम्बकुसुमम्, दृष्ट्वा=विलोक्य, अनुकच्छं=जलप्रायस्थानसमीपे, आविर्भूतप्रथममुकुलाः=प्रकटीभूतप्रथमकुड्मलाः, कन्दलीश्च=भूमिकदलीश्च, जग्ध्वा=भुक्त्वा, अरण्येषु=विपिनेषु, अधिकसुरभिं=अतिशयसुगन्धयुक्तम्,

उर्व्याः=पृथिव्याः, गन्धं=घ्राणग्राह्यम्, आघ्राय=घ्रात्वा, जललवमुचः=सलिलकणवर्षिणः, ते=तव, मार्गं=पन्थानम्, सूचयिष्यन्ति=अनुमापयिष्यन्ति। अनुमानालङ्कारः। मन्दाक्रान्ता वृत्तम् ॥२१॥

आलोक

नीपम्—नीपस्य विकारः नीपं, तत्—यहाँ 'तस्य विकारः' से अण् तथा 'पुष्पमूलेषु बहुलम्' से अण् का लोप। 'अथ स्थलकदम्बके। नीपः स्यात्पुलके'—शब्दार्णवः। दृष्ट्वा—दृश्+क्त्वा। हरितकपिशम्—हरितं च तत् कपिशम्, 'वर्णो वर्णेन' इस सूत्र से समास। 'पालाशो हरितं हरित्' तथा 'श्यावः स्यात्कपिशो धूम्रधूमली कृष्णलोहिते'—अमरकोष। केसरैः—'किञ्जल्कः केसरोऽस्त्रियाम्'—अमरकोष। अर्धरूढैः—अर्धं रूढाः अर्धरूढाः, तैः (सुप्सुपासमास)। रूढः—रुह्+क्त। आविर्भूतप्रथममुकुलाः—आविर्भूताः प्रथममुकुलाः यासां ताः (बहुव्रीहि)। आविस्+भू+क्त। 'प्रकाशे प्रादुराविः स्यात्'—अमरकोष। कन्दली—'द्रोणपर्णी स्निग्धकन्दा कन्दली भूकदल्यपि'-शब्दार्णव। अनुकच्छम्—'कच्छेषु इति' इस अर्थ में 'अव्ययं विभक्तिसमीप—' इत्यादि सूत्र से विभक्ति के अर्थ में समास। 'जलप्रायमनूपं स्यात्पुंसि कच्छस्तथाविधः'—अमरकोष। जग्ध्वा—'अद्+क्त्वा' यहाँ 'अदो जग्धिर्ल्यप्ति किति' सूत्र से अद् को जग्धादेश। अरण्येषु—'अटव्यरण्यं विपिनं गहनं काननं वनम्'—अमरकोष। कहीं-कहीं 'जग्ध्वारण्येषु' के स्थान पर 'दग्धारण्येषु' ऐसा पाठ मिलता है। दग्धानि च तानि अरण्यानि, तेषु (कर्मधारय)। अधिकसुरभिं—अधिक सुरभिः, तम् (सुप्सुपा)। 'सुरभिर्घ्राणतर्पणः'—अमरकोष। आघ्राय—आङ्+घ्रा+क्त्वा→ल्यप्। उर्व्याः—'वसुधोर्वी वसुन्धरा'—अमरकोष। सारङ्गाः—सारमङ्गं यस्य—शकन्ध्वादित्वात् पररूप अथवा सारं गच्छति—सार+गम्+खच्। 'सारङ्गः पुंसि हरिणे चातके च मतङ्गजे। शवले त्रिषु'—मेदिनीकोष। जललवमुचः—जलस्य लवाः (षष्ठी तत्पुरुष), जललवान् मुञ्चतीति जललवमुक्,—तस्य। जललव+मुच्+क्विप्। 'सलिलं कमलं जलम्'—अमरकोष। सूचयिष्यन्ति—'सूच्+णिच्' लृट् लकार प्र० पु० ए० व०। 'सारङ्ग' शब्द के विद्वानों ने कई एक अर्थ किये हैं। मल्लिनाथ ने 'सारङ्गाः' की व्याख्या 'सारङ्गा

मतङ्गजाः कुरङ्गा मृङ्गा वा' यह की है। सारोद्धारिणी टीका में हाथी, हरिण तथा भृङ्ग के अतिरिक्त चातक अर्थ भी दिया गया है। प्रसिद्ध टीकाकार काले का अभिमत है कि कवि यहाँ सारङ्ग पद के द्वारा तीन अर्थों की ओर इङ्गित करता है—भ्रमर अर्धविकसित कदम्ब के कुसुम को देखकर, हरिण कच्छप्रदेश में मुकुलित कन्दलियों को खाकर तथा हाथी पृथ्वी की गन्ध को सूंघकर तुम्हारे मार्ग को सूचित करेंगे। सरस्वतीतीर्थ तथा दक्षिणावर्त ने सारङ्ग शब्द का अर्थ केवल हरिण किया है। यहाँ नीप आदि कार्यों से वृष्टि रूप कारण का निश्चय होने के कारण अनुमान अलङ्कार है। प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति तथा मन्दाक्रान्ता छन्द है ॥२१॥

प्रसङ्ग--यक्ष कहता है कि हे मेघ ! सलिलकण को ग्रहण करने में चतुर चातकों को देखते हुए तथा अपनी प्रेयसियों को बगुलियों को दिखलाते हुए सिद्ध तुम्हारी गर्जन के कारण भयाकुल प्रेयसियों के द्वारा आलिङ्गित होने से तुम्हारे प्रति सम्मान के भाव को प्रकट करेंगे--

अम्भोबिन्दुग्रहणचतुरांश्चातकान्वीक्षमाणाः
श्रेणीभूताः परिगणनया निर्दिशन्तो बलाकाः ।
त्वामासाद्य स्तनितसमये मानयिष्यन्ति सिद्धाः
सोत्कम्पानि प्रियसहचरीसम्भ्रमालिङ्गितानि ॥२२॥

पदच्छेद--अम्भोबिन्दुग्रहणचतुरान् चातकान् वीक्षमाणाः श्रेणीभूताः परिगणनया निर्दिशन्तः बलाकाः । त्वाम् आसाद्य स्तनितसमये मानयिष्यन्ति सिद्धाः सोत्कम्पानि प्रियसहचरीसम्भ्रमालिङ्गितानि ॥२२॥

अन्वय—अम्भोबिन्दुग्रहणचतुरान् चातकान् वीक्षमाणाः श्रेणीभूताः बलाकाः परिगणनया निर्दिशन्तः स्तनितसमये सोत्कम्पानि प्रियसहचरीसम्भ्रमालिङ्गितानि आसाद्य त्वां मानयिष्यन्ति ॥२२॥

शब्दार्थ—अम्भोबिन्दुग्रहणचतुरान्=जल की बूंदों को ग्रहण करने में चतुर, चातकान्=चातकों को, वीक्षमाणाः=देखते हुये, श्रेणीभूताः=पंक्तिबद्ध, बलाकाः=बगुलियों को, परिगणनया=गिनकर, निर्दिशन्तः=दिखाते

हुये, सिद्धाः=सिद्ध लोग, स्तनितसमये=तुम्हारे गर्जन के समय में, सोत्कम्पानि=कम्पनयुक्त, प्रियसहचरीसम्भ्रमालिङ्गितानि=प्रियसहचरियों के शीघ्रतापूर्वक किये गये आलिङ्गनों को, आसाद्य=प्राप्त करके, त्वाम्=तुम्हारा, मानयिष्यन्ति=सम्मान करेंगे ॥२२॥

हिन्दी अनुवाद--जल की बूँदों को ग्रहण करने में चतुर चातकों को देखते हुये (तथा) पंक्तिबद्ध बगुलियों को (एक, दो, तीन इस प्रकार) गिनकर दिखलाते हुए सिद्ध लोग तुम्हारे गर्जन के समय में कम्पयुक्त प्रियसहचरियों के द्वारा शीघ्रतापूर्वक किये गये आलिङ्गनों को प्राप्त करके तुम्हारा समादर करेंगे ॥२२॥

संस्कृत व्याख्या -अम्भोबिन्दुग्रहणचतुरान्=जलकणग्रहणनिपुणान्, चातकान्=सारङ्गान्, वीक्षमाणाः=पश्यन्तः, श्रेणीभूताः=बद्धपंक्तीः, बलाकाः=विसकण्ठिकाः, परिगणनया=परिसंख्यानेन, निर्दिशन्तः=दर्शयन्तः, सिद्धाः=सिद्धपुरुषाः, स्तनितसमये=गर्जनकाले, सोत्कम्पानि=कम्पसहितानि, प्रियसहचरीसम्भ्रमालिङ्गितानि=दयितसहचरीत्वराश्लेषान्, आसाद्य=प्राप्य, त्वां=भवन्तम्, मानयिष्यन्ति=पूजयिष्यन्ति । अनुप्रासोऽलङ्कारः । मन्दाक्रान्ता वृत्तम् ॥२२॥

आलोक

अम्भोबिन्दुग्रहणचतुरान्—अम्भसां बिन्दवः अम्भोबिन्दवः (षष्ठी तत्पुरुष), तेषां ग्रहणम् अम्भोबिन्दुग्रहणम् (षष्ठी तत्पुरुष), तस्मिन् चतुराः तान् । 'अम्भोऽर्णस्तोयपानीयनीरक्षीराम्बुशंवरम्'—अमरकोष । वीक्षमाणाः—वि+ईक्ष्+शानच् । श्रेणीभूताः—अश्रेणयः श्रेणयः यथा सम्पद्यन्ते तथाभूताः –श्रेणि+च्वि+भू+क्त+टाप् । परिगणनया–एक, दो, तीन, चार इस प्रकार गिनती के द्वारा । निर्दिशन्तः--निर्+दिश्+शतृ । आसाद्य—आङ्+सद्+क्त्वा→ल्यप् । स्तनितसमये--स्तनितस्य समयः स्तनितसमयः, तस्मिन् (षष्ठी तत्पुरुष) स्तन्+क्त । 'स्तनितं गर्जितं मेघनिर्घोषो रसितादि च'—अमरकोष । मानयिष्यन्ति—मान् धातु लृट् लकार प्र० पु० ब० व० । सोत्कम्पानि--उत्कम्पेन सहितानि । प्रियसहचरीसम्भ्रमालिङ्गितानि--प्रियाश्च ताः सहचर्यश्चेति

प्रियसहचर्यः (कर्मधारय), तासां सम्भ्रमः (षष्ठी तत्पुरुष), तेन आलिङ्गितानि (तृतीया तत्पुरुष)। कहीं-कहीं 'प्रियसहचरीविभ्रमालिङ्गितानि' ऐसा पाठ है। 'अम्भोविन्दु·········'—कवि प्रसिद्धि है कि चातक स्वाति नक्षत्र के मेघ की बूँदों को भूमि पर गिरने से पहले ही ग्रहण करता है अन्यथा वह प्यासा ही मर जाता है। इस प्रकार चातक पक्षी पर संस्कृत में अनेक अन्योक्तियाँ मिलती हैं। सम्भ्रमालिङ्गितानि के द्वारा शृङ्गार की व्यञ्जना हो रही है। यहाँ अनुप्रास अलङ्कार है। प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति तथा मन्दाक्रान्ता छन्द है। कुछ विद्वान् इस श्लोक को कालिदास की रचना नहीं मानते हैं ।।२२।।

प्रसङ्ग—यक्ष का कथन है कि हे मेघ ! यद्यपि आप मेरे कार्य के सम्पादनार्थ शीघ्रता करेंगे फिर भी अर्जुन पुष्पों से सुगन्धित पर्वतों पर आपका मन रम ही जायेगा इसलिये जब हर्षाश्रुयुक्त मयूर अपनी मधुर वाणी से स्वागत कर चुकें तो आपको वहाँ से शीघ्र ही प्रस्थान करने का प्रयत्न करना चाहिये—

उत्पश्यामि द्रुतमपि सखे मत्प्रियार्थं यियासोः
कालक्षेपं ककुभसुरभौ पर्वते पर्वते ते।
शुक्लापाङ्गैः सजलनयनैः स्वागतीकृत्य केकाः
प्रत्युद्यातः कथमपि भवान् गन्तुमाशु व्यवस्येत् ।।२३।।

पदच्छेद—उत्पश्यामि द्रुतम् अपि सखे ! मत्प्रियार्थं यियासोः कालक्षेपं ककुभसुरभौ पर्वते पर्वते ते। शुक्लापाङ्गैः सजलनयनैः स्वागतीकृत्य केकाः प्रत्युद्यातः कथम् अपि भवान् गन्तुम् आशु व्यवस्येत् ।।२३।।

अन्वय—सखे ! मत्प्रियार्थं द्रुतं यियासोः अपि ते ककुभसुरभौ पर्वते पर्वते कालक्षेपम् उत्पश्यामि, सजलनयनैः शुक्लापाङ्गैः केकाः स्वागतीकृत्य प्रत्युद्यातः भवान् कथमपि आशु गन्तुं व्यवस्येत् ।।२३।।

शब्दार्थ—सखे=हे मित्र, मत्प्रियार्थम्=मेरे प्रिय (कार्य) के लिये, द्रुतम्=शीघ्र, यियासोः=जाने की इच्छा करने पर, अपि=भी, ते=तुम्हारे, ककुभसुरभौ=अर्जुन पुष्पों से सुगन्धित, पर्वते पर्वते=प्रत्येक पर्वत पर, काल-

क्षेपम्=समय व्यतीत होने की, उत्पश्यामि=सम्भावना कर रहा हूँ, सजल-नयनैः=हर्षाश्रुपूर्ण नेत्रों वाले, शुक्लापाङ्गैः=मयूरों के द्वारा, केकाः=अपनी वाणी को, स्वागतीकृत्य=स्वागत का (वचन) बनाकर, प्रत्युद्यातः=अगवानी किये गये, भवान्=आप, कथमपि=किसी प्रकार, आशु=शीघ्र, गन्तुम्=जाने के लिये, व्यवस्येत्=उद्योग करें ॥२३॥

हिन्दी अनुवाद—हे मित्र ! मेरे प्रिय (कार्य) के लिये शीघ्र जाने के इच्छुक होने पर भी अर्जुन पुष्पों से सुगन्धित प्रत्येक पर्वत पर तुम्हारे कालक्षेप (समय व्यतीत होने) की सम्भावना कर रहा हूँ । हर्षाश्रुपूर्ण नेत्रों वाले मयूरों के द्वारा अपनी मधुर वाणी को आपके स्वागत का वचन बनाकर अगवानी किये गये आप किसी प्रकार शीघ्र जाने के लिये उद्योग करें ॥२३॥

संस्कृत व्याख्या—सखे=मित्र, मत्प्रियार्थं=मदभीष्टसम्पादनार्थम्, द्रुतं=शीघ्रम्, यियासोरपि=यातुमिच्छोरपि, ते=तव, ककुभसुरभौ=अर्जुन-पुष्पसुगन्धिनि, पर्वते पर्वते=शैले शैले, कालक्षेपं=समयविलम्बम्, उत्पश्यामि=वितर्कयामि, सजलनयनैः=हर्षाश्रुपरिपूर्णनेत्रैः, शुक्लापाङ्गैः=मयूरैः, केकाः=मयूरवाणीः, स्वागतीकृत्य=स्वागतवचनीकृत्य, प्रत्युद्यातः=प्रत्युद्गतः, भवान्=मेघः, कथमपि=येन केन प्रकारेण, आशु=शीघ्रम्, गन्तुं=यातुम्, व्यवस्येत्=उद्युञ्जीत । अत्र परिणामालङ्कारः । मन्दाक्रान्ता वृत्तम् ॥२३॥

आलोक

उत्पश्यामि—उत्+दृश् लृट् लकार उ० पु० ए० व० । द्रुतम्—"अथ शीघ्रं त्वरितं लघु क्षिप्रमरं द्रुतम् । सत्वरं चपलं तूर्णमविलम्बितमाशु च ॥" —अमरकोष । मत्प्रियार्थम्—मम प्रियं मत्प्रियम् (षष्ठी तत्पुरुष) । मत्प्रि-याय इदं यथा स्यात्तथा (चतुर्थी तत्पुरुष) । यहाँ 'चतुर्थी तदर्थार्थबलिहित-सुखरक्षितैः'—से समास हुआ है । 'अर्थेन नित्यसमासो विशेष्यलिङ्गता चेति-वक्तव्यम्' के विधान से नित्य समास होता है । यियासोः—या+सन्+उ—यहाँ 'सनाशंसभिक्ष उः' इस सूत्र से उ प्रत्यय हुआ है । कालक्षेपम्—कालस्य क्षेपः कालक्षेपः, तम् (षष्ठी तत्पुरुष) । क्षेपः—क्षिप्+घञ् । 'क्षेपो विलम्बे निन्दायाम्'—विश्वकोष । ककुभसुरभौ—ककुभैः सुरभिः ककुभसुरभिः, तस्मिन्

(तृतीया तत्पुरुष) । शुक्लापाङ्गः—शुक्लौ अपाङ्गौ येषां ते शुक्लापाङ्गाः, तैः (बहुव्रीहि)। 'मयूरो बर्हिणो बर्ही शुक्लापाङ्गः शिखावलः'— यादवकोश । सजल-नयनैः=सजले नयने येषां ते सजलनयनाः' तैः (बहुव्रीहि) । 'नयनं नेत्रमीक्षणम्' —अमरकोश । स्वागतीकृत्य—अस्वागतं स्वागतं यथा भवति तथा कृत्वा—स्वागत+च्वि+कृ+क्त्वा→ल्यप् । केकाः —मयूर की वाणी को केका कहते हैं — 'केका वाणी मयूरस्य' — अमरकोश । प्रत्युद्यातः — प्रति+उत् -+या+क्त । गन्तुम — गम्+तुमुन् । व्यवस्येत्— वि+अव+षो+ विधि-लिङ् लकार प्र० पु० ए० व० । यक्ष का विचार है कि यद्यपि मेघ मेरे कार्य के लिए शीघ्रता करेगा परन्तु अर्जुन पुष्पों से सुगन्धित पर्वतों पर रसिक होने के कारण उसका न ठहरना सम्भव नहीं है इसलिए वह मेघ से कहता है कि पर्वतों पर मयूरों के द्वारा स्वागत सत्कार किए जाने के बाद आप वहाँ से हमारे कार्य को ध्यान में रखकर शीघ्र ही प्रस्थान करें अन्यथा हानि होगी । यहाँ केका में समारोपित स्वागत वचन का प्रस्तुत हुए प्रत्युद्गमन में उपयोगी होने के कारण परिणाम नामक अलङ्कार है जिसका लक्षण इस प्रकार है— 'आरोप्यमाणस्य प्रकृतोपयोगित्वे परिणामः' । प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति तथा मन्दाक्रान्ता छन्द है ॥ २३ ॥

प्रसङ्ग— यक्ष मेघ से कहता है कि तुम्हारे निकटवर्ती होने पर दशार्ण के बगीचों के प्रान्तभाग केवड़े के खिल जाने से पीले-पीले हो जायेंगे, गाँवों के समीपवर्ती वृक्षों पर घरेलू पक्षियों के द्वारा घोंसले बना लिये जायेंगे, परिपक्व जामुनफलों से सौन्दर्य आ जायेगा तथा वहाँ हंस अब थोड़े ही दिन निवास कर सकेंगे—

पाण्डुच्छायोपवनवृतयः केतकैः सूचिभिन्नै—
नींडारम्भैर्गृहबलिभुजामाकुलग्रामचैत्याः ।
त्वय्यासन्ने परिणतफलश्यामजम्बूवनान्ताः
संपत्स्यन्ते कतिपयदिनस्थायिहंसा दशार्णाः॥२४॥

पदच्छेद— पाण्डुच्छायोपवनवृतयः केतकैः सूचिभिन्नैः नीडारम्भैः गृह— वलिभुजाम् आकुलग्रामचैत्याः । त्वयि आसन्ने परिणतफलश्यामजम्बूवनान्ताः संपत्स्यन्ते कतिपयदिनस्थायिहंसाः दशार्णाः ॥ २४ ॥

अन्वय— त्वयि आसन्ने दशार्णाः सूचिभिन्नैः केतकैः पाण्डुच्छायोपवनवृतयः गृहवलिभुजां नीडारम्भैः आकुलग्रामचैत्याः परिणतफलश्यामजम्बूवनान्ताः कतिपयदिनस्थायिहंसाः सम्पत्स्यन्ते ॥ २४ ॥

शब्दार्थ— त्वयि = तुम्हारे, आसन्ने = समीपवर्ती होने पर, दशार्णाः = दशार्णनामक देश, सूचिभिन्नैः =अग्रभाग में खिले हुए, केतकैः = केतकी के फूलों से, पाण्डुच्छायोपवनवृतयः = पीली कान्ति वाले उपवनों की बाड़ों से युक्त, गृहवलिभुजां = घर की बलि खाने वाले, नीडारम्भैः = घोंसलों की रचना से, आकुलग्रामचैत्याः = भरे हुए ग्राम पथ के वृक्षों वाला (या भरे हुए गाँव के मन्दिरों वाला), परिणतफलश्यामजम्बूवनान्ताः = पके हुए फलों से काले जामुनों के वनों से रमणीय, कतिपयदिनस्थायिहंसाः = कुछ ही दिन ठहरे हुए हंसों वाला, सम्पत्स्यन्ते = हो जायेगा ॥ २४ ॥

हिन्दी अनुवाद— तुम्हारे समीपवर्ती होने पर दशार्ण नामक देश अग्रभाग में खिले हुए केतकी के फूलों से पीली कान्ति वाले उपवनों की बाड़ों से युक्त घरों की बलि खाने वाले (कौवे आदि पक्षियों) के घोसलों की रचना से भरे हुए ग्रामपथ के वृक्षों वाला (या भरे हुए ग्राम के मन्दिरों वाला), पके हुए फलों से काले जामुनों के वनों से रमणीय (तथा) कुछ ही दिन ठहरे हुए हंसों वाला हो जायेगा ॥ २४ ॥

संस्कृत व्याख्या— त्वयि = भवति, आसन्ने= समीपवर्तिनि, दशार्णाः= दशार्णनामकाः देशाः, सूचिभिन्नैः = मुकुलाग्रविकसितैः, केतकैः = केतकीकुसुमैः, पाण्डुच्छायोपवनवृतयः = पीतकान्तियुक्तोद्यानप्राचीरयुक्ताः, गृहवलिभुजां = भवनवलिभोजिनाम्, नीडारम्भैः = कुलायनिर्माणैः, आकुलग्रामचैत्याः = अभिव्याप्तग्राममार्गपादपाः, परिणतफलश्यामजम्बू-

वनान्ताः = परिपक्वफलश्यामजम्बूवनरम्याः, कतिपयदिनस्थायिहंसाः = किञ्चिद्दिवसस्थायिसारङ्गाः, सम्पत्स्यन्ते = भविष्यन्ति । स्वभावोक्तिरलङ्कारः । मन्दाक्रान्ता वृत्तम् ॥ २४ ॥

आलोक

पाण्डुच्छायोपवनवृतयः – पाण्डुः छाया यासां ताः पाण्डुच्छायाः (बहुव्रीहि) । पाण्डुच्छायाः उपवनवृतयः येषां ते (बहुव्रीहि) । उपवनवृतयः– उपवनानां वृतयः (षष्ठी तत्पुरुष) । वृतिः – वृ + क्तिन् । 'प्राकारो वरणः सालः प्राचीरं प्रान्ततो वृतिः' — अमरकोष । केतकैः — केतक्याः विकाराः केतकानि, तैः । यहाँ 'तस्य विकारः' से अण् प्रत्यय तथा 'पुष्पमूलेषु बहुलम्' से लोप । केतकी शब्द केतकी के फूल का वाचक है । सूचिभिन्नैः — सूचिषु भिन्नानि, तैः (सप्तमी तत्पुरुष) । सूचिः — 'केतकीमुकुलाग्रेषु सूचिः स्यात्'— शब्दार्णव । भिन्नम् - भिद् + क्त । नीडारम्भैः — नीडानाम् आरम्भाः, तैः (षष्ठी तत्पुरुष) । आरम्भाः — आरम्भणानि — आङ् + रम् + घञ् । यहाँ 'हेतौ' से तृतीया हुयी है । गृहबलिभुजाम् — गृहणां बलयः (षष्ठी तत्पुरुष), गृहबलीन् भुञ्जते इति गृहबलिभुजः, तेषाम् । गृह + बलि + भुज् + क्विप् । 'बलिर्दैत्यप्रभेदे च करचामरदण्डयोः । उपहारे पुमान् स्त्री तु जरया श्लथ-चर्मणि । गृहदारुप्रभेदे च जठरावयवेऽपि च' — मेदिनीकोष । आकुल-ग्रामचैत्याः— आकुलानि ग्रामचैत्यानि येषु ते (बहुव्रीहि) । चैत्य—चीयते असौ इति चित्यः — चि + क्यप् = चित्य । यहाँ 'चित्याग्नि चित्ये च' इस सूत्र से निपातनात् सिद्धि होती है । चित्यस्य इमानि चैत्यानि इस विग्रह से चित्य शब्द से 'तस्येदम्' इस सूत्र से अण् होकर चैत्य शब्द बनता है । अग्नि सम्बन्धी वृक्ष को चैत्य लक्षणया कहेंगे । सामान्य तौर से यज्ञ स्थान विशेष को चैत्य कहते हैं — 'चैत्यमायतनं तुल्ये' — अमरकोश । रुद्रकोश में चैत्य का अर्थ पादप भी किया गया है — 'चैत्यमायतनं बुद्धबिम्बेऽप्युद्देश्यपादपे' । इस प्रकार चैत्य शब्द सीधे भी वृक्ष का वाचक है । मल्लिनाथ ने चैत्यानि का रथ्यावृक्षाः

अर्थ किया है । आसन्ने —आ+सद्+क्त । परिणतफलश्यामजम्बूवनान्ताः — परिणतानि च तानि फलानि परिणतफलानि (कर्मधारय), परिणतफलैः श्यामानि परिणतफलश्यामानि (तृतीया तत्पुरुष), परिणतफलश्यामानि च तानि जम्बूवनानि (कर्मधारय) । परिणतफलश्यामजम्बूवनैः अन्ताः (रमणीयाः) तृतीया तत्पुरुष । अथवा परिणतफलैः श्यामाः जम्बूवनानाम् अन्ताः येषु ते (बहुव्रीहि) । अन्त शब्द का अर्थ यहाँ रम्य है — 'मृताववसिते रम्ये समाप्तावन्त इष्यते' — शब्दार्णव । सम्पत्स्यन्ते — सम्+पद्—लृट् आत्मनेपद बहुवचन । कतिपयदिनस्थायिहंसाः — कतिपयानि च तानि दिनानि कतिपयदिनानि (कर्मधारय) । कतिपयदिनानि स्थायिनः कतिपयदिनस्थायिनः । कतिपयदिनस्थायिनः हंसाः येषु ते (बहुव्रीहि) । स्थायिनः—तिष्ठन्तीति तच्छीलाः— स्था+णिनि । इस पद की व्युत्पत्ति इस प्रकार भी की जा सकती है—कतिपयेषु दिनेषु स्थायिनः हंसाः येषु ते । हंसः — हन्ति गच्छति इति इस अर्थ में 'वृतृवदिहनि—' इत्यादि सूत्र से स प्रत्यय । 'हंसास्तु श्वेतगरुतश्चक्राङ्गा मानसौकस.— अमरकोश । दशार्णाः — दश ऋणानि येषां ते । जिन क्षत्रिय राजाओं के दश दुर्ग (ऋण) हैं उन्हें दशार्ण कहते हैं । दशार्णानां निवासः जनपदः इस अर्थ में 'तस्य निवासः' से अण् प्रत्यय तथा 'जनपदे लुप्' से उसका लुप् तथा 'लुपि युक्तवद्व्यक्तिवचने' से प्रत्यय के लुप्त होने पर लिङ्ग तथा वचन का प्रकृतिभाव होने से दशार्णाः रूप बनता है । ऋण शब्द जल का भी वाचक है, इस अर्थ को लेकर दश ऋणानि (जलप्रवाहाः) यस्यां सा (बहुव्रीहि) इस विग्रह के अनुसार दशार्णा शब्द नदीवाची हो जाता है। कुछ विद्वानों ने दशार्ण को छत्तीसगढ़ माना है । यहाँ स्वभावोक्ति तथा उल्लास अलङ्कार हैं । उल्लास अलङ्कार का लक्षण — 'एकस्य गुणदोषाभ्यामुल्लासोऽन्यस्य तौ यदि' प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति तथा मन्दाक्रान्ता छन्द है ॥ २४ ॥

प्रसङ्ग— यक्ष का कथन है कि हे मेघ ! दशार्ण देश की विदिशा नामक राजधानी में पहुँचकर तुम विलासिता के सम्पूर्ण फल को प्राप्त कर लोगे । वहाँ तुम वेत्रवती नदी के मधुर और चञ्चल लहरों वाले सलिलकोभ्रूभङ्गिमायुक्त नायिका के मुख के समान भलीभांति पी सकोगे—

तेषां दिक्षु प्रथितविदिशालक्षणां राजधानीं
गत्वा सद्यःफलमविकलं कामुकत्वस्य लब्धा ।
तीरोपान्तस्तनितसुभगं पास्यसि स्वादु यस्मात्
सभ्रूभङ्गं मुखमिव पयो वेत्रवत्याश्चलोर्मि ।। २५ ।।

पदच्छेद— तेषां दिक्षु प्रथितविदिशालक्षणां राजधानीं गत्वा सद्यः फलम् अविकलं कामुकत्वस्य लब्धा । तीरोपान्तस्तनितसुभगं पास्यसि स्वादु यस्मात् सभ्रूभङ्गं मुखम् इव पयः वेत्रवत्याः चलोर्मि ।। २५ ।।

अन्वय— दिक्षु प्रथितविदिशालक्षणां तेषां राजधानीं गत्वा सद्यः कामुकत्वस्य अविकलं फलं लब्धा यस्मात् स्वादु चलोर्मि वेत्रवत्याः पयः सभ्रूभङ्गं मुखम् इव तीरोपान्तस्तनितसुभगं पास्यसि ।। २५ ।।

शब्दार्थ— दिक्षु = दिशाओं में, प्रथितविदिशालक्षणां = विदिशा के नाम से प्रसिद्ध, तेषाम् = उस (दशार्ण देश) की, राजधानीम् = राजधानी में, गत्वा = जाकर, सद्यः = उसी क्षण, कामुकत्वस्य = विलासिता के, अविकलम् = सम्पूर्ण, फलम् = फल को, लब्धा = प्राप्त करोगे, यस्मात् = क्योंकि, स्वादु = मधुर, चलोर्मि = चञ्चल लहरों वाले, वेत्रवत्याः = वेत्रवती नामक नदी के, पयः = जल को, सभ्रूभङ्गम् = भौंहों की कुटिलता से युक्त, मुखमिव = (नायिका के) मुख के समान, तीरोपान्तस्तनितसुभगम् = तट के प्रान्त में मधुर गर्जन करने के साथ-साथ, पास्यसि = पियोगे ।। २५ ।।

हिंदी अनुवाद— दिशाओं में विदिशा के नाम से प्रसिद्ध उस (दशार्णदेश) की राजधानी में जाकर तत्क्षण (तुम) विलासिता का सम्पूर्ण फल प्राप्त करोगे क्योंकि मधुर और चञ्चल लहरों वाले वेत्रवती नामक नदी के जल को भौंहों की कुटिलता से युक्त (नायिका के) मुख (लक्षणया अधर) के समान तट के प्रान्त में मधुर गर्जन करने के साथ-साथ पियोगे ।। २५ ।।

संस्कृत व्याख्या— दिक्षु = दिशासु, प्रथितविदिशालक्षणां = प्रख्यातविदिशा-नामधेयाम्, तेषां = दशार्णानाम्, राजधानीं = प्रमुखनगरीम्, गत्वा =

प्राप्य, सद्यः=तत्क्षणम्, कामुकत्वस्य=विलासितायाः, अविकलं=सम्पूर्णम्, फलं=प्रयोजनम्, लब्धा=लप्स्यते, यस्मात्=यस्मात् कारणात्, स्वादु=मधुरम्, चलोर्मि=तरङ्गितम्, वेत्रवत्याः=वेत्रवतीसरितः, पयः=सलिलम्, सभ्रूभङ्ग=भ्रकुटियुक्तम्, मुखमिव= आननमिव, तीरोपान्तस्तनितसुभग=तटप्रदेशगर्जितसुन्दरम्, पास्यसि=पानं करिष्यसि । सामासोक्तिरलङ्कारः । मन्दाक्रान्ता वृत्तम् ॥२५॥

आलोक

दिक्षु--'दिशस्तु ककुभः काष्ठा आशाश्च हरितश्च ताः'–अमरकोश । प्रथितविदिशालक्षणाम्–प्रथित विदिशा इति लक्षणं यस्याः सा ताम् (बहुव्रीहि) । 'प्रतीते प्रथितख्यातवित्तविज्ञातविश्रुताः'--अमरकोश । मालवदेश में स्थित विदिशा सम्प्रति भिलसा नाम से प्रसिद्ध है । राजधानीम्–राज्ञां धानी राजधानी, ताम् (षष्ठी तत्पुरुष) । धानी-धीयन्ते अस्याम्–धा+ल्युट्+ङीप् । यहाँ 'करणाधिकरणयोश्च' इस सूत्र से अधिकरण के अर्थ में ल्युट् प्रत्यय हुआ है । गत्वा–गम्+क्त्वा । अविकलम्–विगता कला यस्मात् तत् । विकलम् (बहुव्रीहि), न विकलम् अविकलम् । (नञ् तत्पुरुष) । 'कला स्यादंशशिल्पयोः' –हेमचन्द्र । कामुकत्वस्य–कामयते तच्छीलः इस अर्थ में कम् धातु से 'लषपतपदस्थाभूवृषहनकमगमशॄभ्य उकञ्" इस सूत्र से 'उकञ् प्रत्यय होकर कामुक शब्द बनता है । कामुकस्य भावः–कामुक+त्वल्=कामुकत्वम्, तस्य । 'विलासी कामुकः कामी स्त्रीपरो रतिलम्पटः'–शब्दार्णव । लब्धा–लभ्+लुट् (कर्मणि) प्र० पु० ए० व० । तीरोपान्तस्तनितसुभगम्–तीरस्य उपान्तः तीरोपान्तः (षष्ठी तत्पुरुष), तीरोपान्ते स्तनितं तीरोपान्तस्तनितम् (सप्तमी तत्पुरुष) तीरोपान्तस्तनितेन सुभगं यथा स्यात्तथा (तृतीया तत्पुरुष) । पास्यसि—पा धातु लृट् लकार म० पु० ए० व० । सभ्रूभङ्गम्—भ्रुवोः भङ्गः भ्रूभङ्गः (षष्ठी तत्पुरुष), भ्रूभङ्गेन सहितं सभ्रूभङ्गम्, तत् (बहुव्रीहि) । मुखम्—'आननं लपनं मुखम्'–अमरकोश । पयः—'पयः कीलालममृतं जीवनं भुवनं वनम्'–अमरकोश । पयते पीयते वा पय गतौ पीङ् पाने वा धातु से

असुन् प्रत्यय होकर पयः शब्द सिद्ध होता है। 'पयः क्षीरे च नीरे च'—हेमचन्द्र। वेत्रवत्याः—वेत्रम् अस्ति यस्याः सा—वेत्र+मतुप्+ङीप्, मकार को वकारादेश। चलोर्मि—चला ऊर्मिः यस्य, तत् (बहुव्रीहि)। प्रस्तुत श्लोक में दशार्ण देश की राजधानी विदिशा को अपने वैभव और सौन्दर्य आदि गुणों के द्वारा प्रख्यात बतलाया गया है। यहाँ मेघ का चित्रण नायक के रूप में हुआ है तथा वेत्रवती नायिका के रूप में चित्रित हुई है। वेत्रवती का मधुर सलिल नायिका का अधर है जिसका मेघ पान करता है। जल की लहरें नायिका की टेढ़ी भौंहें हैं जिसने मानो नायकविहित दन्तक्षत आदि होने के कारण अपनी भौंहों को तान लिया हो। इस प्रकार यहाँ मेघ तथा वेत्रवती में नायक तथा नायिका के व्यवहारों को समारोपित किये जाने के कारण समासोक्ति अलङ्कार है। अधरपान की उत्कृष्टता साहित्यशास्त्र में विशेषतया प्रतिपादित की गई है—'स्वर्गप्राप्तिरनेनैव देहेन वरवर्णिनी। अस्या रदच्छदरसो न्यक्करोतितरां सुधाम् ॥' तथा महात्मा भर्तृहरि भी लिखते हैं—'उरसि निपतितानां स्रस्तधम्मिल्लकानां मुकुलितनयनानां किञ्चिदुन्मीलितानाम्। उपरि सुरतखेदस्विन्नगण्डस्थलानाम् अधरमधुवधूनां भाग्यवन्तः पिबन्ति।' अन्यत्र भी कहा गया है—'कामिनामधरास्वादः सुरतादतिरिच्यते।' यहाँ शृङ्गाररस की अभिव्यञ्जना हो रही है। प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति तथा मन्दाक्रान्ता छन्द हैं ॥२५॥

प्रसङ्ग—यक्ष का कथन है कि हे मेघ! दशार्ण देश की राजधानी विदिशा के समीप विश्राम करने के लिये उच्चैः नामक पर्वत पर ठहर जाना, जहाँ वेश्याओं की रतिक्रीडा में सुगन्ध को उद्गीर्ण करने वाली गुफाओं से नागरिकों के उत्कट यौवन को प्रकट किया जा रहा होगा—

नीचैराख्यं गिरिमधिवसेस्तत्र विश्रामहेतो—
स्त्वत्सम्पर्कात्पुलकितमिव प्रौढपुष्पैः कदम्बैः।
यः पण्यस्त्रीरतिपरिमलोद्गारिभिर्नागराणा—
मुद्दामानि प्रथयति शिलावेश्मभिर्यौवनानि ॥२६॥

पदच्छेद--नीचैः आख्यं गिरिम् अधिवसेः तत्र विश्रामहेतोः त्वत्सम्पर्कात् पुलकितम् इव प्रौढपुष्पैः कदम्बैः । यः पण्यस्त्रीरतिपरिमलोद्गारिभिः नागराणाम् उद्दामानि प्रथयति शिलावेश्मभिः यौवनानि ॥२६॥

अन्वय—तत्र विश्रामहेतोः प्रौढपुष्पैः कदम्बैः त्वत्सम्पर्कात् पुलकितम् इव नीचैः आख्यं गिरिम् अधिवसेः । यः पण्यस्त्रीरतिपरिमलोद्गारिभिः शिलावेश्मभिः नागराणां उद्दामानि यौवनानि प्रथयति ॥२६॥

शब्दार्थ—तत्र=वहाँ, विश्रामहेतोः=विश्राम के लिये, प्रौढपुष्पैः=विकसित कुसुमों वाले, कदम्बैः=कदम्ब वृक्षों से, त्वत्सम्पर्कात्=तुम्हारे सम्पर्क से, पुलकितम् इव=रोमाञ्चित के समान, नीचैराख्यम्=नीचैः नामक, गिरि=पर्वत पर, अधिवसेः=ठहर जाना, यः=जो, पण्यस्त्रीरतिपरिमलोद्गारिभिः=वेश्यायों की रतिक्रीडा में सुगन्ध को प्रकट करने वाली, शिलावेश्मभिः=गुफाओं से, नागराणाम्=नागरिकों के, उद्दामानि=उत्कट, यौवनानि=तारुण्य को, प्रथयति=प्रकट करता है ॥२६॥

हिन्दी अनुवाद--वहाँ (विदिशा के समीप में) विश्राम के लिये विकसित कुसुमों वाले कदम्ब वृक्षों से तुम्हारे सम्पर्क से रोमाञ्चित हुये के समान नीचैः नामक पर्वत पर ठहर जाना, जो वेश्यायों की रतिक्रीडाओं में (विमर्दित पुष्प आदि की) सुगन्धि को प्रकट करने वाली गुफाओं से नागरिकों के उत्कट तारुण्य (यौवन) को प्रकट करता है ॥२६॥

संस्कृत व्याख्या—तत्र=तस्यां विदिशायाम्, विश्रामहेतोः=अध्वश्रमापनयनाय, प्रौढपुष्पैः=विकसितप्रसूनैः, कदम्बैः=नीपवृक्षैः, त्वत्सम्पर्कात्=भवत्संसर्गात्, पुलकितमिव=रोमाञ्चितमिव, नीचैराख्यं=नीचैः संज्ञकम्, गिरि=पर्वतम्, अधिवसेः=अधिवासं कुर्याः, यः=पर्वतः, पण्यस्त्रीरतिपरिमलोद्गारिभिः=वेश्यारमणसुगन्धप्रसारिभिः शिलावेश्मभिः=कन्दरैः, नागराणां=पौराणाम्, उद्दामानि=उत्कटानि, यौवनानि=तारुण्यानि, प्रथयति=प्रकटयति । उत्प्रेक्षालङ्कार। मन्दाक्रान्ता वृत्तम् ।२६॥

आलोक

नीचैराख्यम्—नीचैः आख्या यस्य सः, तम् (बहुव्रीहि) । आख्याह्वे

—अभिधानं च नामधेयं च नाम च'—अमरकोश । नीचैः—यह पर्वत का नाम है। गिरिम्—गिरति इति—गॄ निगरणे धातु से बाहुलकात् कि प्रत्यय तथा 'ॠत इद्धातोः' से इर् होकर गिरि शब्द बनता है । "महीध्रे शिखरिक्ष्माभृद्— हार्यधरपर्वताः । अद्रिगोत्रगिरिग्रावाचलशैलशिलोच्चयाः ॥"—अमरकोश । यहाँ 'उपान्वध्याङ्वसः' इस सूत्र से अधि उपसर्ग पूर्वक वस् धातु के योग में अधिकरण की कर्मसंज्ञा होकर द्वितीया हुई है। अधिवसेः—अधि+वस्+लिङ्लकार म० पु०ए० व० । विश्रामहेतोः—विश्रामस्य हेतोः विश्रामहेतोः (षष्ठी तत्पुरुष) । विश्राम—विश्राम शब्द को लेकर विद्वानों में विवाद है। श्रम् धातु से घञ् प्रत्यय होकर विश्राम शब्द सिद्ध नहीं हो सकता क्योंकि 'नोदात्तोपदेशस्य मान्तस्याऽनाचमेः' इस सूत्र से उपधा वृद्धि को निषेध हो जाता है इस प्रकार विश्राम न बनकर विश्रम शब्द निष्पन्न होता है इसीलिए भट्टोजि दीक्षित ने अपनी सिद्धान्तकौमुदी में 'विश्राम इति त्वपाणिनीयम्' यह लिखकर विश्राम शब्द को अपाणिनीय घोषित कर दिया है। यदि 'धुर्यानविश्रामयन्' इस प्रयोग के आधार पर णिच् प्रत्ययान्त विश्रामि से 'एरच्' इस सूत्र के द्वारा अच् प्रत्यय कर लिया जाय तो विश्राम शब्द निष्पन्न हो जाता है। यहां 'मितां ह्रस्वः, इस सूत्र के द्वारा ह्रस्व की आशंका नहीं करनी चाहिये क्योंकि इस सूत्र में वा की अनुवृत्ति चली आ रही है। तत्त्वबोधिनीकार ज्ञानेन्द्र भिक्षु यहाँ स्वार्थ में णिच् बतलाते हुये अर्थभेद की आशंका का निराकरण कर देते हैं और कविप्रयोग को दिखलाते हुये वे एक उद्धरण देते हैं—"रोगी चिर-प्रवासी पराऽन्नभोजी पराऽऽवसथशायी । यज्जीवति तन्मरणं यन्मरणं सोऽस्य विश्रामः ॥" महामहोपाध्याय मल्लिनाथ ने विश्राम शब्द की सिद्धि चन्द्रव्याकरण के द्वारा की है—'विश्रामेत्यत्र 'नोदात्तोपदेशस्य मान्तस्यानाचमेः' इति पाणिनीये वृद्धिप्रतिषेधेऽपि 'विश्रामो वा' इति चन्द्रव्याकरणे विकल्पेन वृद्धिविधानाद्रूपसिद्धिः ।" विश्राम शब्द की व्युत्पत्ति निम्नलिखित प्रकार से करने से उसकी पाणिनीयता सुरक्षित रखी जा सकती है—श्रमणं श्रमः— श्रम्+घञ् । श्रम एव श्रामः— श्रम+अण् यहाँ स्वार्थ में अण् प्रत्यय हुआ है।

विगतः श्रामो यस्मिन्निति विश्रामः (बहुव्रीहि) । विश्रामस्य हेतोः में 'षष्ठी हेतुप्रयोगे' इस सूत्र से षष्ठी होकर षष्ठी तत्पुरुष समास होता है । कहीं कहीं विश्रान्तिहेतोः ऐसा पाठ भी मिलता है । त्वत्सम्पर्कात्—तव सम्पर्कात् । (षष्ठी तत्पुरुष) सम् + पृच् + घञ् = सम्पर्क । पुलकितम्—पुलकाः सञ्जाताः अस्य, तम् यहाँ पुलक शब्द से 'तदस्य सञ्जातं तारकादिभ्य इतच्' इस सूत्र से इतच् प्रत्यय हुआ है । प्रौढपुष्पैः—प्रौढानि पुष्पाणि येषु, तैः (बहुव्रीहि) । प्रौढम्—प्र + वह् + क्त । पण्यस्त्रीरतिपरिमलोद्गारिभिः—पण्याश्च ताः स्त्रियः पण्यस्त्रियः । पण्यस्त्रीणां रतयः पण्यस्त्रीरतयः (षष्ठी तत्पुरुष), तासु परिमलः पण्यस्त्रीरतिपरिमलः । पण्यस्त्रीरतिपरिमलम् उदगिरन्ति इति तच्छीलानि पण्यस्त्रीरतिपरिमलोदगारिणि तैः । पण्यस्त्रीरतिपरिमल + उत् + गॄ + णिनि । पण्यस्त्री—'वारस्त्री गणिका वेश्या पण्यस्त्री रूपजीविनी'—शब्दार्णव । रति—रम् + क्तिन् । प्रस्तुत सन्दर्भ में उद्गार शब्द गौण अर्थ में प्रयुक्त होने के कारण जुगुप्सा व्यञ्जक अश्लीलता नहीं लाता है जैसा कि आचार्य दण्डी को उद्धृत करते हुये मल्लिनाथ ने लिखा है—"अत्रोद्गार-शब्दो गौणार्थत्वान्न जुगुप्सावहः । प्रत्युत काव्यस्यातिशोभाकर एव । तदुक्तं दण्डिना—निष्ठ्यूतोद्गीर्णवान्तादि गौणवृत्तिव्यपाश्रयम् । अतिसुन्दरमन्यत्र ग्राम्यकक्षां विगाहते ।" नागराणाम्—नगरे भवाः नागराः, तेषाम् । नगर + अण् । यहाँ 'तत्रभवः' से अण् प्रत्यय हुआ है । उद्दामानि—दाम्नः उद्गतानि उद्दमानि—यहाँ 'निरादयः क्रान्ताद्यर्थे पञ्चम्या:' इस वार्तिक से समास हुआ है । प्रथयति—प्रथ + णिच् + लट् प्र० पु० ए० व० । शिलावेश्मभिः—शिलानां वेश्मानि शिलावेश्मानि, तैः । यौवनानि—युवनां भावाः यौवनानि, तानि । युवन् + अण् = यौवन । विदिशा नामक नगरी के समीप स्थित नीचैः पर्वत का वैभव अत्यन्त उत्कृष्ट है । वहाँ कदम्ब के वृक्ष खिले हुये हैं । उत्कट यौवनवाली अनुरक्ता वाराङ्गनायें विश्रम्भ विहार की आकांक्षा से उस विविक्त स्थान पर स्वच्छन्द होकर रमण करती हैं । आचार्य मल्लिनाथ लिखते हैं—"उत्कटयौवनाः क्वचिदनुरक्ताः वाराङ्गना विश्रम्भविहाराकाङ्क्षिण्यो मात्रादि-

भयान्निशीथसमये कञ्चन विविक्तं देशमाश्रित्य रमन्ते । तच्चात्र बहुलमस्तीति प्रसिद्धिः ।" नागराणाम् उद्दामानि यौवनानि प्रथयति इस कथन से वहाँ के नागरिकों की सम्पन्नता, रूपातिशयता, विलासिता, कामुकता एवं रसिकता अभिव्यञ्जित होती है। पुलकितमिव यहाँ प्रयुक्त इव शब्द उत्प्रेक्षा का व्यञ्जक है। कहा भी गया है—"मन्ये शङ्के ध्रुवं प्रायो नूनमित्येवमादयः । उत्प्रेक्षाव्यञ्जकाः शब्दा इव शब्दोऽपि तादृशः ॥" प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति तथा मन्दाक्रान्ता छन्द है ॥२६॥

प्रसङ्ग—यक्ष कहता है कि हे मेघ ! नीचैः नामक पर्वत पर विश्राम करने के पश्चात् तुम जङ्गल की नदियों के किनारों पर स्थित बगीचों की जूही की कलिकाओं को अपने नूतन जल से सींचते हुये फूलों को चुनने वाली थकी हुई कामिनियों के मुख पर अपनी छाया डालते हुये इस प्रकार उनसे भी क्षणिक परिचय करने के पश्चात् आगे की ओर प्रस्थान करना—

विश्रान्तः सन्व्रज वननदीतीरजातानि सिञ्च—
न्नुद्यानानां नवजलकणैर्यूथिकाजालकानि ।
गण्डस्वेदापनयनरुजाक्लान्तकर्णोत्पलानां
छायादानात्क्षणपरिचितः पुष्पलावीमुखानाम् ॥२७॥

पदच्छेद—विश्रान्तः सन् व्रज वननदीतीरजातानि सिञ्चन् उद्यानानां नवजलकणैः यूथिकाजालकानि । गण्डस्वेदापनयनरुजाक्लान्तकर्णोत्पलानां छायादानात् क्षणपरिचितः पुष्पलावीमुखानाम् ॥२७॥

अन्वय—विश्रान्तः सन् वननदीतीरजातानि उद्यानानां यूथिकाजालकानि नवजलकणैः सिञ्चन् गण्डस्वेदापनयनरुजाक्लान्तकर्णोत्पलानां पुष्पलावीमुखानां छायादानात् क्षणपरिचितः व्रज ॥२७॥

शब्दार्थ—विश्रान्तः सन्=विश्राम करके, वननदीतीरजातानि=वन की नदियों के तटों पर उत्पन्न होने वाली, उद्यानानाम्=उद्यानों की, यूथिकाजालकानि=जूही की कलिकाओं को, नवजलकणैः=नवीन जल की बूंदों से, सिञ्चन्=सींचते हुये, गण्डस्वेदापनयनरुजाक्लान्तकर्णोत्पलानाम्=कपोलों

पर पसीने को दूर करने से उत्पन्न पीड़ा के कारण जिनके कर्ण भूषण कमल मुरझा गये हैं (ऐसी), पुष्पलावीमुखानाम् = फूल चुनने वाली ललनाओं के मुखों को, छायादानात् = छाया देने के कारण, क्षणपरिक्षित: = क्षण भर के लिये परिचित होते हुये, व्रज = जाना ।। २७ ।।

हिन्दी अनुवाद— (नीचैः नामक पर्वत पर) विश्राम करके वन की नदियों के तटों पर उत्पन्न होने वाली उद्यानों की जूही की कलिकाओं को नूतन सलिल कणों से सींचते हुए कपोलों पर पसीने के हटाने से उत्पन्न पीड़ा के द्वारा जिनके कर्ण भूषण कमल मुरझा गये होंगे, फूलों को तोड़ने वाली (ऐसी उन) ललनाओं के मुखों को छाया देने से कुछ समय के लिए परिचित होते हुए (आगे) जाना ।। २७ ।।

संस्कृत व्याख्या— विश्रान्तः सन् = विहितविश्रामः सन् 'वननदीतीरजातानि = विपिनसरित्तटोत्पन्नानि, उद्यानानां = आरामाणाम्, यूथिकाजालकानि = मागधीकुसुममुकुलानि, नवजलकणैः = अभिनवसलिललवैः सिञ्चन् ।। आर्द्रीकुर्वन्; गण्डस्वेदापनयनरुजाक्लान्तकर्णोत्पलानां = कपोलघर्मजलापसारण-पीडाग्लानश्रोत्रकुवलयानाम्, पुष्पलावीमुखानां = प्रसूनावचायिकाललनानाम छायादानात् = छायावितीर्णात्, क्षणपरिक्षत: = किञ्चित्कालसंस्तुतः, व्रज = गच्छ । स्वभावोक्तिरलङ्कारः । मन्दाक्रान्ता वृत्तम् ।। २७ ।।

आलोक

विश्रान्तः--वि + श्रम् + क्त । सन्—अस् + शतृ । वननदीतीरजातानि— वनेषु नद्यः वननद्यः (सप्तमी तत्पुरुष), तासां तीरानि (वननदीतीरानि (षष्ठी तत्पुरुष), तेषु जातानि (सप्तमी तत्पुरुष) । 'अटव्यरण्यं विपिनं गहनं काननं वनम्'—अमरकोश । नदी— नदति इति 'णद अव्यक्ते शब्दे' धातु से अच् प्रत्यय टित्वाद् ङीष् । 'अथ नदी सरित् । तरङ्गिणी शैवलिनी तटनी ह्रदिनी धुनी'—अमरकोश । सिञ्चन्— सिञ्च् + शतृ । नवजलकणैः— नवानि जलानि नवजलानि (कर्मधारय), नवजलानां कणैः नवजलकणैः (षष्ठी तत्पुरुष) । 'सिललं कमलं जलम्'—अमरकोश । यूथिकाजालकानि—यूथिकानां जालकानि

(षष्ठी तत्पुरुष) । 'अथ मागधी । गणिका यूथिका'—अमरकोश । गण्डस्वेदापनयनरुजाक्लान्तकर्णोत्पलानाम्— गण्डयोः स्वेद गण्डस्वेदः (षष्ठी तत्पुरुष), गण्डस्वेदस्य अपनयनं गण्डस्वेदापनयनम् (षष्ठी तत्पुरुष), गण्डस्वेदापनयनेन रुजा गण्डस्वेदापनयनरुजा (तृतीया तत्पुरुष), तया क्लान्तानि (तृतीया-तत्पुरुष), गण्डस्वेदापनयनरुजाक्लान्तानि कर्णोत्पलानि येषां तानि, तेषाम् बहुव्रीहि । यह पुष्पलावीमुखनाम् का विशेषण है । गण्डः—गण्डति इति इस अर्थ में 'गडि वदनैकदेशे' धातु से अच् प्रत्यय होकर गण्डः शब्द बनता है । 'गण्डः स्यात् पुंसि खड्गिनि । ग्रहयोगप्रभेदे च वीथ्यङ्गे पिटकेऽपि च । चिह्न-वीरकपोलेषु हयभूषण बुद्बुदे'—मेदिनीकोश । स्वेदः-- स्विद्+घञ् । अपनयनम्--अप+नी+ल्युट् । रुजा-- रुज्+अङ्+टाप् । क्लान्त--क्लम्+क्त । उत्पलम्-- उत्पलति इस अर्थ में उत् उपसर्ग पूर्वक 'पल गतौ' धातु से अच् प्रत्यय । 'स्यादुत्पलं कुवलयम्'—अमरकोश । कर्णोत्पल—इस पद से कानों में आभूषण के रूप में पहने जाने वाले कमल यह अर्थ प्रकट होता है । पुष्पलावीमुखानाम्— पुष्पलावीनां मुखानि पुष्पलावीमुखानि (षष्ठी-तत्पुरुष), तेषाम् । पुष्पलावी—पुष्पाणि लुनन्तीति पुष्पलाव्यः—पुष्प+लू+अण् +ङीप् । यहाँ 'कर्मण्यण्' इस सूत्र से अण् प्रत्यय का विधान हुआ है । छायादानात्— छायायाः दानं छायादानम्, तस्मात् (षष्ठी तत्पुरुष) यहाँ हेतु के अर्थ में पञ्चमी हुई है। 'छाया सूर्यप्रिया कान्तिः प्रतिबिम्बमनातपः'—अमरकोश । क्षणपरिचितः— क्षणं परिचितः क्षणपरिचितः यहाँ 'अत्यन्तसंयोगे च' इस नियम से द्वितीया तत्पुरुष समास हुआ है। परिचितः— परि+चि +क्त । व्रज—व्रज् धातु लोट् लकार म० पु० ए० व० । इस श्लोक में फूलों को चुनने वाली सुन्दरियों को छाया प्रदान के कारण क्षण भर के लिए परि-चित होने से मेघ की कामुकता की ओर सङ्केत किया गया है । मेघ की कामुक रूप से व्यञ्जना किये जाने पर छाया का अर्थ कान्तिपरक हो जाता है । मेघ पुष्प चुनने वाली स्त्रियों के मुखों को छाया देने के कारण, उनके आतप को दूर करने के कारण उनका परिचित होता हुआ प्रिय हो जाता है । इस प्रसङ्ग

से यह ध्वनित हो जाता है कि जिस प्रकार मेघ से उन स्त्रियों को छाया की प्राप्ति होती है उसी प्रकार कामुक के दर्शन से कामिनियों के मुखकमल प्रफुल्लित हो उठते हैं अतएव छाया पद श्लिष्टता का द्योतक है। 'गण्डस्वेदापनयन—' इत्यादि पद के द्वारा स्वाभाविकता की प्रतीति होने से स्वभावोक्ति अलङ्कार की स्थिति है। मेघ के द्वारा की गई छाया के द्वारा शीतलता को प्राप्त कर पुष्पलावी ललनायें आह्लाद तथा हर्ष की अनुभूति करती हैं अतः प्रहर्षण अलङ्कार की भी व्यञ्जना हो रही है। कामुक के दर्शन से कामिनी के मुख-कमल के विकास से हर्ष नामक व्यभिचारी भाव की भी व्यञ्जना है। हर्ष का लक्षण—'हर्षस्त्विष्टावाप्तेर्मनः प्रसादोऽश्रुगद्गदादिकरः'। प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति तथा मन्दाक्रान्ता छन्द है ।। २७ ।।

प्रसङ्ग— यक्ष कहता है कि हे मेघ ! उत्तर दिशा की ओर प्रस्थान करने वाले आपका मार्ग कुछ चक्करदार अवश्य हो जाएगा परन्तु ऐसी स्थिति में भी उज्जयिनी नगरी की अट्टालिकाओं के परिचय से वञ्चित न होना क्योंकि यदि तुमने वहाँ की सुन्दरी ललनाओं के चञ्चला के चाकचक्य से चकित एवं चञ्चल कोवों वाले नयनों से रमण न किया तो अपना जीवन व्यर्थ ही समझो अतः आपको उज्जयिनी होकर जाना आवश्यक है—

वक्रः पन्था यदपि भवतः प्रस्थितस्योत्तराशां
सौधोत्सङ्गप्रणयविमुखो मा स्म भूरुज्जयिन्याः ।
विद्युद्दामस्फुरितचकितैस्तत्र पौराङ्गनानां
लोलापाङ्गैर्यदि न रमसे लोचनैर्वञ्चितोऽसि ।।२८।।

पदच्छेद— वक्रः पन्था यदपि भवतः प्रस्थितस्य उत्तराशां सौधोत्सङ्गप्रणय-विमुखः मा स्म भूः उज्जयिन्याः। विद्युद्दामस्फुरिते चकितैः तत्र पौराङ्गनानां लोलापाङ्गैः यदि न रमसे लोचनैः वञ्चितः असि ।। २८ ।।

अन्वय— उत्तराशां प्रस्थितस्य भवतः पन्थाः यदपि वक्रः (तथापि) उज्जयिन्याः सौधोत्सङ्गप्रणयविमुखः मा स्म भूः। तत्र विद्युद्दामस्फुरितचकितैः लोलापाङ्गैः पौराङ्गनानां लोचनैः यदि न रमसे (तर्हि) वञ्चितः असि ।। २८ ।।

शब्दार्थ— उत्तराशाम्= उत्तर दिशा में, प्रस्थितस्य= प्रस्थान करने वाले, भवतः= आपका, पन्थाः= मार्ग, यदपि= यद्यपि, वक्रः=टेढ़ा होगा, (तथापि) उज्जयिन्याः= उज्जयिनी के, सौधोत्सङ्गप्रणयविमुखः= प्रासादों के उर्ध्वभागों का परिचय प्राप्त करने में विमुख, मा स्म भूः= मत होना, तत्र= वहाँ, विद्युद्दामस्फुरितचकितैः= विजली के चमकने से चकित, लोलापाङ्गैः= चञ्चल कटाक्षों वाले, पौराङ्गनानाम्= पौरसुन्दरियों के, लोचनैः= नयनों से, यदि न रमसे= यदि रमण नहीं करोगे, (तर्हि= तो), वञ्चितः असि = वञ्चित हो जाओगे ॥ २८ ॥

हिन्दी अनुवाद— उत्तर दिशा में (अलकापुरी के लिए) प्रस्थान करने वाले आपका मार्ग यद्यपि टेढ़ा होगा तथापि उज्जयिनी के प्रासादों (राजमहलों) के ऊर्ध्वभागों का परिचय करने में पराङ्मुख मत होना। वहाँ (उज्जयिनी में) विजली की चमक से चकित चञ्चल कटाक्षों वाले पौरसुन्दरियों के नयनों से यदि रमण नहीं करोगे तो (तुम) वञ्चित हो जाओगे ॥ २८ ॥

संस्कृत व्याख्या— उत्तराशां= उदीचीं दिशम्, प्रस्थितस्य=कृत - प्रस्थानस्य, भवतः= तव जलदस्य, पन्थाः= मार्गः, यदपि= यद्यपि, वक्रः कुटिलः (तथापि), उज्जयिन्याः= विशालायाः, सौधोत्सङ्गप्रणयविमुखः= धवलप्रासादोत्सङ्गपरिचयपराङ्मुखः, मा स्म भूः= न भव, तत्र= उज्जयिन्याम्, विद्युद्दामस्फुरितचकितैः= चपलालतास्फुरणचाकचक्यतां गतैः, लोलापाङ्गैः= चञ्चलकटाक्षैः, पौराङ्गनानां= पौरललनानाम्, लोचनैः= नयनैः, यदि= चेत्, न रमसे= नहि रमणं करोषि, (तर्हि) वञ्चितोऽसि= प्रतारितोऽसि। अनुप्रासोऽलङ्कारः। मन्दाक्रान्ता वृत्तम् ॥ २८ ॥

आलोक

प्रस्थितस्य— प्र+स्था+क्त (षष्ठी एकवचन)। **उत्तराशाम्**—उत्तरा चासौ आशा उत्तराशा, ताम् (कर्मधारय)। 'दिशस्तु ककुभः काष्ठा आशाश्च हरितश्च ताः'— अमरकोश। यहाँ 'अकर्मकधातुभिर्योगे देशः कालो भावो गन्तव्योऽध्वा च कर्मसंज्ञक इति वाच्यम्' से कर्मसंज्ञा होकर द्वितीया हुई है।

वक्र: पन्था:-- मेघ अलकापुरी जाने के लिएउत्तर दिशा की ओर प्रस्थान कर रहा है। उत्तर दिशा की सीध पर उज्जयिनी नामक नगरी नहीं है। विन्ध्याचल की ओर बहने वाली निर्विन्ध्या नामक नदी के पूर्व की ओर कुछ दूर पर उज्जयिनी नामक नगरी है। उत्तरापथ निर्विन्ध्या के पश्चिम में है अतएव अलकापुरी की ओर जाने वाले मेघ के लिए उज्जयिनी होकर जाने में मार्ग टेढ़ा पड़ जाता है फिर भी यक्ष मेघ से उज्जयिनी होकर जाने के लिए कहता है। मार्ग में कुछ चक्कर से पड़ने वाली उज्जयिनी नामक नगरी से दूर रहते हुए मेघ की यात्रा यक्ष को इष्ट नहीं है क्योंकि इतनी सुन्दर नगरी का दर्शन न करना वस्तुत: वञ्चित ही होना है। सौधोत्सङ्गप्रणयविमुख:-सौधानाम् उत्सङ्गा: (षष्ठी तत्पुरुष), सौधोत्सङ्गेषु प्रणय: सौधोत्सङ्गप्रणय:, सौधोत्सङ्ग प्रणये विमुख: सौधोत्सङ्गप्रणयविमुख: (सप्तमी तत्पुरुष)। अथवा सौधानाम् उत्सङ्गेषु प्रणयस्य विमुख: (षष्ठी तत्पुरुष)। सौधा:-- सुधा अस्ति येषां ते सौधा:-- यहाँ 'ज्योत्स्नादिभ्य उपसंख्यानम्' से अण् प्रत्यय। राजभवन को सौध कहते हैं 'सौधोऽस्त्री राजसदनम्'-- अमरकोश। प्रणय:-- प्र+नी+अच्। प्रणय शब्द का प्रयोग यहाँ परिचय के अर्थ में हुआ है-- 'प्रणय: स्यात् परिचये याच्ञा सौहृदेऽपि च'-- यादवकोश। मा स्म भू:--यहाँ 'न माङ्योगे' इस सूत्र से अडागम का निषेध हुआ है। उज्जयिन्या:-- उत्कृष्ट: जय: उज्जय:, उज्जय: अस्ति यस्यां सा इस अर्थ में उज्जय शब्द से इनि प्रत्यय तथा ङीप् होकर उज्जयिनी शब्द बनता है। 'विशालोज्जयिनी समा'-- उत्पलकोश। उज्जयिनी मालवदेश की सुप्रसिद्ध राजधानी थी सम्प्रति यह उज्जैन के नाम से प्रसिद्ध है। यहाँ शिप्रा नदी तथा महाकाल का मन्दिर है। संस्कृत साहित्य में इसे अवन्ति देश की राजधानी बतलाया गया है। भारत के सुप्रसिद्ध महाराज वीर विक्रमादित्य की यह राजधानी रही है। उज्जयिनी को ही विशाला, अवन्ती और पुष्पकरण्डिनी के नामों से अभिहित किया गया है। मोक्षदेने वाली भारत की सात पुरियों में यह स्थान रखती है-- "अयोध्या मथुरा माया काशी कञ्ची ह्यवन्तिका। पुरी द्वारावती चैव सप्तैता मोक्षदायिका: ॥' विद्युद्दाम-

स्फुरितचकितैः——विद्युतः दामानि इव विद्युद्दामानि यहाँ 'उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याप्रयोगे' से समास हुआ है । विद्युद्दाम्नाँ स्फुरितानि विद्युद्दामस्फुरितानि (षष्ठी तत्पुरुष), तेभ्यः चकितानि विद्युद्दामस्फुरितचकितानि (पंचमी तत्पुरुष), तैः । विद्युत्—— विद्योतते इति——'द्युत दीप्तौ' धातु से क्विप् प्रत्यय होकर विद्युत् शब्द बनता है । "शंपा शतह्रदाह्रादिन्येरावत्यः क्षणप्रभा । तडि, सौदामिनी विद्युच्चञ्चला चपला अपि ।" चकितः—— चक्+क्त । पौराङ्गनानाम्——पौराणाम् अङ्गनाः पौराङ्गनाः, तासाम् (षष्ठी तत्पुरुष) । पौराः—— पुरि भवाः——पुर्+अण्। अङ्गना—अङ्ग+न+टाप् । लोलापाङ्गैः— लोलाः अपाङ्गाः येषां तानि, तैः (बहुव्रीहि) । यह लोचनैः का विशेषण है । रमसे—— रम् धातु लट्लकार म० पु० ए० व० । लोचनैः—— लोच्+ल्युट् । यहाँ 'साधकतमं करणम्' से करण संज्ञा तथा'कर्तृकरणयोस्तृतीया' से तृतीया विभक्ति हुई है । वञ्चितः—— वञ्च्+णिच्+क्त । कवि ने इस श्लोक के माध्यम से उज्जयिनी की तथा वहाँ की ललनाओं की सुन्दरता, सरलता भावुकता एवं रसिकता का सुन्दर चित्र उपस्थित किया है । इससे वहाँ की सम्पत्तिशालिता एवं गुणोत्कर्षता का भी अनुमान किया जा सकता है । कवि मेघ को रसिक नायक के रूप में प्रस्तुत करता है जिसे वह उज्जयिनी की ललनाओं के चञ्चल नेत्रों से रमण करने का परामर्श देता है । लोचनैः के विशेषणों के साभिप्राय होने से परिकर अलङ्कार है । लक्षण— 'उक्तिर्विशेषणैः साभिप्रायैः परिकरो मतः' । 'यदि न रमसे तर्हिवञ्चितोऽसि' के द्वारा उदात्त अलङ्कार की भी व्यञ्जना हो रही है । अनुप्रास की छटा तो छिटक ही रही है । युवतियों की विलासशीलाओं का चित्रण निम्नलिखित श्लोक में देखें—— "लीलास्मितेन शुचिना मृदुनोदितेन व्यालोकितेन लघुना गुरुणा गतेन । व्याजृम्भितेन जघनेन च दर्शितेन सा हन्ति तेन गलितं मम जीवितेन" ।। प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति तथा मन्दाक्रान्ता छन्द है ।। २८ ।।

प्रसङ्ग—— यक्ष कहता है कि हे मेघ ! मार्ग में सर्वतोभावेन प्रेम भाव को प्रकट करने वाली निर्विन्ध्या नामक नदी से मिलकर अवश्य ही प्रीतिरस

का आस्वादन करना क्योंकि स्त्रीजनों का अपने प्रियजनों के प्रति हावभाव ही प्रारम्भिक प्रार्थना वाक्य होता है।

वीचि — क्षोभस्तनितविहगश्रेणिकाञ्चीगुणायाः
संसर्पन्त्याः स्खलितसुभगं दर्शितावर्तनाभेः।
निर्विन्ध्यायाः पथि भव रसाभ्यन्तरः सन्निपत्य
स्त्रीणामाद्यं प्रणयवचनं विभ्रमोहि प्रियेषु ॥ २९ ॥

पदच्छेद— वीचिक्षोभस्तनितविहगश्रेणिकाञ्चीगुणायाः संसर्पन्त्याः स्खलित-सुभगं दर्शितावर्तनाभेः। निर्विन्ध्यायाः पथि भव रसाभ्यन्तरः सन्निपत्य स्त्रीणाम् आद्यं प्रणयवचनं विभ्रमः हि प्रियेषु ॥ २९ ॥

अन्वय— पथि वीचिक्षोभस्तनितविहगश्रेणिकाञ्चीगुणायाः स्खलितसुभगं संसर्पन्त्याः दर्शितावर्तनाभेः निर्विन्ध्यायाः सन्निपत्य रसाभ्यन्तरः भव हि स्त्रीणां प्रियेषु विभ्रमः आद्यं प्रणायवचनम् ॥ २९ ॥

शब्दार्थ—पथि=मार्ग में, वीचिक्षोभस्तनितविहगश्रेणिकाञ्चीगुणायाः= तरङ्गों के हिलोर से वाचाल पक्षियों की पंक्तिरूपी करधनी की लड़ वाली, स्खलितसुभगम्=लड़खड़ाने के कारण सुन्दर रूप में, संसर्पन्त्याः=बहने वाली, दर्शितावर्तनाभेः=भँवर रूपी नाभि को दिखलाने वाली, निर्विन्ध्यायाः=निर्वि-न्ध्या नामक नदी के, सन्निपत्य=पास में जाकर, रसाभ्यन्तरः भव=उसके रस से युक्त हो जाना, हि=क्योंकि, स्त्रीणाम्=स्त्रियों का, प्रियेषु=अपने प्रणयीजनों के प्रति, विभ्रमः=विलासः, आद्यम्=प्रथम 'प्रणयवचनम्= प्रणयवाक्य (प्रार्थना वचन) होता है ॥२९॥

हिन्दी अनुवाद—मार्ग में तरङ्गों की हिलोर से शब्द करने वाले पक्षियों की पंक्ति रूपी करधनी की लड़ वाली, लड़खड़ाने के कारण सुन्दर रूप से बहती हुई तथा भँवररूपी नाभि को दिखलाने वाली निर्विन्ध्या नामक नदी से मिलकर उसके रस (जल अथवा शृंगार) को ग्रहण करने में अन्तरङ्ग बनना क्योंकि स्त्रियों की प्रणयीजनों में शृङ्गार चेष्टा (हाव भाव) प्रथम प्रणयवाक्य होता है ॥२९॥

संस्कृत व्याख्या–पथि = मार्गे, वीचिक्षोभस्तनितविहगश्रेणिकाञ्चीगुणायाः = तरङ्गसञ्चलनमुखरद्विजपंक्तिरूपमेखलागुणयुक्तायाः, स्खलितसुभगं = स्खलनमनोहरम्, संसर्पन्त्याः = प्रवहन्त्याः, दर्शितावर्तनाभेः = प्रकटितसलिलभ्रमनाभेः, निर्विन्ध्यायाः = एतदाख्यायाः, सन्निपत्य = संगत्य, रसाभ्यन्तरः = अन्तःस्थितजलः, भव = एधि, हि = यतः, स्त्रीणां = कामिनीनाम्, प्रियेषु = दयितेषु, विभ्रमः = विलासः, आद्यं = प्रथमम्, प्रणयवचनं = प्रार्थनावाक्यम् । रूपकालङ्कारः । मन्दाक्रान्ता वृत्तम् ॥२९॥

आलोक

वीचिक्षोभस्तनितविहगश्रेणिकाञ्चीगुणायाः = वीचीनां क्षोभः वीचिक्षोभः (षष्ठी तत्पुरुष), तेन स्तनिताः (तृतीया तत्पुरुष), ते च ते विहगाः वीचिक्षोभस्तनितविहगाः (कर्मधारय), तेषां श्रेणिरेव काञ्चीगुणः यस्याः सा, तस्याः (बहुव्रीहि) । क्षोभः – क्षुभ् + घञ् । विहगः–विहायसि गच्छतीति–विहायस + खच् विकल्प से डिद्वद् भाव तथा विहायस् को विहादेश । "खगे विहंगविहगविहंगमविहायसः । शकुन्तिपक्षिशकुनिशकुन्तशकुनद्विजाः ॥" काञ्चीगुणः–काञ्च्याः गुणः (षष्ठी तत्पुरुष) । संसर्पन्त्याः–सम् + सृप् + शतृ + ङीप् (षष्ठी एकवचन) । स्खलितसुभगम्–स्खलितेन सुभगम् (तृतीया तत्पुरुष) । दर्शितावर्तनाभेः–दर्शितः आवर्तनाभिः यया, तस्याः । दर्शित–दृश् + णिच् + क्त । आवर्तनाभिः–आवर्तः एव नाभिः (मयूरव्यंसकादिसमास) । 'स्यादावर्तोऽम्भसां भ्रमः'–अमरकोश । निर्विन्ध्यायाः = विन्ध्यात् निष्क्रान्ता निर्विन्ध्या, तस्याः । यहां 'निरादयः क्रान्ताद्यर्थे पञ्चम्याः' से समास हुआ है । निर्विन्ध्या नदी मालव देश की प्रसिद्ध नदी है । यह विन्ध्य पर्वत से निकली हुई है । रसाभ्यन्तरः रसः अभ्यन्तरे यस्य सः (बहुव्रीहि) । ऐसा समास निर्विन्ध्या नामक नदी के पक्ष में होगा । नायिका के पक्ष में रसेन = श्रृङ्गारेण अभ्यन्तरः (तृतीया तत्पुरुष) । रस शब्द का अर्थ निर्विन्ध्या के पक्ष में रस का अर्थ जल होगा तथा नायिका के पक्ष में श्रृङ्गार । 'श्रृङ्गारादौ विषे वीर्ये गुणे रागे द्रवे रसः'–अमरकोश । सन्निपत्य–सम् + नि + पत् + क्त्वा → ल्यप् । आद्यम्–आदौ भवम् इस अर्थ में 'दिगादिभ्यो यत्'से यत् प्रत्यय । आदि + यत् =

आद्य। प्रणयवचनम्—प्रणयस्य वचनं प्रणयवचनम् (षष्ठी तत्पुरुष)। विभ्रमः– यह साहित्यिक शब्द है। विभ्रम की मीमांसा साहित्यदर्पण में इस प्रकार की गई है – त्वरया हर्षरागादेर्दयितागमनादिषु। अस्थाने विभ्रमादीनां विन्यासो विभ्रमो मतः॥" प्रियेषु–प्रीणन्ति इति प्रियाः, तेषु। प्री+क। इस श्लोक में मेघ और निर्विन्ध्या को नायक-नायिका के रूप में प्रस्तुत किया गया है। जिस प्रकार निर्विन्ध्या लहरों के लगने से वाचाल हंस आदि पक्षियों की पंक्ति से प्रस्तरखण्डों पर लड़खड़ा कर टेढ़े मेढ़े मार्ग से, बहते हुये प्रवाह से तथा भँवरों के प्रदर्शन से नायक के प्रति अपने प्रणय व्यापार को (प्रेम व्यवहार को) निवेदित कर रही है और मेघ उसके पास पहुँच कर रस से परिपूर्ण मध्य-भाग वाला हो गया है उसी प्रकार नायिका भी करधनी के क्वणन से, मतवाली चाल से और नाभि प्रदर्शन के द्वारा नायक के प्रति अपने प्रेम को प्रकट करती है और नायक उसके समीप पहुँच कर शृङ्गारयुक्त हृदय वाला हो जाता है। इस प्रकार इस समासोक्ति के द्वारा कवि ने नायक नायिका के सरल विलासों की अभिव्यंञ्जना प्रस्तुत की है। यहां विहगश्रेणी में काञ्चीगुण का और आवर्त में नाभि का आरोप शाब्द है परन्तु निर्विन्ध्या में नायिका का आरोप आर्थ होने से एकदेश विवर्तिसाङ्गरूपक अलङ्कार है। रूपक का लक्षण 'तद्रूपकमभेदो य उपमानोपमेययोः'। रस शब्द में श्लेष की स्थिति है। श्लेष का लक्षण– 'श्लिष्टैः पदैरनेकार्थाभिधाने श्लेष इष्यते'। श्लोक के चतुर्थ चरण के द्वारा तीन चरणों का समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है। प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति तथा मन्दाक्रान्ता छन्द है॥२९॥

प्रसङ्ग–यक्ष कहता है कि हे मेघ! निर्विन्ध्या को पार करने के बाद तुम्हारे वियोग में नायिका की तरह अत्यन्त ही कृश दिखलाई देने वाली स्वल्प जल से युक्त तथा तटवर्ती पत्तों से पीले वर्ण वाली सिन्धु नामक नदी जिस प्रकार से दुर्बलता का परित्याग करे तुम्हें वह उपाय अवश्य ही करना चाहिए–

वेणीभूतप्रतनुसलिलासावतीतस्य सिन्धुः
पाण्डुच्छाया तटरुहतरुभ्रंशिभिर्जीर्णपर्णैः ।
सौभाग्यं ते सुभग विरहावस्थया व्यञ्जयन्ती
कार्श्यं येन त्यजति विधिना स त्वयैवोपपाद्यः ।३०।।

पदच्छेद--वेणीभूतप्रतनुसलिला असौ अतीतस्य सिन्धुः । पाण्डुच्छाया तटरुहतरुभ्रंशिभिः जीर्णपर्णैः । सौभाग्यं ते सुभग विरहावस्थया व्यञ्जयन्ती कार्श्यं येन त्यजति विधिना स त्वया एव उपपाद्यः ।।३०।।

अन्वय–सुभग वेणीभूतप्रतनुसलिला तटरुहतरुभ्रंशिभिः जीर्णपर्णैः पाण्डुच्छाया अतीतस्य ते सौभाग्यं विरहावस्थया व्यञ्जयन्ती असौ सिन्धुः येन विधिना कार्श्यं त्यजति स त्वया एव उपपाद्यः ।।३०।।

शब्दार्थ–सुभग–हे सौभाग्यशालिन् (मेघ), वेणीभूतप्रतनुसलिला=वेणी के समान बने हुये थोड़े जल वाली, तटरुहतरुभ्रंशिभिः=तट पर उगे हुये वृक्षों से गिरने वाले, जीर्णपर्णैः=सूखे हुये पत्तों से, पाण्डुच्छाया=पीली वर्ण वाली, अतीतस्य=गये हुये, ते=तुम्हारे, सौभाग्यम्=सौभाग्य को, विरहावस्थया=विरहावस्था के द्वारा, व्यञ्जयन्ती=प्रकाशित करने वाली, असौ=यह, सिन्धुः=नदी, येन=जिस, विधिना=विधि से, कार्श्यम्=कृशता को, त्यजति=छोड़ सके, सः=उस विधि को, त्वया एव=तुम्हें ही, उपपाद्य=करना चाहिये ।।३०।।

हिन्दी अनुवाद--हे सौभाग्यशालिन् ! (मेघ !) वेणी के समान बने हुये थोड़े जलवाली तट पर उगे हुये वृक्षों से गिरने वाले सूखे हुये पत्तों से पीत वर्ण वाली (चिरकाल से) गये हुये तुम्हारे सौभाग्य को (अपनी) वियोगावस्था के द्वारा प्रकट करने वाली वह (निर्विन्ध्या) नदी जिस उपाय से दुर्बलता का परित्याग करे वह तुम्हें अवश्य ही करना चाहिये ।।३०।।

संस्कृत व्याख्या–सुभग=सौभाग्यशालिन्, वेणीभूतप्रतनुसलिला=वेण्याकारस्वल्पनीरा, तटरुहतरुभ्रंशिभिः=तीरोत्पन्नवृक्षपतितैः, जीर्णपर्णैः=शुष्कपत्रैः, पाण्डुच्छाया=पीतवर्णा, अतीतस्य=प्रोषितस्य, ते=तव, सौभाग्यं=

सुभगताम, विरहावस्थया=वियोगदशया, व्यञ्जयन्ती=प्रकाशयन्ती, असौ=एषा, सिन्धुः=नदी, येन=यादृशेन, विधिना=उपायेन, कार्श्यं=दुर्बलताम्, त्यजति=जहाति, स=विधिः, त्वया=भवता, एव=हि, उपपाद्यः=करणीयः। समासोक्तिरलङ्कारः। मन्दाक्रान्ता वृत्तम् ॥३०॥

आलोक

वेणीभूतप्रतनुसलिला-वेणीभूतं प्रतनु सलिलं यस्याः सा (बहुव्रीहि)। वेणीभूतम्-अवेणी वेणी यथा सम्पद्यते तथाभूतम्। वेणी+च्वि+भू+क्त। यहाँ 'कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्तरि च्विः' इस सूत्र से च्वि प्रत्यय हुआ है। अतीतस्य-अति+इण्+क्त (षष्ठी एकवचन)। सिन्धुः-स्यन्दते इति 'स्यन्दू प्रस्रवणे' धातु से 'स्यन्देः सम्प्रसारणं धश्च' इस सूत्र से 'उ' प्रत्यय सम्प्रसारण तथा दकार को धकार होकर सिन्धुः शब्द बनता है। 'देशे नदविशेषेऽब्धौ सिन्धुर्ना सरिति स्त्रियाम्'—अमरकोश। यहाँ प्रयुक्त सिन्धु शब्द के विषय में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। कुछ विद्वान् 'वेणीभूतप्रतनुसलिला तामतीतस्य' ऐसा पाठ मानकर ताम् पद का अर्थ निर्विन्ध्या को, अतीतस्य का अर्थ पार किये हुये, ते का अर्थ तुम्हारा और इस प्रकार सिन्धु पद का अर्थ मालव देश में बहने वाली काला सिन्धु नाम की नदी करते हैं। महामहोपाध्याय मल्लिनाथ सिन्धु पद से सामान्य नदी निर्विन्ध्या का ग्रहण करते हैं, अतएव वे लिखते हैं--असौ पूर्वोक्ता सिन्धुर्नदी निर्विन्ध्या। 'स्त्री नद्यां ना नदे सिन्धुर्देशभेदेऽम्बुधौ गजे' इति वैजयन्ती'। पाण्डुच्छाया—पाण्डुः छाया यस्याः सा (बहुव्रीहि)। 'छाया सूर्यप्रिया कान्तिः प्रतिबिम्बमनातपः'—अमरकोश। तटरुहतरुभ्रंशिभिः—तटयोः रुहाः (सप्तमी तत्पुरुष) तटरुहाः, तटरुहाश्च ते तरवः तटरुहतरवः (कर्मधारय), तटरुहतरुभ्यः भ्रश्यन्तीति तच्छीलानि तटरुहतरुभ्रंशीनि, तैः तटरुहतरु+भ्रंश्+णिनि। रुहः—रोहन्ति इति—रुह्+क=रुहः। यहाँ 'इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः' इस सूत्र से 'क' प्रत्यय हुआ है। तरुः—तरन्ति तरन्ति अनेन इति वा इस अर्थ में 'तॄ प्लवनसन्तरणयोः' धातु से 'भृमृशीङ्'—इत्यादि सूत्र से 'उ' प्रत्यय हुआ है। "वृक्षो महीरुहः शाखी विटपी पादपस्तरुः। अनोकहः कुटः सालः पलाशी द्रुद्रुमागमाः॥"

जीर्णपर्णैः—जीर्णानि च तानि पर्णानि जीर्णपर्णानि (कर्मधारय), तैः । जीर्ण— जॄ + क्त । यहाँ 'गत्यार्थाकर्मकश्लिषशीङ्स्थाऽऽसवसजनरुहजीर्यतिभ्यश्च' इस सूत्र से क्त प्रत्यय हुआ है । सौभाग्यम्—शोभनं भगं यस्य सः सुभगः (बहुव्रीहि) सुभगस्य भावः कर्म वा—सुभग + ष्यञ । सुभग शोभनं भगं यस्य सः, तत्सम्बुद्धौ । विरहावस्थया—विरहस्य अवस्था विरहावस्था (षष्ठी तत्पुरुष), तया । व्यञ्जयन्ती—वि + अञ्ज् + णिच् + शतृ + ङीप् । कार्श्यम्—कृशस्य भावः कृश + ष्यञ् । त्यजति—त्यज् धातु लट्लकार प्र०पु०ए०व० । विधिना— वि + धा + कि । उपपाद्यः—उप + पद् + णिच् + ण्यत् । इस श्लोक में निर्विन्ध्या अथवा सिन्धु नामक नदी की काम अवस्था का वर्णन किया गया है जैसा कि रति रहस्य में प्रतिपादित किया गया है—"नयनप्रीतिः प्रथमं चित्ताऽऽसङ्गस्ततोऽथ सङ्कल्पः । निद्राच्छेदस्तनुता विषयनिवृत्तिस्त्रपानाशः ।। उन्मादो मूर्च्छा मृतिरित्येताः स्मरदशा दशैव स्युः ।" कविराज विश्वनाथ ने निम्नलिखित प्रकार से कामदशा के भेदों की मीमांसा की है—'अभिलाषश्चिन्ता-स्मृतिगुणकथनोद्वेगसंप्रलापाश्च । उन्मादोऽथ व्याधिर्जडता मृतिरिति दशात्र कामदशाः ।। अभिलाषः स्पृहा, चिन्ता प्राप्त्युपायादिचिन्तनम् । उन्मादश्चापरिच्छेदश्चेतनाचेतनेष्वपि ।। अलक्ष्यवाक्यप्रलापः स्याच्चेतसो भ्रमणाद् भृशम् । व्याधिस्तु दीर्घनिःश्वासपाण्डुताकृशतादयः ।। जडता हीनचेष्टत्वमङ्गानां मनसस्तथा ।" इस प्रकार कविराज विश्वनाथ के अनुसार कृशता तथा पाण्डुता होने के कारण यहाँ व्याधि नामक कामदशा की स्थिति है । कवि ने इस श्लोक में नदी रूपी नायिका की विरह-अवस्था का सुन्दर चित्र खींचा है । विरहिणी नायिका एक चोटी को धारण करती है, यह नदी भी वेणी के समान थोड़े जल को धारण किये हुये है । नायिका पीली पड़ जाती है, यह नदी भी किनारे पर स्थित वृक्षों से गिरने वाले पत्तों से पीतवर्ण की हो गई है । जिस प्रकार नायक के समागम से नायिका अपनी दुर्बलता का परित्याग करती है उसी प्रकार यह नदी भी मेघ रूपी नायक के मिलन से कृशता का परित्याग करेगी यहाँ विप्रलम्भ शृङ्गार की व्यञ्जना की गई है जो कि मेघ के द्वारा सम्भोग के रूप में परिवर्तित होगी । यहाँ निर्विन्ध्या में नायिका और मेघ में नायक

के व्यवहार के समारोपित किये जाने के कारण समासोक्ति अलङ्कार है। प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति तथा मन्द्राक्रान्ता छन्द है ॥३०॥

प्रसङ्ग–यक्ष कहता है कि हे मेघ! इसके अनन्तर तुम अवन्ती नामक जनपद में पहुँचोगे जहाँ के वृद्धजन राजा उदयन और महारानी वासवदत्ता की प्रेमकथाओं में प्रवीण हैं। इस अवन्ती की राजधानी उज्जयिनी है जो कि अत्यन्त सम्पन्न एवं सर्वतोभावेन परिपूर्ण है जिससे कि ऐसा प्रतीत होता है कि पुण्यफल के कम हो जाने से पृथ्वी पर पहुँचे हुये स्वर्गवासियों के शेष पुण्यों के द्वारा लाये गये देदीप्यमान स्वर्ग के खण्ड को ही उज्जयिनी के रूप में स्थापित किया गया हो—

प्राप्यावन्तीनुदयनकथाकोविदग्रामवृद्धा—
न्पूर्वोद्दिष्टामनुसर पुरीं श्रीविशालां विशालाम्।
स्वल्पीभूते सुचरितफले स्वर्गिणां गां गतानां
शेषैः पुण्यैर्हृतमिव दिवः कान्तिमत्खण्डमेकम् ॥३१॥

पदच्छेद—प्राप्य अवन्तीन् उदयनकथाकोविदग्रामवृद्धान् पूर्वोद्दिष्टाम् अनुसर पुरीं श्रीविशालां विशालाम्। स्वल्पीभूते सुचरितफले स्वर्गिणा गां गतानां शेषैः पुण्यैः हृतम् इव दिवः कान्तिमत् खण्डम् एकम् ॥३१॥

अन्वय—उदयनकथाकोविदग्रामवृद्धान् अवन्तीन् प्राप्य सुचरितफले स्वल्पीभूते गां गतानां स्वर्गिणां शेषैः पुण्यैः हृतं कान्तिमत् एकं दिवः खण्डम् इव पूर्वोद्दिष्टां श्रीविशालां विशालां पुरीम् अनुसर ॥३१॥

शब्दार्थ—उदयनकथाकोविदग्रामवृद्धान्=जहाँ के ग्रामीण वृद्धजन उदयन की कथा के ज्ञाता हैं, अवन्तीन्=इस प्रकार के अवन्ति देश में, प्राप्य=पहुँचकर, सुचरितफले=पुण्यफल के, स्वल्पीभूते=क्षीण होने पर, गां=भूतल पर, गतानाम्=पहुँचे हुए, स्वर्गिणाम्=स्वर्गवासियों के, शेषैः=शेष, पुण्यैः=पुण्यों से, हृतम्=लाये गये, कान्तिमत्=समुज्ज्वल, एकम्—एक, दिवः=स्वर्ग के, खण्डमिव=टुकड़े के समान, पूर्वोद्दिष्टाम्=पूर्वोक्त, श्रीविशालाम्=सम्पत्तिशालिनी, विशालाम्=उज्जयिनी, पुरीम्=नगरी का,

अनुसर=अनुसरण करना ॥३१॥

हिन्दी अनुवाद—जहाँ के ग्रामीण वृद्धजन (राजा) उदयन की कथा के जानकार हैं ऐसे अवन्ति देश में पहुँचकर पुण्यफल के क्षीण हो जाने से पृथ्वी पर आये हुये स्वर्गवासियों के अवशिष्ट पुण्यों के द्वारा लाये गये समुज्ज्वल (देदीप्यमान) स्वर्ग के एक टुकड़े के समान पूर्वोक्त सम्पत्तिशालिनी उज्जयिनी (नामक) नगरी की ओर जाना (अर्थात् प्रस्थान करना) ॥३१॥

संस्कृत व्याख्या–उदयनकथाकोविदग्रामवृद्धान्=वत्सराजोपाख्यानपण्डित-ग्रामीणवृद्धजनान्, अवन्तीन्=मालवदेशान्, प्राप्य=आसाद्य, सुचरितफले=सुकृतफले, स्वल्पीभूते=स्वल्पावशिष्टे, गां=वसुन्धराम्, गतानां=प्राप्तानाम्, स्वर्गिणां=स्वर्गनिवासिनाम्, शेषैः=अवशिष्टैः पुण्यैः=सकृतैः, हृतं=आनी-तम्, कान्तिमत्=समुज्ज्वलम्, एकं=अन्यत्, दिवः=स्वर्गस्य, खण्डमिव=शकल-मिव, पूर्वोद्दिष्टां–पूर्वोक्ताम्, श्रीविशालां—प्रचुरसम्पत्तियुक्ताम्, विशालां=उज्जयिनीम्, पुरीं=नगरीम्, अनुसर=गच्छ। उत्प्रेक्षालङ्कारः। मन्द्राक्रान्ता वृत्तम् ॥३१॥

आलोक

प्राप्य—प्र+आप्+क्त्वा→ल्यप्। अवन्तीन्—अवन्तीनां निवासः जनपदः इस अर्थ में 'तस्य निवासः' इस सूत्र से अवन्ति शब्द से अण् प्रत्यय। 'जनपदे लुप्' से अण् का लोप तथा 'लुपि युक्तवद् व्यक्तिवचने' इस सूत्र से प्रकृति के अनुरूप लिङ्ग तथा वचन होता है। मालवदेश का एक भाग अवन्ती है जिस की राजधानी उज्जयिनी थी। उदयनकथाकोविदग्रामवृद्धान्—उदयनस्य कथा-उदयनकथा (षष्ठी तत्पुरुष), उदयनकथायां कोविदाः उदयनकथाकोविदाः (सप्तमी तत्पुरुष), उदयनकथाकोविदाः ग्रामवृद्धाः येषु, तान् (बहुव्रीहि)। कोविदः—कौति धमादिः कवते वा—'कुशब्दे' धातु से अथवा 'कुङ् शब्दे' धातु से विच् प्रत्यय तथा गुण। कोः वेदस्य विदः। वेत्ति 'इगुपधज्ञा'—से क प्रत्यय। "विद्वान्विपश्चिद्दोषज्ञः सन्सुधीः कोविदो बुधः। धीरो मनीषी ज्ञः प्राज्ञः संख्या-वान्पण्डितः कविः ॥"–अमरकोश। ग्रामवृद्धाः – ग्रामे वृद्धाः (सप्तमी तत्पु-

रुष) । वत्सराज उदयन की कथा प्रथमतः बृहत्कथा (पैशाची भाषा) में लिखी गई थी जो कि सम्प्रति उपलब्ध नहीं है। सम्प्रति महाराज उदयन की कथा बृहत्कथामञ्जरी, कथासरित्सागर, स्वप्नवासवदत्तम्, रत्नावली नाटिका आदि में मिलती है। इसमें राजा उदयन और वासवदत्ता की प्रेमकथा उपनिवद्ध है। 'उदयनकथा'–इत्यादि पद 'अवन्तीन्' का विशेषण है। इससे अवन्तिदेश की उत्कृष्टता का ज्ञान होता है। पूर्वोद्दिष्टाम्–पूर्वम् उद्दिष्टा पूर्वोद्दिष्टा, ताम् (सुप्सुपासमास)। उद्दिष्टा–उत् + दिश् + क्त + टाप्। किसी के नाममात्र के कथन को उद्देश या उद्दिष्ट कहते हैं, जैसा कि केशव मिश्र तर्कभाषा में लिखते हैं–'उद्देशस्तु नाममात्रेण वस्तुसंकीर्तनम्'। अनुसर–अनु + सृ + लोट् लकार म० पु० ए० व०। श्रीविशालाम्––श्रिया विशाला श्रीविशाला, ताम् (तृतीया तत्पुरुष)। श्रीः–श्रयति हरिं या सा श्रीः, श्रि + क्विप्। यहाँ श्री शब्द में सु का लोप नहीं होता है क्योंकि कहा गया है––"अवीतन्त्रीतरीलक्ष्मीधीह्रीश्रीणामुणादिषु। सप्त स्त्रीलिङ्ग–शब्दानां न सुलोपः कदाचन॥" श्री शब्द का प्रयोग यहाँ सम्पत्ति के अर्थ में हुआ है–'सम्पत्तिः श्रीश्च लक्ष्मीश्च'–अमरकोश। विशालाम्––विविधाः शालाः (भवनानि) यस्यां सा, तादृशी (बहुव्रीहि)। जिसमें बहुत सी शालायें अर्थात् भवन हैं, वह विशाला है। इस व्युत्पत्ति के आधार पर विशाला शब्द (उज्जयिनी) योगरूढ़ है। 'विशालोज्जयिनी समे'–अमरकोश। स्वल्पीभूते––अस्वल्पं स्वल्पं यथा सम्पद्यते तथाभूतं स्वल्पीभूतम्, स्वल्प + च्वि + भू + क्त। (सप्तमी एक वचन)। सुचरितफले––शोभनं चरितं सुचरितम्. सुचरितस्य फलं सुचरितफलम्, तस्मिन् (षष्ठी तत्पुरुष)। स्वर्गिणाम्–स्वर्गः अस्ति येषां ते स्वर्गिणः, तेषाम्। स्वर्ग + इनि। वर्ग–सुष्ठु अर्ज्यते इति स्वर्गः। सु + अर्ज् + घञ्। "स्वरव्ययं स्वर्ग–नाक–त्रिदिव–त्रिदशालयाः। सुरलोको द्योदिवौ द्वे स्त्रियां क्लीवे त्रिविष्टपम्॥" गाम– यहाँ गो शब्द पृथ्वी के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है जैसा कि कहा गया है––'गौरुला प्रिया इला मही'––निरुक्त तथा 'गौरिला कुम्भिनी क्षमा'–अमरकोश। गतानाम्–गम + क्त। (षष्ठी बहुवचन)। शेषैः–शिष् + घञ्। पुण्यैः–यहाँ करण के अर्थ में तृतीया हुई है। हृतम्–हृ + क्त।

कान्तिमत् — कान्ति + मतुप् । एकम् —'एके मुख्यान्यकेवला :'— अमर-कोश। प्रस्तुत श्लोक में श्रीविशाला विशाला का सर्वातिशायी सौन्दर्य चित्रित हुआ है। स्वर्ग के एक टुकड़े के समान कहने से उज्जयिनी की भूलोक स्थित समस्त नगरियों से श्रेष्ठता अभिव्यञ्जित होती है। 'दिवः खण्डमिव' में इव शब्द के द्वारा अप्रकृत स्वर्गखण्ड की सम्भावना करने के कारण उत्प्रेक्षा अलंकार है। 'श्रीविशालां विशालाम्' के द्वारा कवि ने यमक अलंकार के सहज रूप को प्रस्तुत किया है। यमक अलंकार का लक्षण —"सत्यर्थे पृथ-गर्थायाः स्वरव्यञ्जनसंहतेः। क्रमेण तेनैवावृत्तिर्यमकं विनिगद्यते ॥" यहाँ उत्प्रेक्षा तथा यमक अलंकारों की संसृष्टि है। प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति तथा मन्दा-क्रान्ता छन्द है ॥ ३१ ॥

प्रसङ्ग—यक्ष उज्जयिनी की उत्कृष्टता प्रतिपादित करता हुआ कहता है कि इस उज्जयिनी नाम की नगरी में शिप्रा नदी का प्रभातकालीन पवन अपना अपूर्व वैभव रखता है, जिसमें प्रमुख गुण इस प्रकार हैं—यह सारसों के अव्यक्त मधुर कूजन को बढ़ा देता है, विकसित सरसिजों की सुगन्ध से सम्पर्कित होने के कारण सुगन्धित हो जाता है, शरीर में स्पर्श होने पर अपूर्व आनन्द की अनुभूति कराता है तथा प्रियतमा के प्रसादन में संलग्न प्रियतम की तरह कामिनियों की सम्भोगजन्य श्रान्ति को दूर कर देता है —

दीर्घीकुर्वन् पटु मदकलं कूजितं सारसानां
प्रत्यूषेषु स्फुटितकमलामोदमैत्रीकषायः ।
यत्र स्त्रीणां हरति सुरतग्लानिमङ्गानुकूल :
शिप्रावात : प्रियतम इव प्रार्थनाचाटुकार : ॥ ३२॥

पदच्छेद—दीर्घीकुर्वन् पटु मदकलं कूजितं सारसानां प्रत्यूषेषु स्फुटित कमला-मोदमैत्रीकषाय : । यत्र स्त्रीणां हरति सुरतग्लानिम् अङ्गानुकूल : शिप्रावात : प्रियतम् इव प्रार्थनाचाटुकार : ॥ ३२ ॥

अन्वय—यत्र प्रत्यूषेषु पटु मदकलं सारसानां कूजितं स्फुटितकमलामोदमैत्री-कषाय : अङ्गानुकूल : शिप्रावात : प्रार्थनाचाटुकार : प्रियतम : इव स्त्रीणां

सुरतग्लानि हरति ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ—यत्र = जहाँ (जिस उज्जयिनी में), प्रत्यूषेषु = प्रातः काल में, पटु =तीव्र, मदकलम् = मद के कारण अव्यक्त, सारसानाम् = सारसों के, कूजितम् = शब्द को, दीर्घीकुर्वन् = बढ़ाता हुआ, स्फुटितकमलामोदमैत्री-कषायः = खिले हुए कमलों की सुगन्ध के सम्पर्क से सुगन्धित, अङ्गानुकूलः = अङ्गों के लिए अनुकूल, शिप्रावातः = शिप्रा नदी का वायु, प्रार्थना-चाटुकारः = (रमण की) प्रार्थना करने में चापलूस, प्रियतमः इव = प्रियतम के समान, स्त्रीणाम् = स्त्रियों की, सुरतग्लानिम् = सम्भोगजन्य परिश्रम को, हरति = दूर करता है ॥ ३२ ॥

हिन्दी अनुवाद—जहाँ (जिस उज्जयिनी में) प्रातः काल में तीव्र तथा मद के कारण अव्यक्त सारसों के कूजन को अधिक बढ़ाता हुआ, खिले हुए कमलों की सुगन्ध के सम्पर्क से सुगन्धित अंगों के लिए अनुकूल (अर्थात् अंगों को सुख देने वाला) शिप्रा नदी का वायु (रमण की) प्रार्थना करने में चाटुकार (चापलूस) प्रियतम के समान स्त्रियों की सम्भोग से होने वाले परिश्रम को दूर करता है ॥ ३२ ॥

संस्कृत व्याख्या—यत्र = यस्याम् उज्जयिन्याम् प्रत्यूषेषु = प्रातःकालेषु, पटु = प्रस्फुटम्, मदकलं = अव्यक्तमधुरम्, सारसानाम् = पक्षिविशेषाणाम्, कूजितं = रुतम्, दीर्घीकुर्वन् = विस्तारयन्, स्फुटितकमलामोदमैत्रीकषाय : = विकसितकमलपरिमलसम्पर्कसुरभिः, अङ्गानुकूलः = शरीरानुकूलः, शिप्रावातः = शिप्रानदीपवनः, प्रार्थनाचाटुकारः = समागमयाचनाविषये प्रियवचनप्रयोक्ता, प्रियतमः इव = दयितः इव, स्त्रीणां = कामिनीनाम्, सुरतग्लानिं = सम्भोगखेदम्, हरति = निवारयति । उत्प्रेक्षालङ्कारः । मन्दा-क्रान्ता वृत्तम् ॥ ३२ ॥

आलोक

दीर्घीकुर्वन्—अदीर्घं दीर्घं यथा सम्पद्यते तथा कुर्वन्—दीर्घ+च्वि+कृ धातु । मदकलम्—मदेन कलं मदकलम् (तृतीया तत्पुरुष)। 'ध्वनौ तु मधुरास्फुटे ।

कल:'— अमरकोश। कूजितम्—'कुज अव्यक्त शब्दे' धातु से क्त प्रत्यय। सारसानाम्—सरसि भवाः सारसाः, तेषाम्—यहाँ 'तत्र भवः' से अण् प्रत्यय हुआ है। 'सारसो मैथुनी कामी गोनर्दः पुष्कराह्वयः' —यादवकोश। मल्लि-नाथ ने सारस शब्द का दूसरा अर्थ हंस भी किया है—यद्वा सारसानां हंसानाम्। 'चक्राङ्गः सारसो हंसः' —शब्दार्णव। प्रत्यूषेषु—'प्रत्यूषोऽहर्मुखं कल्यम्' —अमरकोश। स्फुटितकमलामोदमैत्रीकषायः—स्फुटितानि च तानि कमलानि स्फुटितकमलानि (कर्मधारय)। स्फुटितकमलानाम् आमोदः स्फुटितकमलामोदः (षष्ठी तत्पुरुष)। स्फुटितकमलामोदेन मैत्री (तृतीया तत्पुरुष), तया कषायः (तृतीया तत्पुरुष)। स्फुटित--स्फुट्+क्त। मैत्री—मित्रस्य भावः कर्म वा --मित्र + ष्यञ् + ङीष् —यहाँ 'हलस्तद्धितस्य' इस सूत्र से यकार का लोप हो जाता है। 'रागद्रव्ये कषायोऽस्त्री निर्यासे सौरभे रसे'--यादवकोश। 'विमर्दोत्थे परिमलो गन्धे जनमनोहरे। आमोदःसोऽतिनिर्हारी'--अमरकोश। हरति--हृ धातु लट्लकार प्र० पु० ए० व०। सुरतग्लानिम्--सुरतस्य ग्लानिः सुरतग्लानिः, ताम् (षष्ठी तत्पुरुष)। सुरतम्—शोभनं रतम्--सु+रम् +क्त। ग्लानि.--ग्लै + क्तिन्। अङ्गानुकूलः— अङ्गेषु अनुकूलः (सप्तमी तत्पुरुष)। इस शब्द को पवन का विशेषण मानने से शरीर को सुखद स्पर्श देने वाला ऐसा अर्थ होगा तथा प्रियतम का विशेषण मानने से गाढ़ आलिङ्गन से शरीर को दबाने वाला ऐसा अर्थ होगा। महाकवि भवभूति ने भी लिखा है–'अशिथिलपरिरम्भैर्दत्तसंवाहनानि।' महाकविकालिदास ने अन्यत्र भी लिखा है—'सम्भोगान्ते मम समुचितो हस्तसंवाहनानाम्।' शिप्रावातः — शिप्रायाः वातः (षष्ठी तत्पुरुष)। उज्जयिनी के समीप में बहने वाली शिप्रा एक प्रसिद्ध नदी है। प्रियतमः—अतिशयेन प्रियः-- प्रिय+तमप्। यहाँ 'अतिशायने तमबिष्ठनौ' इस सूत्र से तमप् प्रत्यय हुआ है। प्रियः—प्रीणातीति--प्री+क। प्रार्थनाचाटुकारः—प्रार्थनायां चाटुकारः (सप्तमी तत्पुरुष)। प्रार्थना—प्र+ अर्थ्+युच्+टाप्। चाटुकारः— चाटु करोति इति —चाटु+कृ+अण्। कुछ टीकाकारों ने यहाँ खण्डिता नायिका के अनुनय की स्थिति मानी है।

खण्डिता नायिका का लक्षण इस प्रकार है —"पार्श्वमेति प्रियो यस्या अन्य-संयोगचिह्नितः। सा खण्डितेति कथिता धीरैरीर्ष्याकषायिता ॥" आचार्य मल्लिनाथ ने यहाँ खण्डिता नायिका के अनुनय का खण्डन करते हुए लिखा है—"प्रार्थनाचाटुकारः इत्यत्र खण्डितनायिकाऽनुनीता इति व्याख्याने सुर-तग्लानिहरणं न सम्भवति। तस्याः पूर्वं सुरताभावात्पश्चात्तनसुरतग्लानिहरणं तु नेदानीन्तनकोपशमनार्थं चाटुवचनसाध्यमित्युत्प्रेक्षैवोचिता विवेकिनाम्। ज्ञातेऽन्यासङ्गविकृते खण्डितेर्ष्याकषायिता इति दशरूपके।" यहाँ शिप्रा नदी के पवन की अप्रकृत प्रियतम से सम्भावना करने के कारण उत्प्रेक्षा अलङ्कार है यहाँ पर प्रयुक्त इव शब्द उत्प्रेक्षा का व्यञ्जक है। प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति तथा मन्दाक्रान्ता छन्द है ॥ ३२ ॥

प्रसङ्ग—उज्जयिनी के वैभव का बखान करता हुआ यक्ष मेघ से इस प्रकार कहता है कि उस उज्जयिनी नाम की नगरी के बाजार में करोड़ों की संख्या में रक्खे गये हारों, शंखों, सीपियों, मरकतमणियों तथा मूँगों के टुकड़ों को देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि समुद्र में रत्न रह ही न गये हों —

हारांस्तारांस्तरलगुटिकान्कोटिशः शङ्खशुक्तीः
शष्पश्यामान्मरकतमणीनुन्मयूखप्ररोहान्।
दृष्ट्वा यस्यां विपणिरचितान्विद्रुमाणां च भङ्गान्
संलक्ष्यन्ते सलिलनिधयस्तोयमात्रावशेषाः ॥३३॥

पदच्छेद—हारान् तारान् तरलगुटिकान् कोटिशः शङ्खशुक्तीः शष्पश्यामान् मरकतमणीन्, उन्मयूखप्ररोहान्। दृष्ट्वा यस्यां विपणिरचितान् विद्रुमाणां च भङ्गान् संलक्ष्यन्ते सलिलनिधयः तोयमात्रावशेषाः ॥ ३३ ॥

अन्वय—यस्यां कोटिशः विपणिरचितान् तरलगुटिकान् तारान् हारान् शङ्खशुक्तीः शष्पश्यामान् उन्मूखप्ररोहान् मरकतमणीन् विद्रुमाणां भङ्गन् च दृष्ट्वा सलिलनिधयः तोयमात्रावशेषाः संलक्ष्यन्ते ॥३३॥

शब्दार्थ—यस्याम् = जिस (उज्जयिनी) में, कोटिशः = करोड़ों की संख्या में, विपणिरचितान् = बाजारों में, फैलाये गये, तरलगुटिकान् = बहुमूल्य मध्यमणि

वाले, तारान् = शुद्ध, हारान् = हारों को, शङ्खशुक्तीः = शङ्ख और सीपियों को, शष्पश्यामान् = घास के समान हरे, उन्मयूखप्ररोहान् = ऊपर की ओर उठती हुई किरणरूपी अङ्कुरों वाली, मरकतमणीन् = मरकतमणियों, विद्रुमाणां भङ्गान् च = और मूंगों के टुकड़ों को, दृष्ट्वा = देखकर, सलिलनिधयः = जलनिधि, तोयमात्रावशेषाः = केवल जलावशिष्ट, संलक्ष्यन्ते = दिखाई देते हैं ॥३३॥

हिन्दी अनुवाद—जिस (उज्जयिनी) में करोड़ों की संख्या में बाजारों में फैलाये गये मध्य भाग में महारत्नों से युक्त शुद्ध (असली) हारों, शङ्खों, सीपियों, घास के समान हरी और ऊपर की ओर उठती हुई किरणरूपी अङ्कुरों वाली मरकत मणियों तथा मूंगों के टुकड़ों को देखकर समुद्र केवल जलावशिष्ट दिखाई देते हैं (अर्थात् ऐसा प्रतीत होता है समुद्रों में केवल जल ही शेष रह गया हो) ॥३३॥

संस्कृत व्याख्या— यस्यां = उज्जयिन्याम्, कोटिशः = अपरिमितान्, विपणिरचितान् = पण्यवीथिकाप्रसारितान्, तरलगुटिकान् = मध्यमणीभूतमहारत्नान् तारान् = विशुद्धान्, हारान् = मुक्तावलीः, शङ्खशुक्ती = मुक्तास्फोटान्, शष्पश्यामान् = बालतृणश्यामान्, उन्मयूखप्ररोहान् = उद्गतरुचिराङ्कुरान्, मरकतमणीन् = गारुड़मणीन्, विद्रुमाणां = प्रवालानाम्, भङ्गान् = खण्डान्, च = समुच्चये, दृष्ट्वा = विलोक्य, सलिलनिधयः = जलनिधयः, तोयमात्रावशेषाः = सलिलमात्रावशिष्टाः, संलक्ष्यन्ते = अनुमीयन्ते । अत्र उदात्तालङ्कारः । मन्दाक्रान्ता वृत्तम् । ३३॥

आलोक

तारान्—तार शब्द का अर्थ यहाँ शुद्ध है 'तारोमुक्तादि संशुद्धौ तरणे शुद्धमौक्तिके'—विश्वकोश । तरलगुटिकान्—तरलाः गुटिकाः येषु ते, तान् (बहुव्रीहि) । 'तरलो हारमध्यगः'—अमरकोश । 'पिण्डे मणौ महारत्ने गुटिका बद्धपारदे'— शब्दार्णव । कोटिशः—कोटि+शस् । कोटिं कोटिं

दृष्ट्वा इति क्रोटिशः । शङ्खशुक्तीः—शङ्खाश्च शुक्तयश्च, ताः (द्वन्द्व) । 'मुक्ता-स्फोटः स्त्रियां शुक्तिः शङ्खः स्यात् कम्बुरस्त्रियाम्'—अमरकोश । शष्पश्यामान्—शष्पाणि इव श्यामाः शष्पश्यामाः, तान् (उपमित कर्मधारय) । 'शष्पं बालतृणं घासो यवस तृणमर्जुनम्—अमरकोश । मरकतमणीन्—मरकतानि च ते मणयः मरकतमणयः, तान् (कर्मधारय) । उन्मयूखप्ररोहान्—उद्गताः मयूखप्ररोहाः येषां ते तान् (बहुव्रीहि) । मयूखः—मिमीते इति—इस अर्थ में 'माङ् माने शब्दे च' धातु से 'माङ् ऊखो मय् च' इस उणादि सूत्र से ऊख प्रत्यय तथा मयादेश । "किरणोऽस्त्रमयूखांशुगभस्तिघृणिघृष्णयः । भानुः करो मरीचिः स्त्रीपुंसयोर्दीधितिः स्त्रियाम् ।।" दृष्ट्वा—दृश्+क्त्वा । विपणिरचितान्—विपणिषु रचिताः विपणिरचिताः, तान् । 'विपणिः पण्यवीथिका' —अमरकोश । विद्रुमाणाम्—विशिष्टो द्रुमः विद्रुमः अथवा विशिष्टे द्रौ भवः इस अर्थ में 'द्युद्रुभ्यां मः' से म प्रत्यय । 'विद्रुमो रत्नवृक्षेऽपि प्रवालेऽपि पुमानयम्'—मेदिनीकोश । 'अथ विद्रुमः पुंसि प्रवालं पुन्नपुंसकम्'—अरमकोश । सलिलनिधयः—सलिलानां निधयः (षष्ठी तत्पुरुष) । निधिः—नि+धा+कि । 'सलिलं कमलं जलम्'—अमरकोश । तोयमात्रावशेषाः—तोयमेव तोयमात्रम्, तोयमात्रम् अवशेषः येषां ते (बहुव्रीहि) । संलक्ष्यन्ते—सम्+लक्ष्+णिच् (कर्मणि) लट् लकार प्र० पु० ब० व० । कतिपय टीकाकारों ने इस श्लोक को उत्तरमेघ के ११ वें श्लोक के बाद रक्खा है । यहाँ लोकोत्कृष्ट वस्तुओं के वर्णित होने से उदात्त अलङ्कार है । उत्प्रेक्षा की भी व्यञ्जना हो रही है । प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति तथा मन्दाक्रान्ता छन्द है ।।३३।।

प्रसङ्ग—उज्जयिनी के ऐतिहासिक वृत्त को प्रस्तुत करता हुआ यक्ष मेघ से कहता है कि यहीं राजा उदयन ने प्रद्योत की प्रियपुत्री वासवदत्ता का अपहरण किया था, यहीं पर महाराज प्रद्योत का सुवर्णमय तालवृक्षों का वन था तथा यहीं प्रद्योत का नलगिरि नामक गज मद के कारण खम्भे को उखाड़कर इधर उधर भागा था—

प्रद्योतस्य प्रियदुहितरं वत्सराजोऽत्र जह्रे
हैमं तालद्रुमवनमभूदत्र तस्यैव राज्ञः।
अत्रोद्भ्रान्तः किल नलगिरिः स्तम्भमुत्पाट्य दर्पा—
दित्यागन्तून् रमयति जनो यत्र बन्धूनभिज्ञः ॥३४॥

पदच्छेद—प्रद्योतस्य प्रियदुहितरं वत्सराजः अत्र जह्रे, हैमं तालद्रुमवनम् अभूत् अत्र तस्य एव राज्ञः। अत्र उद्भ्रान्तः किल नलगिरिः स्तम्भम् उत्पाट्य दर्पात् इति आगन्तून् रमयति जनः यत्र बन्धून् अभिज्ञः ॥ ३४ ॥

अन्वयः—अत्र वत्सराजः प्रद्योतस्य प्रियदुहितरं जह्रे, अत्र तस्य एव राज्ञः हैमं तालद्रुमवनम् अभूत्, अत्र नलगिरिः दर्पात् स्तम्भम् उत्पाट्य उद्भ्रान्तः किल इति यत्र अभिज्ञः जनः आगन्तून् बन्धून् रमयति ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ—अत्र=यहाँ, वत्सराजः=वत्सदेश के राजा (उदयन) ने, प्रद्योतस्य=प्रद्योत की, प्रियदुहितरम्=प्रिय पुत्री (वासवदत्ता) का, जह्रे=अपहरण किया था, अत्र=यहाँ, तस्य एव=उन्हीं, राज्ञः=राजा (प्रद्योत) का, हैमम्=सुवर्णमय, तालद्रुमवनम्=तालवृक्षों का वन, अभूत्=था, अत्र=यहाँ, नलगिरिः=नलगिरि नामक (हाथी), दर्पात्=मद से, स्तम्भम्=बन्धनस्तम्भ को, उत्पाट्य=उखाड़ कर, उद्भ्रान्तःकिल=इधर-उधर भागा था इति=इस प्रकार से, यत्र=जहाँ, अभिज्ञः=जानकार, जनः=लोग, आगन्तून्=आगन्तुक, बन्धून्=बन्धुओं का, रमयति=मनोविनोद करते हैं ॥ ३४ ॥

हिन्दी अनुवाद—यहाँ वत्सराज (उदयन) ने (उज्जयिनी के महाराज) प्रद्योत की प्रियपुत्री (वासवदत्ता) का अपहरण किया था। यहाँ उन्हीं राजा (प्रद्योत) का सुनहरा तालवृक्षों का वन था और यहीं नलगिरि (नामक हाथी) मद के कारण बन्धनस्तम्भ (खम्भे) को उखाड़ कर इधर-उधर भागा था। इस प्रकार जानकार लोग आगन्तुक बन्धुओं का मनोविनोद करते हैं ॥ ३४ ॥

संस्कृत व्याख्या—अत्र=इह उज्जयिन्याम्, वत्सराजः=उदयनः, प्रद्योतस्य=एतदाख्यस्य राज्ञः, प्रियदुहितरं=प्रियपुत्रीं वासवदत्ताम्, जह्रे=अपहृतवान्, अत्र=इह, तस्य एव=पूर्वोक्तस्य एव, राज्ञः=नृपस्य, हैमं=सौवर्णम्, तालद्रुमवनं=तालवृक्षविपिनम्, अभूत=अभवत्, अत्र=उज्जयिन्याम्, नलगिरिः=एतदाख्यो गजः, दर्पात्=मदात्, स्तम्भं=आलानम्, उत्पाट्य=उद्धृत्य, उद्भ्रान्तः=भ्रमणं चकार, किल=निश्चयेन, इति=एवम्, यत्र=यस्याम् उज्जयिन्याम्, अभिज्ञः=ज्ञाता, जनः=लोकः, आगन्तून्=आगन्तुकान्, बन्धून्=बान्धवान्, रमयति विनोदयति । भाविकालङ्कारः । मन्दाक्रान्ता वृत्तम् ॥ ३४ ॥

आलोक

प्रद्योतस्य—प्रद्योत उज्जयिनी के राजा थे । उनका दूसरा नाम चण्डमहासेन था । कथासरित्सागर के अनुसार प्रद्योत मगध देश के राजा थे । उनकी पुत्री का नाम पद्मावती था । राजा उदयन वासवदत्ता तथा पद्मावती को लेकर महाकवि भास ने 'स्वप्नवासवदत्ताम्' नामक नाटक की रचना की है । प्रियदुहितरम्—प्रिया चासौ दुहिता प्रियदुहिता, ताम् (कर्मधारय) । प्रियः—प्री+क । वत्सराजः—वत्सानां (वत्सदेशानाम्) राजा इति वत्सराजः (षष्ठी तत्पुरुष) । यहाँ 'राजाहः—सखिभ्यष्टच्' से टच् प्रत्यय हुआ है । जह्रे—हृ धातु लिट् लकार आत्मनेपद प्र० पु० ए० व० । हैमम्—हेम्नः विकारः- हेमन्+अण् । हेम—हि+मनिन्=हेम । "स्वर्णं सुवर्णं कनकं हिरण्यं हेम हाटकम् । तपनीयं शातकुम्भं गाङ्गेयं भर्म कर्बुरम् ॥"—अमरकोश । तालद्रुमवनम्—तालद्रुमाणां वनं तालद्रुमवनम् (षष्ठी तत्पुरुष) । 'अटव्यरण्यं विपिनं गहनं काननं वनम्'—अमरकोश । उद्भ्रान्तः उत्+भ्रम्+क्त । उत्पाट्य—उत्+पट्+णिच्+क्त्वा—ल्यप् । दर्पात्—यहाँ 'हेत्वर्थ' में पञ्चमी हुई है । आगन्तून्—आ+गम्+तुम् । यहाँ 'औणादिक तुम्' प्रत्यय हुआ है । रमयति—रम्+णिच्+लट् प्र० पु० ए० व० । यत्र—यत्+त्रल् । अभिज्ञः—अभिज्ञा-

नाति इति—अभि+ज्ञा+क। यहाँ 'आतश्चोपसर्गे' इस सूत्र से क प्रत्यय हुआ है। यहाँ कवि ने ऐतिहासिक पुरातन आख्यान को अत्यन्त सरस एवं रोचक ढंग से प्रस्तुत किया है। प्रस्तुत श्लोक में भूतकालीन वृत्तान्त प्रत्यक्ष की तरह वर्णित होने के कारण भाविक अलङ्कार है। लक्षण–"अद्भुतस्य पदार्थस्य भूतस्याथ भविष्यतः। यत्प्रत्यक्षायमाणत्वं तद् भाविकमुदाहृतम् ॥" प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति तथा मन्दाक्रान्ता छन्द है ॥ ३४ ॥

प्रसङ्ग यक्ष उज्जयिनी के अश्वों, गजों एवं योद्धाओं के उत्कर्ष का वर्णन करता हुआ कहता है कि उज्जयिनी नगरी के घोड़े पत्तों के समान श्यामले और गति में सूर्य के घोड़ों से होड़ लेने वाले हैं, हाथी पर्वत के समान और मेघ की तरह मदजल की वृष्टि करने वाले हैं तथा योद्धा अद्भुत शौर्य से समलङ्कृत हैं—

पत्रश्यामा दिनकरहयस्पर्धिनो यत्र वाहाः
शैलोदग्रास्त्वमिव करिणो वृष्टिमन्तः प्रभेदात् ।
योधाग्रण्यः प्रतिदशमुखं संयुगे तस्थिवांसः
प्रत्यादिष्टाभरणरुचयश्चन्द्रहासव्रणाङ्कैः ॥ ३५ ॥

पदच्छेद—पत्रश्यामाः दिनकरहयस्पर्धिनः यत्र वाहाः । शैलोदग्राः त्वम् इव करिणः वृष्टिमन्तः प्रभेदात् । योधाग्रण्यः प्रतिदशमुखं संयुगे तस्थिवांसः । प्रत्यादिष्टाभरणरुचयः चन्द्रहासव्रणाङ्कैः ॥ ३५ ॥

अन्वय–यत्र वाहाः पत्रश्यामाः दिनकरहयस्पर्धिनः, शैलोदग्राः करिणः प्रभेदात् त्वम् इव वृष्टिमन्तः। योद्धाग्रण्यः संयुगे प्रतिदशमुखं तस्थिवांसः चन्द्रहासव्रणाङ्कैः प्रत्यादिष्टाभरणरुचयः (सन्ति) ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ–यत्र=जिस (उज्जयिनी) में, वाहाः=घोड़े, पत्रश्यामाः=पत्तों के समान श्यामवर्ण वाले, दिनकरहयस्पर्धिनः=सूर्य के घोड़ों से स्पर्धा करने वाले हैं, शैलोदग्राः=पर्वत के समान ऊँचे, करिणः=हाथी, प्रभेदात्=मद गिरने से, त्वम् इव=तुम्हारे समान, वृष्टिमन्तः=वृष्टि करने वाले हैं, योद्धाग्रण्यः=श्रेष्ठ योद्धा लोग, संयुगे=युद्ध में, प्रतिदशमुखम्=रावण के विरुद्ध, तस्थिवांसः=खड़े होने वाले, चन्द्रहासव्रणाङ्कैः=चन्द्रहास नामक रावण

की तलवार के घावों के चिह्नों के कारण, प्रत्यादिष्टाभरणरुचयः (सन्ति) = आभूषणों की कान्तियों का प्रत्याख्यान करने वाले हैं ।। ३५ ।।

हिन्दी अनुवाद—जिस (उज्जयिनी) में घोड़े पत्तों के समान श्यामले तथा सूर्य के घोड़ों के साथ स्पर्धा करने वाले हैं। पर्वत के समान ऊँचे हाथी मद गिरने के कारण तुम्हारे समान वृष्टि करने वाले हैं। श्रेष्ठ योद्धा लोग युद्ध में रावण के सम्मुख खड़े होने वाले और उसके चन्द्रहास नामक तलवार के घावों के चिह्नों से आभूषणों की कान्तियों का प्रत्याख्यान करने वाले हैं अर्थात् आभूषणों की शोभा को अभिभूत कर देने वाले हैं ।। ३५ ।।

संस्कृत व्याख्या-यत्र=यस्याम् उज्जयिन्याम्, वाहाः=अश्वाः, पत्रश्यामाः =पर्णश्यामाः, दिनकरहयस्पर्धिनः=सूर्यघोटकसंघर्षशीलाः, शैलोदग्राः=गिरिसमोन्नताः, करिणः=हस्तिनः, प्रभेदात्=मदस्रावात्, त्वमिव=भवानिव, वृष्टिमन्तः=वृष्टियुक्ताः, योद्धाग्रण्यः=भटश्रेष्ठाः, संयुगे=संग्रामे, प्रतिदशमुखं=रावणसमक्षम्, तस्थिवांसः=स्थितवन्तः, चन्द्रहासव्रणाङ्कैः=दशाननखड्गक्षतचिह्नैः, प्रत्यादिष्टाभरणरुचयः=प्रत्याख्याताभूषणकान्तयः, सन्ति । उदात्तमलङ्कारः । मन्दाक्रान्ता वृत्तम् ।। ३५ ।।

आलोक

पत्रश्यामाः-पत्रवत् श्यामाः पत्रश्यामाः (उपमितसमास) दिनकरहयस्पर्धिनः -दिनकरस्य हयाः दिनकरहयाः (षष्ठी तत्पुरुष), दिनकरहयैः स्पर्धन्ते तच्छीलाः । दिनकरः—दिनं करोतीति-दिन+कृ+ट । दिनकर+हय+स्पर्ध्+णिनि। हयः—हयति इति-'हय गतौ' धातु से अच् प्रत्यय । "घोटके पीतितुरगतुरङ्गाश्वतुरङ्गमाः । वाजिवाहार्वगन्धर्वहयसैन्धवसप्तयः ।।" वाहाः—वहन्ति इति वाहाः । वह्+घञ । शैलोदग्राः—शैलवत् उदग्राः (उपमितसमास) । यह करिणः का विशेषण है । 'अद्रिगोत्रगिरिग्रावाचलशैलशिलोच्चयाः'— अमरकोश । त्वमिव वृष्टिमन्तः—यहाँ उपमानवाची त्वम् पद एकवचनान्त है और उपमेयवाची करिणः बहुवचनान्त होने से भग्नप्रक्रम दोष है । वृष्टिमन्तः —वृष्टि+मतुप् । योद्धाग्रण्यः—योधानाम् अग्रण्यः (षष्ठी तत्पुरुष) । प्रतिदशमुखम्-दशमुखं प्रति इति प्रतिदशमुखम् (अव्ययीभाव समास) ।

तस्थिवांसः–स्था + क्वसु । प्रत्यादिष्टाभरणरुचयः–प्रत्यादिष्टाः आभरणानां रुचयः यैः ते (बहुव्रीहि) । प्रत्यादिष्ट-प्रति + आ + दिश् + क्त । चन्द्रहासव्रणाङ्कैः–चन्द्रहासस्य व्रणानि चन्द्रहासव्रणानि (षष्ठी तत्पुरुष), तानि एव अङ्काः, तैः (रूपक समास) । चन्द्रहासः–चन्द्र इव हासः (प्रभा) अस्य । चन्द्रहास शब्द सामान्य तलवारवाची तथा रावण की तलवार का वाचक है । यहाँ रावण की तलवार के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है–'चन्द्रहासोऽसिमात्रके । दशग्रीवकृपाणे च, कनीयसि च गुग्गुलौ'–हेमचन्द्र । 'खड्गे तु निस्त्रिंशचन्द्रहासासिरिष्टयः । कौक्षेयको मण्डलाग्रः करवालः कृपाणवत् ।।''–अमरकोश । इस श्लोक में क्रमशः घोड़ों की सुन्दरता एवं आशु गतिशीलता, हाथियों का औन्नत्य और मदक्षरणता तथा योद्धाओं का शौर्य अभिव्यञ्जित हो रहा है । श्लोक में प्रयुक्त चन्द्रहास शब्द अत्यन्त व्यञ्जक है । यहाँ के योद्धा इतने वीर हैं कि वे चन्द्रहास नामक रावण की तलवार के प्रहार को भी सहन कर सकते हैं । इससे उनके शौर्य की अभिव्यञ्जना हो रही है । यहाँ उदात्त अलङ्कार है । उपमा भी है । कुछ टीकाओं में इसे उत्तरमेघ के १२वें श्लोक के क्रम में रक्खा गया है । प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति तथा मन्दाक्रान्ता छन्द है ।।३५।।

प्रसङ्ग—यक्ष कहता है कि हे मेघ ! उज्जयिनी नामक नगरी के महलों के सौन्दर्य के देखने से तुम्हारा मार्गजन्य श्रम दूर हो सकता है । उस उज्जयिनी के भवन पुष्पों से सुगन्धित तथा वहाँ की कामिनियों के अलक्तकरस से चिह्नित होंगे । वहाँ स्त्रियाँ अपने अलकों को धूप से सुगन्धित कर रही होंगी अतएव वहाँ से निकलने वाला धुआँ तुम्हारे आकार में वृद्धि कर देगा । गृहों में स्थित मयूर नृत्यरूपी उपहार के द्वारा तुम्हारा सत्कार करेंगे—

जालोद्गीर्णैरुपचितवपुः केशसंस्कारधूपै—
बन्धुप्रीत्या भवनशिखिभिर्दत्तनृत्योपहारः ।
हर्म्येष्वस्याः कुसुमसुरभिष्वध्वखेदं नयेथा
लक्ष्मीं पश्यँल्ललितवनितापादरागाङ्कितेषु ।।३६।।

पदच्छेद—जालोद्गीर्णैः उपचितवपुः केशसंस्कारधूपैः बन्धुप्रीत्या भवनशिखिभिः दत्तनृत्योपहारः । हर्म्येषु अस्याः कुसुमसुरभिषु अध्वखेदं नयेथाः लक्ष्मीं पश्यन् ललितवनितापादरागाङ्कितेषु ।।३६।।

अन्वय—जालोद्गीर्णैः केशसंस्कारधूपैः उपचितवपुः बन्धुप्रीत्या भवनशिखिभिः दत्तनृत्योपहारः । कुसुमसुरभिषु ललितवनितापादरागाङ्कितेषु अस्याः हर्म्येषु लक्ष्मीं पश्यन् अध्वखेदं नयेथाः ।।३६।।

शब्दार्थ—जालोद्गीर्णैः=गवाक्षों (जालियों) से निकले हुये, केशसंस्कारधूपैः=केशों को सुगन्धित करने वाले धूपों से, उपचितवपुः=परिपुष्ट शरीर वाले, बन्धुप्रीत्या=बन्धु के (आगमन की) प्रीति के कारण, भवनशिखिभिः=भवन के मयूरों के द्वारा, दत्तनृत्योपहारः=नृत्यरूपी उपहार दिये गये (तुम), कुसुमसुरभिषु=फूलों से सुगन्वित, ललितवनितापादरागाङ्कितेषु=सुन्दर ललनाओं के चरणों के महावर से चिह्नित, अस्याः=इस (उज्जयिनी) के, हर्म्येषु=महलों में, लक्ष्मीं=शोभा को, पश्यन्=देखते हुये, अध्वखेदम्=मार्ग के परिश्रम को, नयेथाः=दूर करना ।।३६।।

हिन्दी अनुवाद—गवाक्षों (खिड़कियों के मार्गों, से निकले हुये केशों को सुगन्धित करने वाले धूपों से परिपुष्ट शरीर वाले तथा मित्र के प्रति प्रेम के कारण भवन के मयूरों के द्वारा नृत्यरूप उपहार दिये गये (तुम) फूलों से सुगन्धित तथा सुन्दर वनिताओं के चरणों के महावर से चिह्नित इस (उज्जयिनी) के महलों में शोभा को देखते हुये मार्ग के परिश्रम को दूर करना ।।३६।।

संस्कृत व्याख्या—जालोद्गीर्णैः=गवाक्षनिर्गतैः, केशसंस्कारधूपैः=कामिनीकुन्तलसंस्कृतिधूपैः, उपचितवपुः=परिपुष्टाकारः, बन्धुप्रीत्या=वान्धवप्रेम्णा, भवनशिखिभिः=गृहमयूरैः, दत्तनृत्योपहारः=समर्पितनर्तनोपहारः, कुसुमसुरभिषु=प्रसूनसुगन्धिषु, ललितवनितापादरागाङ्कितेषु=मनोज्ञललनाचरणलाक्षारसचिह्नितेषु, हर्म्येषु=धनिकागारेषु, अस्याः=उज्जयिन्याः, लक्ष्मीं=शोभाम्, पश्यन्=विलोकयन्, अध्वखेदं=मार्गपरिश्रमम्, नयेथाः=अपनय । रूपकालङ्कारः । मन्दाक्रान्ता वृत्तम् ।।३६।।

आलोक

जालोद्गीर्णैः—जालेभ्यः उद्गीर्णाः जालोद्गीर्णाः, तैः (पञ्चमी तत्पुरुष)। उद्गीर्णं—उत्+गृ+क्त। उपचितवपुः—उपचितं वपुः यस्य सः (बहुव्रीहि)। 'गात्रं संहननं वपुः'—अमरकोश। केशसंस्कारधूपैः—केशानां संस्कारः केशसंस्कारः (षष्ठी तत्पुरुष), केशसंस्कारस्य धूपाः केशसंस्कारधूपाः, तैः (षष्ठी तत्पुरुष)। संस्कारः—संस्करणं—सम्+कृ+घञ्। यहाँ 'संपरिभ्यां करोतौ भूषणे' इस सूत्र से सुट् का आगम हुआ है। 'चिकुरः कुन्तलो वालः कचः केशः शिरोरुहः'—अमरकोश। बन्धुप्रीत्या—बन्धोः प्रीतिः बन्धुप्रीतिः, तया (षष्ठी तत्पुरुष)। प्रीतिः—प्री+क्तिन्। कवि ने यहाँ यह बतलाया है कि मेघ के गर्जनरूपी शब्द को सुनकर उसके आगमन की प्रसन्नता से मयूरगण नृत्य करने लगते हैं। भवनशिखिभिः—भवनेषु शिखिनः भवनशिखिनः, तैः। 'भवनागारमन्दिरम्'—अमरकोश। शिखी—शिखा अस्ति यस्य सः—शिखा+इनि। यहाँ 'व्रीह्यादिभ्यश्च' इस सूत्र से इनि प्रत्यय हुआ है। "मयूरो बर्हिणो बर्ही नीलकण्ठो भुजङ्गभुक्। शिखावलः शिखी केकी मेघनादानुलास्यपि॥" —अमरकोश। दत्तनृत्योपहारः—दत्तः नृत्योपहारः यस्मै सः (बहुव्रीहि)। दत्तः—दा+क्त। नृत्योपहारः—नृत्यमेव उपहारः (रूपक समास)। नृत्यम्—नर्तनं नृत्यम्, 'नृती गात्रविक्षेपे' धातु से 'ऋदुपधाच्चाक्लृपिचृतेः' इस सूत्र से क्यप् प्रत्यय हुआ है। 'ताण्डवं नटनं नाट्यं लास्यं नृत्यं च नर्तने'—अमरकोश। अमरसिंह के इस कथन के अनुसार यद्यपि ये शब्द सामान्य नृत्य के ज्ञापक हैं फिर भी विशेष स्थानों में इनका विशिष्ट प्रयोग होता है। उपहारः—उप+हृ+घञ्। 'उपायनमुपग्राह्यमुपहारस्तथोपदा'—अमरकोश। हर्म्येषु—धनी लोगों के घर को हर्म्य कहते हैं—हर्म्यादि धनिनां वासः। कुसुमसुरभिषु—कुसुमैः सुरभीणि, तेषु (तृतीया तत्पुरुष)। अध्वखेदम्—अध्वनः खेदः अध्वखेदः, तम् (षष्ठी तत्पुरुष)। खेदः—खिद्+घञ्। नयेथाः—नी धातु विधिलिङ् लकार म० पु० ए० व०। लक्ष्मीम्—यहाँ शोभा के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। लक्षयति=पश्यति नीतिज्ञम् लक्ष्+ई तथा मुट् का आगम। यहाँ 'लक्षेर्मुट् च' से ई प्रत्यय तथा मुट् का आगम होता है। 'लक्ष्मीः सम्पत्ति-

शोभयोः । ऋद्ध्योधेर्यो च पद्मायां वृद्धिनामौषधेऽपि च'—मेदिनीकोश । पश्यन्--दृश्+शतृ । ललितवनितापादरागाङ्कितेषु--ललिताश्च ताः वनिताश्चेति ललितवनिताः (कर्मधारय), ललितवनितानां पादरागः (षष्ठी तत्पुरुष), तेन अङ्कितानि ललितवनितापादरागाङ्कितानि, तेषु (तृतीया तत्पुरुष) । 'ललितं त्रिषु सुन्दरम्' शब्दार्णव । पादरागः—पादयोः रागः (सप्तमी तत्पुरुष)। रागः--रञ्ज्+घञ् । यहाँ कवि ने उज्जयिनी के उत्कर्ष का अत्यन्त रोचक वर्णन किया है । 'बन्धुप्रीत्या' पद के द्वारा मेघ के साथ मयूर के सहज सम्बन्ध को बतलाकर कवि ने भाव सौन्दर्य को प्रस्तुत किया है । यहाँ रूपक तथा उदात्त अलङ्कार हैं । प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति तथा मन्दाक्रान्ता छन्द है ॥३६॥

प्रसङ्ग--यक्ष मेघ से कहता है कि हे मेघ ! उज्जयिनी में भगवान् शङ्कर का महाकाल नामक पवित्र स्थान है। वहाँ तुम्हें अवश्य जाना चाहिये । तुम्हारा वर्ण भगवान् शङ्कर के गले के समान श्यामला है अतएव भगवान् शङ्कर के गण तुम्हें बड़े सम्मान की दृष्टि से देखेंगे—

भर्तुः कण्ठच्छविरिति गणैः सादरं वीक्ष्यमाणः
पुण्यं यायास्त्रिभुवनगुरोर्धाम चण्डीश्वरस्य ।
धूतोद्यानं कुवलयरजोगन्धिभिर्गन्धवत्या—
स्तोयक्रीडानिरतयुवतिस्नानतिक्तैर्मरुद्भिः ॥३७॥

पदच्छेद—भर्तुः कण्ठच्छविः इति गणैः सादरं वीक्ष्यमाणः पुण्यं यायाः त्रिभुवनगुरोः धाम चण्डीश्वरस्य । धूतोद्यानं कुवलयरजोगन्धिभिः गन्धवत्याः तोयक्रीडानिरतयुवतिस्नानतिक्तैः मरुद्भिः ॥३७॥

अन्वय-भर्तुः कण्ठच्छविः इति गणैः सादरं वीक्ष्यमाणः कुवलयरजोगन्धिभिः तोयक्रीडानिरतयुवतिस्नानतिक्तैः गन्धवत्याः मरुद्भिः धूतोद्यानं त्रिभुवनगुरोः चण्डीश्वरस्य पुण्यं धाम यायाः ॥३७॥

शब्दार्थ--भर्तुः=स्वामी के, कण्ठच्छविः=कण्ठ की कान्ति के समान कान्ति वाला है, इति =यह विचार कर या इस कारण से, गणैः=(महादेव के) गणों के द्वारा, सादरम्=आदरपूर्वक, वीक्ष्यमाणः=देखे जाते हुये (तुम), कुवलयरजोगन्धिभिः=कमलों के पराग से सुगन्धित, तोयक्रीडानिरतयुवति-

स्नानतिक्तैः=जलक्रीडा में लगी हुई युवतियों के चन्दन आदि स्नान के साधनों से सुगन्धित, गन्धवत्याः=गन्धवती के, मरुद्भिः=वायु से, धूतोद्यानम्=कम्पित उद्यान वाले, त्रिभुवनगुरोः=त्रिभुवन के स्वामी, चण्डीश्वरस्य=महादेव के, पुण्यं धाम=पवित्र स्थान (महाकाल) को, यायाः=जाओ ॥३७॥

हिन्दी अनुवाद--(हमारे) स्वामी के कण्ठ की कान्ति के समान कान्ति वाला है, इस कारण से (महादेव के) गणों के द्वारा आदरपूर्वक देखे जाते हुये (तुम) कमलों के पराग से सुगन्धित और जलक्रीडा में निरत युवतियों के चन्दन आदि पदार्थों से सुगन्धित गन्धवती नामक नदी के वायु से कम्पित उद्यान वाले तीनों लोकों के स्वामी भगवान् शङ्कर के महाकाल नामक पवित्र स्थान को जाना ॥३७॥

संस्कृत व्याख्या--भर्तुः=स्वामिनः, कण्ठच्छविः=गलकान्तिः, इति=अस्मात् कारणात्, गणैः=प्रमथैः, सादरं=आदरेण सहितम्, वीक्ष्यमाणः=दृश्यमानः, कुवलयरजोगन्धिभिः=उत्पलपरागगन्धिभिः, तोयक्रीडानिरतयुवतिस्नानतिक्तैः=जलक्रीडानिरततरुणीस्नानपदार्थसुरभिभिः, गन्धवत्याः=एतदाख्यायाः नद्याः, मरुद्भिः=पवनैः, धूतोद्यानं=कम्पितोपवनम्, त्रिभुवनगुरोः=त्रैलोक्येश्वरस्य, चण्डीश्वरस्य=भवानीपतेः, पुण्यं=पवित्रम्, धाम=स्थानम्, यायाः=गच्छ । प्रतीपालङ्कारः । मन्दाक्रान्ता वृत्तम् ॥३७॥

आलोक

भर्तुः--भृ+तृच् (षष्ठी एकवचन) । कण्ठच्छविः--कण्ठस्य छविः इव छविः यस्य सः अथवा कण्ठस्य इव छविः यस्यासौ (बहुव्रीहि) । इति--यहाँ हेतु के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है । सादरम्--आदरेण सहितं यथा स्यात्तथा । यह क्रिया विशेषण है । वीक्ष्यमाणः--वि+ईक्ष्+शानच् (कर्मणि) । गणैः--गणस्तु गणनायां स्याद् । 'गणेशे प्रमथे चये'--शब्दार्णव । यायाः--या धातु विधिलिङ् लकार म०पु० ए०व० । त्रिभुवनगुरोः--त्रयाणां भुवनानां समाहारः त्रिभुवनम्, त्रिभुवनस्य गुरुः त्रिभुवनगुरुः (षष्ठी तत्पुरुष), तस्य । गुरु शब्द का प्रयोग यहाँ स्वामी के अर्थ में हुआ है--'गृणाति । 'गॄ शब्दे' (क्र्या० प० से०) । 'कृग्रोरुच्च' (उ० १/२४) इत्युः । गुरुस्त्रिलिङ्ग्यां महति दुर्जराल-

घुनोरपि । पुमान्निषेकादिकरे पित्रादौ सुरमन्त्रिणि'--मेदिनीकोश । धाम--दधाति धीयते वा--धा + मनिन् । 'धाम देहे गृहे रश्मौ स्थाने जन्मप्रभावयोः'--मेदिनीकोश । यहाँ स्थान के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है । चण्डीश्वरस्य --चण्डयाः ईश्वरः, तस्य (षष्ठी तत्पुरुष) । चण्डी पार्वती का नाम है--"उमा कात्यायनी गौरी काली हैमवतीश्वरी । शिवा भवानी रुद्राणी शर्वाणी सर्वमङ्गला ।"--अमरकोश । धूतोद्यानम्--धूतम् उद्यानं यस्मिन तत् (बहुव्रीहि)। धूतम्--धू + क्त । कुवलयरजोगन्धिभिः--कुवलयानां रजांसि कुवलयरजांसि (षष्ठी तत्पुरुष), तेषां गन्धः (षष्ठी तत्पुरुष), कुवलयरजोगन्धः अस्ति येषां ते, तैः । कुवलयरजोगन्ध + इनि । गन्धवत्याः--प्रशस्तो गन्धो अस्ति यस्याः तस्याः--गन्ध + मतुप् + ङीप् । यह मालव देश की नदी है । तोयक्रीडानिरत-युवतिस्नानतिक्तैः--तोयक्रीडायां निरताः तोयक्रीडानिरताः (सप्तमी तत्पुरुष), तोयक्रीडानिरताश्च ताः युवतयश्चेति तोयक्रीडानिरतयुवतयः (कर्मधारय), तोयक्रीडानिरतयुवतीनां स्नानं तोयक्रीडानिरतयुवतिस्नानम् (षष्ठी तत्पुरुष), तेन तिक्ताः, तैः (तृतीया तत्पुरुष) । तोयक्रीडा--तोये क्रीडा (सप्तमी तत्पुरुष)। 'अम्भोऽर्णस्तोयपानीयनीरक्षीराम्बुशंवरम्'--अमरकोश । युवतिः--युवन् + ति । स्नानम्--स्ना + ल्युट् । 'स्नानीयेऽभिषवे स्नानम्'--यादवकोश । यहाँ तिक्त शब्द का प्रयोग सौरभ के अर्थ में हुआ है । 'कटुतिक्तकषायास्तु सौरभे च प्रकीर्त्तिताः' --हलायुधकोश । मरुद्भिः--"पृषदश्वो गन्धवहो गन्धवाहानिलाशुगाः । समीर-मारुत-मरुज्-जगत्प्राण-समीरणाः ॥"--अमरकोश । भगवान् शङ्कर के गण उनके स्वामी महादेव के कण्ठ के समान कान्ति वाले मेघ को सादर देखेंगे, इस कथन से जहाँ एक ओर मेघ का सम्मान तथा गणों का भक्तिभाव अभिव्यञ्जित हो रहा है वहीं दूसरी ओर कवि की भी देवाधिदेव महादेव के प्रति भक्तिभावना ध्वनित हो रही है । गन्धवती नामक नदी वहाँ की युवतियों के द्वारा जलक्रीडा किये जाने के कारण भीनी गन्ध वाली हो गई है, इस कथन से कवि ने वहाँ की ललनाओं की विलासिता की ओर सङ्केत किया है । इस श्लोक में सुप्रसिद्ध नीले मेघ के उपमेयत्व की कल्पना से प्रतीप अलङ्कार है । लक्षण--"प्रसिद्ध--स्योपमानस्योपमेयत्व-

प्रकल्पनम्। निष्कान्तत्वाभिधानं वा प्रतीपमिति कथ्यते ॥" प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति तथा मन्दाक्रान्ता छन्द है ॥३७॥

प्रसङ्ग—यक्ष कहता है कि हे मेघ ! यदि तुम सन्ध्या के अतिरिक्त किसी दूसरे समय पर भी महाकाल पहुँचना तो वहाँ अवश्य ही रुक जाना और जब तक सन्ध्या न हो जाय तब तक वहाँ से आगे प्रस्थान न करना क्योंकि भगवान् शङ्कर की सायकालीन पूजा में अपनी गर्जना के द्वारा तुम नगाड़े के बजाये जाने का पूरा-पूरा फल प्राप्त कर सकोगे—-

अप्यन्यस्मिञ्जलधर! महाकालमासाद्य काले
स्थातव्यं ते नयनविषयं यावदत्येति भानुः।
कुर्वन् सन्ध्याबलिपटहतां शूलिनः श्लाघनीया—
मामन्द्राणां फलमविकलं लप्स्यसे गर्जितानाम् ॥३८॥

पदच्छेद—अपि अन्यस्मिन् जलधर महाकालम् आसाद्य काले स्थातव्यं ते नयनविषयं यावत् अत्येति भानुः। कुर्वन् सन्ध्याबलिपटहतां शूलिनः श्लाघनीयाम् आमन्द्राणां फलम् अविकलं लप्स्यसे गर्जितानाम् ॥३८॥

अन्वय—जलधर! महाकालम् अन्यस्मिन् अपि काले आसाद्य यावत् भानुः नयनविषयम् अत्येति (तावत्) ते स्थातव्यम्। शूलिनः श्लाघनीयां सन्ध्याबलिपटहतां कुर्वन् आमन्द्राणां गर्जितानाम् अविकलं फलं लप्स्यसे ॥३८॥

शब्दार्थ—जलधर=हे मेघ, महाकालम्=महाकाल को, अन्यस्मिन् अपि काले=(सन्ध्या के अतिरिक्त) अन्य समय पर भी, आसाद्य=पाकर, यावत्=जब तक, भानुः=सूर्य, नयनविषयम् अत्येति=अस्त नहीं होते हैं, (तावत्=तब तक), ते=तुम्हें, स्थातव्यम्=ठहरना चाहिये, शूलिनः=शिव की, श्लाघनीयाम्=प्रशंसनीय, सन्ध्याबलिपटहताम्=सायंकालीन पूजा में नगाड़े के कार्य को, कुर्वन्=सम्पादित करते हुये, आमन्द्राणाम्=कुछ गम्भीर, गर्जितानाम्=गर्जनों के, अविकलम्=अखण्ड, फलम्=फल को, लप्स्यसे=प्राप्त करोगे ॥३८॥

हिन्दी अनुवाद—हे मेघ! महाकाल को (सन्ध्या के अतिरिक्त) दूसरे समय पर भी प्राप्त कर जब तक सूर्य अस्त नहीं होते हैं (तब तक) तुम्हें (वहीं) ठहरना चाहिये। महादेव की सायंकालीन पूजा में नगाड़े का प्रशंसनीय कार्य सम्पादित करते हुये (तुम) अपने कुछ गम्भीर गर्जनों के अखण्ड फल को प्राप्त कर लोगे ॥३८॥

संस्कृत व्याख्या— जलधर=मेघ, महाकालं = चण्डीश्वरमन्दिरम्, अन्यस्मिन् = अपरस्मिन्, अपि, काले = समये, आसाद्य=प्राप्य, यावत् = यावत्कालपर्यन्तम्, भानुः= सूर्यः, नयनविषयं = लोचनपथम्, अत्येति = अतिक्रामति, (तावत्=तावत्कालपर्यन्तम्), ते=त्वया,स्थातव्यं=स्थानीयम्, शूलिनः = महादेवस्य, श्लाघनीयां= प्रशंसनीयाम्, सन्ध्याबलिपटहतां = सायंकालिकपूजानकताम्, कुर्वन्=विदधन्, आमन्द्राणां= ईषद्गम्भीराणाम्, गर्जितानां=स्तनितानाम्, अविकलं=अखण्डम् फलं=पुण्यम्, लप्स्यसे= प्राप्स्यसि। काव्यलिङ्गमलङ्कारः। मन्दाक्रान्ता वृत्तम् ॥३८॥

आलोक

जलधर—जलानां धरः जलधरः, तत्सम्बुद्धौ (षष्ठी तत्पुरुष)। धरतीति धरः—यहाँ 'धृञ्धारणे' धातु से पचाद्यच् प्रत्यय होता है—धृ+अच्=धरः। यदि यहाँ जलं धरतीति इस प्रकार विग्रह कर उपपद समास करके 'कर्मण्यण्' इस सूत्र से अण् प्रत्यय का विधान करेंगे तो जलधार रूप बनेगा। 'धाराधरो जलधरस्तडित्वान् वारिदोऽम्बुभृत्'—अमरकोश। महाकालम्—उज्जयिनी के एक सुप्रसिद्ध स्थान का नाम महाकाल है। यहाँ देवाधिदेव महादेव का एक भव्य मन्दिर है। इस मन्दिर की मूर्ति को भी ही महाकाल कहते हैं। यह शिवलिङ्ग द्वादशज्योतिर्लिङ्गों में से अन्यतम है। आसाद्य—आङ्+सद्+णिच्+क्त्वा—ल्यप्। स्थातव्यम्—स्था+तव्यत्। —नयनविषयम्—नयनयोः विषयः नयनविषयः, तम् (षष्ठी तत्पुरुष)। यावत्— 'यावत्तावच्च साकल्येऽवधौमाननेऽवधारणे' — अमरकोश। अत्येति— अति+इण्+ लट् लकार प्र० पु० ए० व०। भानुः—भाति इति इस अर्थ में भा धातु से

'दाभाभ्यां नुः, से नु प्रत्यय होकर भानु शब्द बनता है–'भानुर्हंसः सहस्रांशुस्तपनः सविता रविः' — अमरकोश। कुर्वन्—कृ+शतृ । ते स्थातव्यम् — यहाँ 'कृत्यानां कर्तरि वा' इस सूत्र से षष्ठी हुई है। सन्ध्याबलिपटहताम्–सन्ध्यायां बलिः सन्ध्याबलिः (सप्तमी तत्पुरुष)। सन्ध्याबलेः पटहता सन्ध्याबलिपटहता, ताम् (षष्ठी तत्पुरुष)। सन्ध्या—सम्यग् ध्यायन्ति अस्यां सा सन्ध्या, सम्+ध्यै+अङ्+टाप्। बलिः—बलति बल्यते वा–'बल प्राणने' धातु से 'सर्वधातुभ्य इन्' से इन् प्रत्यय। यहाँ उपहार या पूजा के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है— 'बलिर्दैत्यप्रभेदे च करचामरदण्डयोः। उपहारे पुमान् स्त्री तु जरया श्लथचर्मणि। गृहदारुप्रभेदे च जठरावयवेऽपि च'—मेदिनीकोश। पटहताम्–पटहस्य भावः पटह+तल्+टाप्। शूलिनः—शूलमस्यास्तीति–शूल+इनि । 'शम्भुरीशः पशुपतिः शिवः शूली महेश्वरः। ईश्वरः शर्व ईशानः शङ्करश्चन्द्रशेखरः।— अमरकोश। श्लाघनीयाम् —श्लाघ्+अनीयर्। यह सन्ध्याबलिपटहताम् का विशेषण है। आमन्द्राणम्—ईषद् मन्द्राणि आमन्द्राणि, तेषाम्–यहाँ'कुगति-प्रादयः' से समास हुआ है। अविकलम्—न विकलम् अविकलम् (नञ् तत्पुरुष)। विकलम्—विगता कला यस्मात् तत् (बहुव्रीहि)। लप्स्यसे— लभ् धातु लृट्लकार आत्मनेपद म० पु० ए० व०। गर्जितानाम्—गर्ज्+क्त। यहाँ 'नपुंसके भावे क्तः' से क्त प्रत्यय हुआ है। यक्ष का कथन है कि हे मेघ! तुम महाकाल पहुँच कर वहाँ की सायंकालीन पूजा में अवश्य ही भाग लेना। सायंकालीन भगवान् शिव की पूजा के समय अपनी गर्जना के द्वारा नगाड़े के कार्य को पूरा करते हुये तुम विधिवत् पुण्यलाभ कर सकोगे। इस श्लोक के द्वारा महाकवि कालिदास का भगवान् शङ्कर के प्रति भक्ति-भाव ध्वनित हो रहा है। पूर्वार्द्ध के प्रति उत्तरार्ध का वाक्यार्थ हेतु रूप में स्थित है अतः काव्यलिङ्ग अलङ्कार है। प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति तथा मन्दाक्रान्ता छन्द है ॥३८॥

प्रसङ्ग—सायंकाल के समय उस महाकाल मन्दिर में नृत्य करने वाली वेश्यायें तुम्हारे द्वारा नाखूनों की खरोंच के स्थान को आनन्द देने वाली

वृष्टि की प्रथम विन्दुओं को पाकर भ्रमरों की पंक्तियों की तरह तुम्हारे ऊपर लम्वे कटाक्ष छोड़ेंगी—

पादन्यासैः क्वणितरशनास्तत्र लीलावधूतैः
रत्नच्छायाखचितबलिभिश्चामरैः क्लान्तहस्ताः ।
वेश्यास्त्वत्तो नखपदसुखान् प्राप्य वर्षाग्रविन्दू—
नामोक्ष्यन्ते त्वयि मधुकरश्रेणिदीर्घान्किटाक्षान् ।।३९।।

पदच्छेद— पादन्यासैः क्वणितरशनाः तत्र लीलावधूतैः रत्नच्छायाखचित-बलिभिः चामरैः क्लान्तहस्ताः । वेश्याः त्वतः नखपदसुखान् प्राप्य वर्षाग्रविन्दून् आमोक्ष्यन्ते त्वयि मधुकरश्रेणिदीर्घान्कटाक्षान् ।।३९।।

अन्वय— तत्र पादन्यासैः क्वणितरशनाः लीलावधूतैः रत्नाच्छायाखचित-वलिभिः चामरैः क्लान्तहस्ताः त्वत्तः नखपदसुखान् वर्षाग्रविन्दून् प्राप्य त्वयि मधुकरश्रेणिदीर्घान् कटाक्षान् आमोक्ष्यन्ते ।।३९।।

शब्दार्थ— तत्र=वहाँ, पादन्यासैः=चरणन्यासों से, क्वणितरशनाः= बजती हुई करधनियों वाली, लीलावधूतैः=विलासपूर्वक हिलाये गये, रत्न-च्छायाखचितबलिभिः=रत्नों से खचित दण्डों वाले, चामरैः=चँवरों से, क्लान्तहस्ताः=थके हुये हाथों वाली, वेश्याः=वेश्यायें, त्वत्तः=तुमसे, नख-पदसुखान्=नाखून (की खरोंच) के स्थानों को सुख देने वाली, वर्षाग्रविन्दून्= वृष्टि की पहली बूँदों को, प्राप्य=प्राप्त करके, त्वयि=तुम्हारे ऊपर, मधुक-रश्रेणिदीर्घान्=भ्रमर पंक्तियों के समान लम्वे, कटाक्षान्=कटाक्षों को, आमोक्ष्यन्ते=छोड़ेंगी ।।३९।।

हिन्दी अनुवाद— वहाँ (सायंकाल में) चरणन्यासों (पैर रखने) से बजती हुई करधनियों वाली [तथा] विलासपूर्वक डुलाये गये एवं रत्नों से खचित दण्ड वाले चामरों से थके हुये हाथों वाली वेश्यायें तुमसे नखक्षत वाले अङ्गों को सुख देने वाली वृष्टि की प्रथम विन्दुओं को पाकर तुम्हारे ऊपर भ्रमर पंक्तियों के समान लम्बे कटाक्षों को छोड़ेंगी ।।३९।।

संस्कृत व्याख्या—तत्र=सन्ध्यासमये, पादन्यासैः=चरणन्यासैः, क्वणितरशनाः=ध्वनितमेखलाः, लीलावधूतैः=विलासकम्पितैः, रत्नच्छा-

याखचितवलिभिः=मणिकान्तिखचितदण्डैः, चामरैः—प्रकीर्णकैः, क्लान्तहस्ताः= खिन्नकराः, त्वत्तः = भवतः, नखपदसुखान्=नखरक्षतसुखकरान्, वर्षाग्रबिन्दून् = वृष्टिप्रथमबिन्दून्, प्राप्य = आसाद्य, त्वयि = भवति, मधुकरश्रेणिदीर्घान् = मधुव्रतपक्तिदीर्घान् कटाक्षान् = अपाङ्गान्, आमोक्ष्यन्ते= परित्यक्ष्यन्ति । लुप्तोपमालङ्कार । मन्दाक्रान्ता वृतम् ॥३९॥

आलोक

पादन्यासैः—पादयोः न्यासाः पादन्यासाः, तैः (षष्ठी तत्पुरुष) । यहाँ करण में तृतीया हुई है । न्यासः—न्यसनम् इस अर्थ में 'भावे' से घञ् प्रत्यय हुआ है । नि+अस्+घञ्.। क्वणितरशनाः-क्वणिताः रशनाः यासां ताः(बहुव्रीहि) ।क्वणित-क्वण्+क्त, । रशना— अश्नुते इति इस अर्थ में 'अशूङ् व्याप्तौ संघाते च' धातु से 'अशेरश च, इस सूत्र से यु प्रत्यय तथा रशादेश अथवा रशति इति— 'रश शब्दे' इस 'सौत्र' धातु से 'बहुलमन्यत्रापि' इस सूत्र से युच् प्रत्यय। रशना शब्द में तालव्य श तथा दन्त्य स दोनों ही रह सकते हैं जैसा कि धरणिकोश में कहा गया है—'तालव्या अपि दन्त्याश्च शम्बशम्बलशूकराः। रशनापि च जिह्वायाम् । 'रसनं स्वदने रसना काञ्चिजिह्वयोः ।' "स्त्रीकट्यां मेखला काञ्ची सप्तकी रशना तथा। क्लीबे सारसनं च। "—अमरकोश । तत्र— तद्+त्रल् । लीलावधूतैः—लीलया अवधूतानि लीलावधूतानि (तृतीया तत्पुरुष) । लीला की मीमांसा करते हुये कविराज विश्वनाथ लिखते हैं—"अङ्गैर्वेषैरलङ्कारैः प्रेमभिर्वचनैरपि । प्रीतिप्रयोजितैर्लीलां प्रियस्यानुकृतिं विदुः ॥" अवधूतम्—अव+धू+क्त । रत्नच्छायाखचितबलिभिः— रत्नानां छाया रत्नच्छाया (षष्ठी तत्पुरुष), रत्नच्छायया खचिता रत्नच्छायाखचिता (तृतीया तत्पुरुष), रत्नच्छायाखचितावलयो येषां तानि, तैः (बहुव्रीहि) । बलि शब्द का प्रयोग यहाँ चामरदण्ड के अर्थ में हुआ है—'बलिश्चामरदण्डे च जराविश्लथचर्मणि'—विश्वकोश । क्लान्तहस्ताः— क्लान्ताः हस्ताः यासां ताः [बहुव्रीहि] । क्लान्तः—क्लम्+क्त । हाथ में चँवर लेकर किये जाने वाले नृत्य को देशिक नृत्य कहते हैं जैसा कि

नृत्यसर्वस्व में कहा गया है—खड्गकन्दुकवस्त्रादि दण्डिकाचामरस्रजः। वीणां च धृत्वा यत्कुर्युर्नृत्यं तद्देशिकं भवेत् ।।" वेश्याः--वेशेन शोभन्ते इति—इस अर्थ में 'कर्मवेश्याद्यत्' से यत् प्रत्यय हुआ है। वेश+यत्+टाप् । अथवा वेशे वेश्यावाटे भवा इस अर्थ में 'दिगादिभ्यो यत्' से यत् प्रत्यय होता है। 'वारस्त्री गणिका वेश्या रूपाजीवा'—अमरकोश। त्वत्तः—युष्मद्+तसिल् । यहाँ 'प्रत्ययोत्तरपदयोश्च' इस सूत्र से युष्मद् को त्वदादेश हो जाता है । नखपदसुखान्—नखानां पदानि नखपदानि, नखपदेषु सुखाः तान् (सप्तमी तत्पुरुष) । यहाँ नखपद शब्द का लक्षणया नखक्षत अर्थ होगा । सुखाः—सुखयति इति सुखाः, सुख+अच् । 'सुखहेतौ सुखे सुखम्'—शब्दार्णव । प्राप्य—प्र+आप्+क्त्वा→ल्यप् । वर्षाग्रबिन्दून्--अग्राश्च ते विन्दवः अग्रविन्दवः (कर्मधारय), वर्षस्य अग्रविन्दवः वर्षाग्रविन्दवः, तान् (षष्ठी तत्पुरुष) । आमोक्ष्यन्ते--आङ्+मुच्+लृट् प्र० पु० व० व० । मधुकरश्रेणिदीर्घान्—मधुकराणां श्रेणयः (षष्ठी तत्पुरुष), मधुकरश्रेणयः इव दीर्घाः तान् । यहाँ 'उपमानानि सामान्यवचनैः' से समास हुआ है। मधुकरः—मधु करोतीति तच्छीलः-मधु+कृ+ट । यहाँ 'कृञो हेतुताच्छील्यानुलोम्येषु' इस सूत्र से ताच्छील्यार्थ में ट प्रत्यय हुआ है। कटाक्षान्—कटं=गण्डम्, अक्षन्ति=व्याप्नुवन्ति इति कटाक्षाः, तान् । कट+अक्ष्+अण् । 'कटाक्षोऽपाङ्गदर्शने'—अमरकोश । वेश्याओं के द्वारा कटाक्ष छोड़ने से यहाँ शृङ्गार की व्यंजना हो रही है। मेघ शिव की उपासना के फलस्वरूप कमनीय कामनियों के दर्शन प्राप्त करता है इससे यह भी ध्वनित हो रहा है। यहाँ लुप्तोपमालङ्कार है । प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति तथा मन्दाक्रान्त छन्द है ॥३९॥

प्रसङ्ग—यक्ष कहता है कि हे मेघ ! सायंकालीन पूजन के पश्चात् जब भगवान् शङ्कर ताण्डव नृत्य प्रारम्भ कर दें तो तुम जपाकुसुम के समान लाल-लाल सायंकालीन कान्ति को धारण करते हुये समुन्नत

बाहुवन को मण्डलाकार से व्याप्त करते हुये और गजासुर के चर्म को देखने से उत्पन्न भय के दूर हो जाने के कारण पार्वती के द्वारा निश्चल दृष्टि से जिसकी भक्ति देखी जाती है, इस प्रकार के तुम गजासुर के आर्द्र चर्म को धारण करने की भगवान् शिव की इच्छा को पूर्ण कर देना—

पश्चादुच्चैर्भुजतरुवनं मण्डलेनाभिलीनः
सान्ध्यं तेजः प्रतिनवजपापुष्परक्तं दधानः ।
नृत्यारम्भे हर पशुपतेरार्द्रनागाजिनेच्छां
शान्तोद्वेगस्तिमितनयनं दृष्टभक्तिर्भवान्या ॥४०॥

पदच्छेद—पश्चात् उच्चैः भुजतरुवनं मण्डलेन अभिलीनः सान्ध्यं तेजः प्रतिनवजपापुष्परक्तं दधानः । नृत्यारम्भे हर पशुपतेः आर्द्रनागाजिनेच्छां शान्तोद्वेगस्तिमितनयनं दृष्टभक्तिः भवान्या ॥४०॥

अन्वय—पश्चात् पशुपतेः नृत्यारम्भे प्रतिनवजपापुष्परक्तं सान्ध्यं तेजः दधानः उच्चैः भुजतरुवनं मण्डलेन अभिलीनः भवान्या शान्तोद्वेगस्तिमितनयनं दृष्टिभक्तिः आर्द्रनागाजिनेच्छां हर ॥४०॥

शब्दार्थ—पश्चात्=सायंकालीन पूजा के अनन्तर, पशुपतेः=महादेव के, नृत्यारम्भे=नृत्य के प्रारम्भ में प्रतिनवजपापुष्परक्तम्=नवीन जपापुष्प के समान लाल, सान्ध्यम्=सायंकालीन, तेजः=तेज को, दधानः=धारण करते हुये, उच्चैः=ऊँचे, भुजतरुवनम्=बाहुरूपी वृक्षों के वन पर, मण्डलेन=मण्डलाकार रूप से, अभिलीनः=व्याप्त करते हुये, भवान्या=पार्वती के द्वारा, शान्तोद्वेगस्तिमितनयनम्=उद्वेग अर्थात् भय के शान्त हो जाने से निश्चल नेत्रों से, दृष्टभक्तिः=जिसकी भक्ति देखी गई है ऐसे तुम, आर्द्रनागाजिनेच्छाम्=(महादेव की) गजासुर के आर्द्र चर्म को ओढ़ने की इच्छा को, हर=दूर कर देना ॥४०॥

हिन्दी अनुवाद—सायंकालीन पूजन के पश्चात् महादेव के नृत्य के प्रारम्भ में नवीन जपा कुसुम के समान लाल-लाल सायंकालीन कान्ति को धारण करते हुये, ऊँचे बाहुरूपी वृक्षों के वन पर मण्डलाकार रूप से

व्याप्त करते हुए तथा पार्वती के द्वारा उद्वेगरहित अतएव निश्चल नेत्रों से देखी गई भक्ति वाले (तुम) गजासुर के आर्द्र चर्म को धारण करने की (महादेव की) इच्छा को दूर कर देना ॥ ४० ॥

संस्कृत व्याख्या—पश्चात्=सन्ध्यापूजानन्तरम्, पशुपतेः = ईशस्य, नृत्यारम्भे =ताण्डवनृत्योपक्रमे, प्रतिनवजपापुष्परक्तं =नवीनजपाप्रसूनारुणम्, सान्ध्यं =सायंकालिकम्, तेजः= प्रकाशम्, दधानः =धारयन्, उच्चैः=उन्नतम्, भुजतरुवनं =बाहुवृक्षविपिनम, मण्डलेन=मण्डलाकारेण, अभिलीनः=अभिव्याप्तः, भवान्या = गिरिजया, शान्तोद्वेगस्तिमितनयनं =व्यपगतभयनिश्चललोचनम्, दृष्टभक्तिः = अवलोकितप्रीतिः, आर्द्रनागाजिनेच्छां =शोणितक्लिन्नद्विपचर्माभिलाषम्, हर=निवर्तय । निदर्शनालङ्कारः । मन्दाक्रान्ता वृत्तम् ॥ ४० ॥

आलोक

पश्चात — अपरस्मिन् काले इस विग्रह से 'पश्चात्' इस सूत्र के द्वारा अपर को पश्चादेश तथा आति प्रत्यय के विधान होने से 'पश्चात्' शब्द बनता है । भुजतरुवनम् — भुजा एव तरवः भुजतरवः, भुजतरूणां वनम्, तत् (षष्ठी तत्पुरुष) । 'गहनं कानन वनम्' — अमरकोश । अभिलीनः— अभि+ली+क्त । सान्ध्यम् — सन्ध्यायां भवम् इस अर्थ में 'तत्रभवः' इस सूत्र से अण्, सन्ध्या + अण् । प्रतिनवजपापुष्परक्तम्—जपायाः पुष्पं जपापुष्पम्, प्रतिनवं च तत् जपापुष्पं प्रतिनवजपापुष्पम् (कर्मधारय), प्रतिनवजपापुष्पमिव रक्तं प्रतिनवजपापुष्परक्तम् । दधानः— धा + शानच् । नृत्यारम्भे— नृत्यस्य आरम्भः नृत्यारम्भः, तस्मिन् (षष्ठी तत्पुरुष) । हर —हृ धातु लोट् लकार म० पु० ए० व० । पशुपतेः— पशूनां पतिः पशुपतिः, तस्य (षष्ठी तत्पुरुष) । यहाँ 'पतिः समास एवं इस सूत्र के द्वारा पति शब्द की समास की घि संज्ञा होने से पशुपति शब्द के रूप हरि की तरह चलने लगते हैं अतएव षष्ठी के एकवचन में पशुपतेः शब्द बनता है । इस शब्द में प्रयुक्त पशु पद सामान्य पशु का वाचक नहीं है । शैवदर्शन में पशु, पाश और पति ये तीन पदार्थ के भेद माने गये हैं । अविद्या के पाश जीवात्मा को पशु कहते हैं । पाश की तरह बन्धन के कारण अविद्या को पाश कहते हैं और अविद्या पाश से मुक्त भगवान् शिव

को पति कहते हैं। रभसकोश में पशु शब्द सर्व प्राणी वाचक माना गया है। पशुपति शब्द की मीमांसा करते हुए श्री मानुजिदीक्षित अमरकोश की रामाश्रमी टीका में इस प्रकार लिखते हैं। — "पशूनां जीवानां पतिः तिर्यक् जातौ पशुः प्रोक्तः सर्वप्राणिषु पुंस्ययम्। प्रमथानामिति वा। पशुरमृगादौ छगले प्रमथे च पुमानयम। इति तालव्यान्ते रभसात्।" आर्द्रनागाजिनेच्छाम्—नागस्य अजिनं नागाजिनम् (षष्ठी तत्पुरुष) आर्द्रं च तत् नागाजिनम आर्द्रनागाजिनम् (कर्मधारय) तस्य इच्छा, ताम् (षष्ठी तत्पुरुष)। नाग शब्द का प्रयोग यहाँ हाथी के अर्थ में हुआ है—"नागं नपुंसकं रङ्गे सीसके करणान्तरे। नागः पन्नगमातङ्गक्रूराचारिपु तोयदे। नागकेशरपुंनागनागदन्तकमस्तके। देहानिलप्रभेदे च श्रेष्ठे स्यादुत्तरस्थितः" — मेदिनीकोश। यहाँ पौराणिक कथा की ओर संकेत है जिसमें भगवान् शिव ने गजासुर के संहार करने के अनन्तर उसके रुधिरार्द्र चर्म को बाहुमण्डल से धारण करके ताण्डव नृत्य किया था। शान्तोद्वेगस्तिमितनयनम्—शान्तः उद्वेगः ययोस्ते शान्तोद्वेगे, शान्तोद्वेगे अतएव स्तिमिते नयने यस्मिन् कर्मणि तद् यथा स्यात्तथा (बहुव्रीहि)। यह क्रियाविशेषण है। दृष्टभक्तिः—दृष्टं भक्तिः यस्य सः (बहुव्रीहि)। यहाँ 'सामान्ये नपुंसकम्' इस सूत्र से दृष्टपद में क्लीबत्व हुआ है। यदि दृष्टा भक्तिः यस्य सः इस प्रकार विग्रह किया जाये तो स्त्रियाः पुंवद्भाषितपुंस्कादनूङ्' इत्यादि सूत्र से प्रियादिगण में भक्ति शब्द का पाठ होने से यहाँ दृष्टा पद का पुंवद्भाव नहीं होगा और तब दृष्टाभक्तिः ऐसा रूप बनेगा जोकि इष्ट नहीं है। मल्लिनाथ के कथन को देखें —"दृष्टभक्तिरिति कथं रूपसिद्धिः। दृष्टशब्दस्य 'स्त्रियाः पुंवत्'—इत्यादिना पुंवद्भावस्य दुर्घटत्वादपूरणीप्रियादिष्विति निषेधात्। भक्तिशब्दस्य प्रियादिषु पाठादिति। तदेतच्चोद्यं दृढभक्तिरिति शब्दमाश्रित्य प्रतिविहितं गणव्याख्याने दृढं भक्तिरस्येति नपुंसकं पूर्वपदम्। अदार्ढ्यनिवृत्तिपरत्वे दृढशब्दाल्लिङ्गविशेषस्यानुपकारित्वात्स्त्रीत्वमविवक्षितमिति। भोजराजस्तु —'भक्तौ च कर्मसाधनायामित्यनेन सूत्रेण भज्यते सेव्यत इति कर्मार्थत्वे भवानीभक्तिरित्यादि भवति। भावसाधनायां तु स्थिरभक्तिर्भवान्यामित्यादि भवति' इत्याह। तदेतत्सर्वं सम्यग्विवेचितं रघु-

वंशसञ्जीविन्यां 'दृढभक्तिरिति ज्येष्ठे' इत्यत्र । तस्माद् दृष्टभक्तिरित्यत्रापि मतभेदेन पूर्वपदस्य स्त्रीत्वेन नपुंसकत्वेन च रूपसिद्धिरस्तीति स्थितम् ।" भवान्या — भवस्य पत्नी भवानी, तया । 'शिवा भवानी रुद्राणी शर्वाणी सर्वमङ्गला' — अमरकोश । यहाँ भुजतरुवनम् में बाहु में वृक्ष का आरोप होने से रूपक अलङ्कार है । प्रतिनवजपापुष्परक्तम् में लुप्तोपमा तथा सायंकालिक तेज को मेघ के द्वारा धारण किये जाने से असम्भवद् वस्तुसम्बन्धः निदर्शना है । निदर्शना का लक्षण —'अभवन् वस्तुसम्बन्धः उपमापरिकल्पकः । निदर्शना भवेत्सेयं मम्मटेन यथोदिता ।।' प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति तथा मन्दाक्रान्ता छन्द है ।। ४० ।।

प्रसङ्ग — यक्ष कहता है कि हे मेघ ! उस उज्जयिनी नामकी नगरी में रात्रि में अभिसारिकायें रमण के लिए अपने प्रियतमों के घरों को जा रही होंगी । उस समय राजमार्ग पर अन्धकार होगा अतएव तुम अपनी बिजली के प्रकाश से उन्हें मार्ग दिखला देना परन्तु उस समय न तो तुम वृष्टि करना और न ही गरजना क्योंकि वे अभिसारिकायें भीरु स्वभाव की होती हैं —

गच्छन्तीनां रमणवसतिं योषितां तत्र नक्तं
रुद्धालोके नरपतिपथे सूचिभेद्यैस्तमोभिः ।
सौदामन्या कनकनिकषस्निग्धया दर्शयोर्वीं
तोयोत्सर्गस्तनितमुखरो मा स्म भूर्विक्लवास्ताः ।। ४१ ।।

पदच्छेद—गच्छन्तीनां रमणवसतिं योषितां तत्र नक्तं रुद्धालोके नरपतिपथे सूचिभेद्यैः तमोभिः । सौदामन्या कनकनिकषस्निग्धया दर्शय उर्वीं तोयोत्सर्ग–स्तनितमुखरः मा स्म भूः विक्लवाः ।। ४१ ।।

अन्वय — तत्र नक्तं रमणवसतिं गच्छन्तीनां योषितां सूचिभेद्यैः तमोभिः रुद्धालोके नरपतिपथे कनकनिकषस्निग्धया सौदामन्या उर्वीं दर्शय । तोयोत्सर्गस्तनितमुखरः मा स्म भूः, ताः विक्लवाः ।। ४१ ।।

शब्दार्थ — तत्र =वहाँ (उज्जयिनी में), नक्तम् = रात्रि में, रमण–वसतिम् = प्रेमियों के घर, गच्छन्तीनाम् = जाती हुईं, योषिताम् = स्त्रियों को, सूचिभेद्यैः=प्रगाढ़, तमोभिः =अन्धकार से, रुद्धालोके= प्रकाशरहित, नरपतिपथे=राजमार्ग पर कनकनिकषस्निग्धया=कसौटी

पर खींची गई स्वर्णरेखा के समान चमकने वाली, सौदामन्या = बिजली से, उर्वी =भूमि को, दर्शय=दिखला देना, तोयोत्सर्गस्तनितमुखरः=जलवृष्टि तथा गरज से मुखर, मा स्म भूः=न होना, ताः=वे, विक्लवाः=भीरु होती हैं ।। ४१ ।।

हिन्दी अनुवाद — वहाँ (उज्जयिनी में) रात्रि में प्रेमियों के घर जाती हुई कामिनियों को प्रगाढ़ अन्धकार के कारण प्रकाशरहित राजमार्ग पर कसौटी पर खींची गई सुवर्ण रेखा के समान चमकने वाली विद्युत् से भूमि (मार्ग भूमि) को दिखला देना। जलवृष्टि तथा गरज से वाचाल न होना क्योंकि वे (स्त्रियाँ) भीरु होती हैं ।। ४१ ।।

संस्कृत व्याख्या — तत्र = उज्जयिन्याम्, नक्तं = रात्री, रमणवसतिं = प्रियतमभवनं, गच्छन्तीनां = व्रजन्तीनाम, योषितां = स्त्रीणाम्, सूचिभेद्यैः = निविडैः, तमोभिः = अन्धकारैः, रुद्धालोके = अवरुद्धदृष्टि-प्रसारे, नरपतिपथे = भूपतिमार्गे, कनकनिकषस्निग्धया = स्वर्णशाणरेखा-समुज्ज्वलया, सौदामन्या = विद्युता, उर्वीं = पृथ्वीं मार्गं वा, दर्शय = आलोकय, तोयोत्सर्गस्तनितमुखरः = जलवृष्टिगर्जितशब्दायमानः, मा स्म भूः = नो भव (यतोहि), ताः = योषितः, विक्लवाः = भीरवः। काव्यलिंगमलङ्कारः। मन्दाक्रान्ता वृत्तम् ।। ४१ ।।

आलोक

नक्तम्—यह अव्ययपद है। गच्छन्तीनाम्—गम्+शतृ+ङीप। रमणवसतिम्—रमणस्य वसतिः रमणवसतिः, ताम् (षष्ठी तत्पुरुष)। रमणः—रमयतीति-रम्+णिच्+ल्यु (कर्तरि)। वसतिः— वस्+अति। योषिताम्— योषति युष्यते वा इस अर्थ में सेवार्थक 'युष सौत्र' धातु से 'हृसृरुहियुषिभ्य इतिः' से इति प्रत्यय। "स्त्री योषिदवला योषा नारी सीमन्तिनी वधूः। प्रतीपदर्शिनी वामा वनिता महिला तथा ।।" रुद्धालोके— रुद्धः आलोकः यस्मिन्, तस्मिन् (बहुव्रीहि) रुद्धः—रुध्+क्त। आलोकः—आङ्+लोक्+घञ्। 'आलोको दर्शन-द्योतौ'—अमरकोश। नरपतिपथे— नरपतेः पन्थाः नरपतिपथः, तस्मिन् (षष्ठी तत्पुरुष) नरपतिपथिन्+अ। सूचिभेद्यैः—सूच्या भेद्यानि, सूचिभेद्यानि, तैः (तृतीया तत्पुरुष)। भेद्यम्—भेत्तुं योग्यम्—भिद्+ण्यत्। प्रगाढ अन्धकार को सुचिभेद्य कहा गया है। सौदामन्या—

सुदाम्ना अद्रिणा एकदिक्—सुदामन्+अण+ङीप्। सुदाम्नि मेघे भवा वा। 'तडित्सौदामनी विद्युच्चञ्चला चपला अपि'— अमरकोश। कनकनिकष-स्निग्धया—कनकस्य निकषः कनकनिकषः (षष्ठी तत्पुरुष), तस्य इव स्निग्धं (तेजः) यस्याः तया (बहुव्रीहि)। स्निग्ध शब्द का प्रयोग यहाँ तेज के अर्थ में हुआ है। 'स्निग्धं तु मसृणे सान्द्रे रम्ये क्लीबे च तेजसि,—शब्दार्णव। दर्शय—दृश्+णिच्+लोटलकार म० पु० ए० व०। तोयोत्सर्गस्तनितमुखरः— तोयोत्सर्गश्च स्तनितं च तोयोत्सर्गस्तनिते (द्वन्द्व), तोयोत्सर्गस्तनिताभ्यां मुखरः (तृतीया-तत्पुरुष समास)। उत्सर्गः— उत्+सृज+घञ्। स्तनितम्—स्तन+क्त। मुखरः—मुखमस्ति यस्य सः— मुख+र। यहाँ 'रप्रकरणे खमुखकुञ्जेभ्य उपसंख्यानम्' से र प्रत्यय हुआ है। मा स्म भूः—यहाँ 'न माङ्योगे' से अडागम का निषेध हो जाता है। कवि ने अभिसारिका नायिकाओं के व्यवहार को प्रस्तुत किया है। अभिसारिका का लक्षण— "अभिसारयते कान्तं या मन्मथवशंवदा। स्वयं वाभिसरत्येषा धीरैरुक्ताभिसारिका ॥" विभिन्न प्रकार की अभिसारिकाओं के व्यापारों की चर्चा करते हुए कविराज विश्वनाथ लिखते हैं—"संलीना स्वेषु गात्रेषु मूकीकृतविभूषणा। अवगुण्ठनसंवीता कुलजाभिसरेद्यदि ॥ विचित्रोज्ज्वलवेषा तु रणन्नूपुरकङ्कणा। प्रमोदस्मेरवदना स्याद्वेश्याभिसरेद्यदि ॥ मदस्खलितसंलापा विभ्रमोत्फुल्ललोचना। आविद्धगतिसञ्चारा स्यात्प्रेष्याभिसरेद्यदि ॥" अभिसारिकाओं के अभिसार-स्थल ये हैं — "क्षेत्रं वाटी भग्नदेवालयो दूतीगृहं वनम्। मालापञ्चः श्मशानं च नद्यादीनां तटी तथा ॥ एवं कृताभिसाराणां पुंश्चलीनां विनोदने। स्थानान्यष्टौ तथा ध्वान्तच्छन्ने कुत्रचिदाश्रये ॥" कनकनिकषस्निग्धया पद में लुप्तोपमा— अलङ्कार है। मुखरता निषेध के प्रति विक्लवास्ताः इस वाक्यार्थ की कारणता होने से वाक्यार्थ हेतु काव्यलिङ्ग अलंकार है। प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति तथा मन्दाक्रान्ता छन्द है ॥ ४१ ॥

प्रसङ्ग—यक्ष कहता है कि हे मेघ! अभिसारिकाओं को मार्ग दिखलाने के कारण बहुत समय तक चमकती हुई तुम्हारी पत्नी विद्युत् अवश्य ही थक जायेगी अतएव वहाँ तुम किसी भवन के उस छज्जे पर जहाँ कबूतर

सोये हुए हों, रात्रि को व्यतीत कर लेना। प्रातःकाल होते ही वहाँ से प्रस्थान कर देना क्योंकि मेरा सन्देश ले जाना आवश्यक है--

तां कस्यांचिद्भवनवलभौ सुप्तपारावतायां
नीत्वा रात्रिं चिरविलसनात्खिन्नविद्युत्कलत्रः ।
दृष्टे सूर्ये पुनरपि भवान् वाहयेदध्वशेषं
मन्दायन्ते न खलु सुहृदामभ्युपेतार्थकृत्याः ।। ४२ ।।

पदच्छेद— तां कस्यांचित् भवनवलभौ सुप्तपारावतायां नीत्वा रात्रिं चिरविलसनात् खिन्नविद्युतत्कलत्रः । दृष्टे सूर्ये पुनः अपि भवान् वाहयेत् अध्वशेष मन्दायन्ते न खलु सुहृदाम् अभ्युपेतार्थकृत्याः ।। ४२ ।।

अन्वय— चिरविलसनात् खिन्नविद्युत्कलत्रः भवान् सुप्तपारावतायां कस्यांचित् भवनवलंभौ तां रात्रिं नीत्वा सूर्ये दृष्टे पुनः अपि अध्वशेषं वाहयेत् सुहृदाम् अभ्युपेतार्थकृत्याः न मन्दायन्ते खलु ।। २४ ।।

शब्दार्थ—चिरविलसनात्=बहुत समय तक चमकने के कारण, खिन्नविद्युत्कलत्रः=थकी हुई विद्युत् रूपी पत्नी वाले, भवान्=आप, सुप्तपारावतायाम्=सोये हुए कबूतरों वाले, कस्यांचित्=किसी, भवनवलभौ=घर के छज्जे पर, ताम्=उस, रात्रिम्=रात्रि को, नीत्वा=व्यतीत कर, सूर्ये=सूय के, दृष्टे=दिखाई देने पर, पुनरपि=फिर भी, अध्वशेषम्=शेषमार्ग को, वाहयेत्=तय करें, सुहृदाम्=मित्रों के, अभ्युपेतार्थकृत्याः= कार्यों को स्वीकार करने वाले (सज्जन), न मन्दायन्ते-खलु= शिथिल नहीं होते हैं।। ४२ ।।

हिन्दी अनुवाद— बहुत समय तक चमकने के कारण थकी हुई विद्युत् रूपी पत्नी वाले आप सोये हुए कबूतरों वाले घर के किसी छज्जे पर उस रात्रि को व्यतीत कर सूर्य के दिखलाई देने पर पुनः शेषमार्ग को तय करें क्योंकि मित्रों के कार्य को स्वीकार करने वाले (सज्जन) शिथिल नहीं होते हैं।। ४२ ।।

संस्कृत व्याख्या — चिरविलसनात्=बहुसमयप्रस्फुरणात्; खिन्नविद्युत्कलत्रः=क्लान्ततडित्भार्यः, भवान्=त्वम्, सुप्तपारावतायां=निद्राणकपोतायाम्, कस्यां—चित्=एकस्याम्, भवनवलभौ=गृहाच्छादनो-

परिभागे तां=पूर्वोक्ताम्, रात्रिं=रजनीम्, नीत्वा=यापयित्वा, सूर्ये= दिनकरे, दृष्टे=विलोकिते, पुनरपि=भूयोऽपि, अध्वशेषं=मार्गशेषम् वाहयेत्=प्राप्नुयात्, सुहृदां=मित्राणाम्, अभ्युपेतार्थकृत्याः=स्वीकृत-प्रयोजनकार्याः, न मन्दायन्ते=नहि मन्दाः भवन्ति, खलु=निश्चयेन । अर्थान्तरन्यासोऽलङ्कारः । मन्दाक्रान्ता वृत्तम् ॥ ४२ ॥

आलोक

भवनवलभौ— भवनस्य वलभिः भवनवलभिः, तस्याम् (षष्ठी तत्पुरुष) । 'आच्छादनं स्याद्वलभी गृहाणाम्'—हलायुधकोश । सुप्तपारावतायाम्— सुप्ताः पारावताः यस्याम्, तस्याम् (बहुव्रीहि) । सुप्तः—स्वप्+क्त । 'पारावतः कलरवः कपोतः'— अमरकोश । नीत्वा— नी+क्त्वा । चिरविल-सनात्— चिरं विलसनं चिरविलसनम्, तस्मात् (सुप् सुपा समास) । यहाँ 'हेत्वर्थ' में पञ्चमी हुई है । विलसनम्—वि+लस्+ल्युट् । यहाँ पर चमकने के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है । खिन्नविद्युत्कलत्रः—विद्युदेव कलत्रं विद्युत्कलत्रम, खिन्नं विद्युतकलत्रं यस्य सः (बहुव्रीहि) । खिन्नम्— खिद्+क्त । विद्युत्— विद्योतते इति—वि+द्युत्+क्विप् । 'तडित्सौदामनी विद्युच्चञ्चला चपला-ऽपि'—अमरकोश । दृष्टे—दृश्+क्त । सूर्ये--सरति=गच्छति आकाशे इति सूर्यः, तस्मिन् । यहाँ 'राजसूयसूर्यमृषोद्यरुच्यकुप्यकृष्टपच्याऽव्यथाः' इस सूत्र से 'सृ' धातु से क्यप् प्रत्यय तथा उत्व होता है । भवान्— भातीति— भा+डवतु । वाहयेत्— वह्+णिच्+विधिलिङ्लकार प्र० पु० ए० व० । अध्वशेषम्—अध्वनः शेषः अध्वशेषः, तम् (षष्ठी तत्पुरुष) । मन्दायन्ते — मन्दा भवन्ति इति— मन्द+क्यष्+लट्लकार प्र० पु० ब० व० । यहाँ 'लोहितादिडाज्भ्यः क्यष्' इस सूत्र से क्यष् प्रत्यय तथा 'वा क्यषः' से विकल्प से आत्मनेपद । सुहृदाम्-शोभनं हृदयं येषां ते सुहृदः, तेषाम् (बहुव्रीहि)। यहाँ 'सुहृद्दुर्हृदौ मित्रामित्रयोः' इस सूत्र से हृदय के स्थान पर हृदादेश हुआ है । अभ्युपेतार्थकृत्याः— अर्थस्य कृत्या अर्थकृत्या (षष्ठी तत्पुरुष) । अभ्युपेता अर्थकृत्या यैस्ते (बहुव्रीहि) । कृत्या-कृ+क्यप्+टाप् । अभ्युपेता— अभि+उप+इण्+क्त+टाप् । 'कृत्या क्रियादेवतयोस्त्रिषु भेद्ये घनादिभिः'— अमरकोश । यक्ष मेघ को परामर्श देता है कि वह विद्युत् रूपी पत्नी के

परिश्रान्त हो जाने पर रात्रि भर वहीं विश्राम कर ले। विद्युत्कलत्रः पद के द्वारा स्त्रियों की चञ्चलता तथा विलास ध्वनित होता है। खिन्न पद के द्वारा स्त्रियों की कोमलता की ओर भी सङ्केत है। मन्दायन्ते........ इत्यादि सुन्दर सूक्ति है। महात्मा भर्तृहरि भी लिखते हैं-- प्रारब्धमुत्तमगुणा न परित्यजन्ति। यहाँ विद्युत् में कलत्र का आरोप तथा मेघ में विद्युत् पतित्व का आरोप होने से रूपक अलंकार है तथा सामान्य अर्थ के द्वारा विशेष अर्थ के समर्थित होने से अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है। दोनों का अङ्गाङ्गिभाव सङ्कर है। प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति तथा मन्दाक्रान्ता छन्द है॥ ४२॥

प्रसङ्ग--यक्ष कहता है कि हे मेघ! प्रातःकाल सूर्योदय के समय में प्रियतमों को खण्डिता नायिकाओं के आँसुओं को पोछना चाहिये। सूर्य रात्रि भर किसी दूसरी प्रेमिका के पास रहा है। वह अपनी खण्डिता प्रेमिका कमलिनी के पास उसके कमल रूप मुख से ओस रूपी आँसुओं को अपने किरण रूपी हाथों से पोछने के लिये प्रयत्न करेगा। ऐसे समय में तुम्हें सूर्य के मार्ग से हट जाना चाहिये अन्यथा वे तुमसे क्रुद्धित होंगे--

तस्मिन् काले नयनसलिलं योषितां खण्डितानां
शान्तिं नेयं प्रणयिभिरतो वर्त्म भानोस्त्यजाशु।
प्रालेयास्रं कमलवदनात्सोऽपि हर्तुं नलिन्याः
प्रत्यावृत्तस्त्वयि कररुधि स्यादनल्पाभ्यसूयः॥४३॥

पदच्छेद--तस्मिन् काले नयनसलिलं योषितां खण्डितानां शान्तिं नेयं प्रणयिभिः अतः वर्त्म भानोः त्यज आशु। प्रालेयास्रं कमलवदनात् सः अपि हर्तुं नलिन्याः प्रत्यावृत्तः त्वयि कररुधि स्यात् अनल्पाभ्यसूयः॥४३॥

अन्वय--तस्मिन् काले प्रणयिभिः खण्डितानां योषितां नयनसलिलं शान्तिं नेयम् अतः भानोः वर्त्म आशु त्यज। सः अपि नलिन्याः कमलवदनात् प्रालेयास्रं हर्तुं प्रत्यावृत्तः त्वयि कररुधि अनल्पाभ्यसूयः स्यात्॥४३॥

शब्दार्थ--तस्मिन् काले=उस समय (अर्थात् सूर्योदय होने पर), प्रणयिभिः=प्रेमियों के द्वारा, खण्डितानां=खण्डिता, योषिताम्=नायिकाओं

के, नयनसलिलम् = आँसू, शान्तिम् = शान्त, नेयम् = किये जाने चाहियें, अतः = इसलिये, भानोः = सूर्य के, वर्त्म = मार्ग को, आशु = शीघ्र, त्यज = छोड़ देना, सोऽपि = वे सूर्य भी, नलिन्याः = कमलिनी के, कमलवदनात् = कमलरूपी मुख से, प्रालेयास्रम् = हिमरूप आँसू को, हर्तुम् = पोछने के लिये, प्रत्यावृत्तः = लौटे हुये, त्वयि = तुम्हारे, कररुधि = किरण या हाथ को रोकने पर, अनल्पाभ्यसूयः = अत्यधिक ईर्ष्या वाले, स्यात् = होंगे ॥४३॥

हिन्दी अनुवाद – उस समय (अर्थात् सूर्योदय होने पर) प्रणयीजनों के द्वारा खण्डिता नायिकाओं के आँसू शान्त किये जाने चाहिये इसलिये सूर्य के मार्ग को शीघ्र (ही) छोड़ देना। वे सूर्य भी कमलिनी के कमलरूपी मुख से हिमरूप आँसुओं को पोछने के लिये लौटे हुये तुम्हारे किरणरूपी हाथ के रोके जाने पर अत्यधिक ईर्ष्या वाले होंगे ॥४३॥

संस्कृत व्याख्या – तस्मिन् = पूर्वोक्ते, काले = समये, प्रणयिभिः = वल्लभैः, खण्डितानां योषितां = नायिकाविशेषाणाम्, नयनसलिलं = अश्रु, शान्ति = शमम्, नेयं = नेतव्यम्, अतः = अस्मात् कारणात्, भानोः = सूर्यस्य, वर्त्म = मार्गम्, आशु = शीघ्रम्, त्यज = मुञ्च, सोऽपि = सूर्योऽपि, नलिन्याः = कमलिन्याः, कमलवदनात्, = सरसिजाननात्, प्रालेयास्रं = हिमाश्रु, हर्तुं = दूरीकर्तुम्, प्रत्यावृत्तः = प्रत्यागतः, त्वयि = भवति, कररुधि = किरणरोधके, अनल्पाभ्यसूयः = प्रचुरेर्ष्यः, स्यात् = भवेत्। सामसोक्तिरलङ्कारः। मन्दाक्रान्ता वृत्तम् ॥४३॥

आलोक

तस्मिन् काले–सूर्य के उदित होने पर। नयनसलिलम्–नयनयोः सलिलम् (षष्ठी तत्पुरुष)। 'सलिलं कमलं जलम्'—अमरकोश। नी धातु 'अकथितं च' इस सूत्र के विधान से द्विकर्मक है। इसका मुख्य कर्म नयनसलिलम् है तथा गौण कर्म शान्तिम् है। खण्डितानां योषिताम्—आठ प्रकार की नायिकाओं में से खण्डिता नायिका अन्यतम है। किसी दूसरी स्त्री के संसर्ग के चिह्नों से युक्त नायक जिसके पास जाता है, ईर्ष्या से कलुषित ऐसी नायिका

खण्डिता कहलाती है ।—'पार्श्वमेति प्रियो यस्या अन्यसम्भोगचिह्नितः । सा खण्डितेति कथिता धीरैरीर्ष्याकषायिता ।।" शान्तिम्—शम्+क्तिन् । नेयम्—नी+यत् । अतः—इदम्+तसिल् । प्रालेयास्रम्—प्रालेयम् एव अस्रम्, तत् (रूपक समास) । प्रालेयम्-प्रलयात, आगतम् प्रलय+अण् । यहाँ 'तत आगतः' से अण् तथा 'केकयमित्रयुप्रलयानां यादेरियः' इति यादेरियः । कमलवदनात्—कमलमेव वदन कमलवदनम्, तस्मात् । हर्तुम्—हृ+तुमुन् । नलिन्याः—नलानि (कमलानि) यस्याः सन्तीति नलिनी, तस्याः । नल+इनि +ङीप् । 'तृणेऽम्बुजे जलम्, ना तु राज्ञि, नाले तु न स्त्रियाम्'-शब्दार्णव । प्रत्यावृत्तः—प्रति+आ+वृत्+क्त । कररुधि—करान् रुणद्धि इति कररुत् । तस्मिन् । कर+रुध्+क्विप् । अनल्पाभ्यसूय.—अनल्पा अभ्यसूया यस्य सः (बहुव्रीहि) । अनल्पा—न अल्पा अनल्पा (नञ् तत्पुरुष) । इस श्लोक में कमलिनी को नायिका तथा सूर्य का नायक के रूप में प्रस्तुत किया गया है । नायक सूर्य रात्रि में कमलिनी को छोड़कर किसी दूसरी प्रेयसी के पास रहा है अत-एव कमलिनी रात्रि भर रोई है । इस प्रकार की नायिका को खण्डिता नायिका कहते हैं । प्रातःकाल सूर्य नायक नलिनी नायिका के मुखकमल पर स्थित हिमाश्रु को अपने किरण करों से पोछता है । यक्ष मेघ को समझाता है कि ऐसी स्थिति में तुम्हें वहाँ व्यवधान के रूप में नहीं स्थित होना चाहिये क्योंकि ऐसा करने से भगवान् सूर्य ईर्ष्यान्वित होंगे और उनके साथ विद्वेष से तुम्हारे कल्याण का विनाश तथा रौरव नामक नरक की प्राप्ति होगी । कहा भी गया है—'आत्मानं चार्कमीशानं विष्णुं वा द्वेष्टि यो जनः । श्रेयांसि तस्य नश्यन्ति रौरवं च भवेद् ध्रुवम् ।।" यहाँ लिङ्गसाम्य से कमलिनी और सूर्य में क्रमशः नायिका और नायक के व्यवहार के समारोपित होने से समासोक्ति अलङ्कार है । सूर्य के वर्त्मत्याग के प्रति उत्तरार्द्ध का वाक्यार्थ हेतु होने से वाक्यार्थ हेतुक काव्यलिङ्ग अलङ्कार है । कररुधि में स्थित कर शब्द के श्लिष्ट होने से श्लेष अलङ्कार है । इनका अङ्गाङ्गिभाव सङ्कर है । प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति तथा मन्दाक्रान्ता छन्द है ।।४३।।

प्रसङ्ग—यक्ष कहता है कि हे मेघ! महाकाल के निकट गम्भीरा नामक

नदी के चित्त के समान निर्मल सलिल में निसर्ग सुन्दर तुम्हारा शरीर प्रवेश को प्राप्त कर लेगा ऐसी स्थिति में तुम्हें गम्भीरा के हाव-भावों को विफल नहीं करना चाहिये—

गम्भीरायाः पयसि सरितश्चेतसीव प्रसन्ने
छायात्मापि प्रकृतिसुभगो लप्स्यते ते प्रवेशम् ।
तस्मादस्याः कुमुदविशदान्यर्हसि त्वं न धैर्या-
न्मोघीकर्तुं चटुलशफरोद्वर्तनप्रेक्षितानि ।।४४।।

पदच्छेद - गम्भीरायाः पयसि सरितः चेतसि इव प्रसन्ने छायात्मा अपि प्रकृतिसुभगः लप्स्यते ते प्रवेशम् । तस्मात् अस्याः कुमुदविशदानि अर्हसि त्वं न धैर्यात् मोघीकर्तुं चटुलशफरोद्वर्तनप्रेक्षितानि ।।४४।।

अन्वय—गम्भीरायाः सरितः चेतसि इव प्रसन्ने पयसि प्रकृतिसुभगः ते छायात्मा अपि प्रवेशं लप्स्यते । तस्मात् अस्याः कुमुदविशदानि चटुलशफरोद्वर्तन-प्रेक्षितानि त्वं धैर्यात् मोघीकर्तुं न अर्हसि ।।४४।।

शब्दार्थ—गम्भीरायाः=गम्भीरा, सरितः=नदी के, चेतसि इव=चित्त के समान, प्रसन्ने=निर्मल, पयसि=जल में, प्रकृतिसुभगः=स्वभाव से सुन्दर, ते=तुम्हारा, छायात्मा=प्रतिविम्ब रूप शरीर, अपि=भी, प्रवेशम्=प्रवेश को, लप्स्यते=प्राप्त करेगा, तस्मात्=इसलिये, अस्याः=इसके, कुमुदविश-दानि=कुमुद के समान उज्ज्वल, चटुलशफरोद्वर्तनप्रेक्षितानि=चञ्चल मछ-लियों के उद्वर्तनरूपी चितवनों को, त्वम्=तुम, धैर्यात्=धैर्य से, मोघीकर्तुम्=निष्फल करने के लिये, न अर्हसि=योग्य नहीं हो ।।४४।।

हिन्दी अनुवाद--गम्भीरा नामक नदी के चित्र के समान स्वच्छ जल में, स्वभाव से सुन्दर तुम्हारा प्रतिविम्ब रूप शरीर भी प्रवेश को प्राप्त कर लेगा इसलिये इस (गम्भीरा) के कुमुद के समान धवल चञ्चल मछलियों के उद्वर्तन (परिवर्तन या उछाल) रूपी चितवनों को तुम्हें धीरता के कारण निष्फल नहीं करना चाहिये ।।४४।।

संस्कृत व्याख्या—गम्भीरायाः=एतदाख्यायाः, सरितः=नद्याः, चेतसि इव

= मनसि इव, प्रसन्ने=स्वच्छे, पयसि=सलिले, प्रकृतिसुभगः=स्वभावसुन्दरः, ते=तव, छायात्मा अपि=प्रतिविम्बशरीरं च, प्रवेशं=निवेशम्, लप्स्यते=प्राप्स्यति, तस्मात्=कारणात्, अस्याः=गम्भीरायाः, कुमुदविशदानि=कैरव-धवलानि, चटुलशफरोद्वर्तनप्रेक्षितानि=चञ्चलप्रोष्ठीसमुल्लुण्ठनावलोकनानि, धैर्यात्=गाम्भीर्यात्, मोघीकर्तुं=निष्फलीकर्तुम्, न अर्हसि=न योग्योऽसि । रूपकमलङ्कारः । मन्दाक्रान्ता वृत्तम् ॥४४॥

आलोक

गम्भीरायाः—मालवदेश में वहने वाली नदी का नाम गम्भीरा है । पयसि—'पयः क़ीलालममृतम्'—अमरकोश । सरितः—सरति इति—'सृ गतौ' धातु से 'सरतेरितिः' इस सूत्र से इति प्रत्यय । "अथ नदी सरित् । तरङ्गिणी शैवलिनी तटिनी ह्रदिनी धुनी ॥"—अमरकोश । चेतसि—'चित्तं तु चेतो हृदयं स्वान्तं हृन्मानसं मनः'—अमरकोश । प्रसन्ने—प्र+सद्+क्त । छायात्मा—छाया चासौ आत्मा छायात्मा (कर्मधारय) । प्रकृतिसुभगः—प्रकृत्या सुभगः प्रकृतिसुभगः (तृतीया तत्पुरुष) । यहाँ प्रकृति शब्द में 'प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम्' से तृतीया हुई है । प्रकृतिः—प्र+कृ+क्तिन् । सुभगः—यहाँ सुभग शब्द सुन्दर के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है—"सुन्दरेऽधिकभाग्ये च दुर्दिनेतरवासरे । तुरीयांशे श्रीमति च सुभगः"—शब्दार्णव । लप्स्यते—लभ् धातु लृट् लकार प्र०पु० ए०व० । प्रवेशम्—प्र+विश्+घञ् । तस्मात्—यहाँ हेतु में पञ्चमी हुई है । कुमुदविशदानि—कुमुदानि इव विशदानि कुमुदविशदानि, तानि । यहाँ 'उपमानानि सामान्यवचनैः' से समास हुआ है । महामहोपाध्याय मल्लिनाथ ने कुमुदवद्विशदानि इस प्रकार का विग्रह किया है जिसका खण्डन करते हुये शारदारञ्जनराय ने लिखा है कि मल्लिनाथ के इस विग्रह में 'तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः' इस सूत्र के द्वारा वति का विधान होगा जो कि उचित नहीं है क्योंकि यहाँ क्रिया नहीं है । परन्तु वस्तुतः यहाँ राय जी की राय ही उचित नहीं है क्योंकि 'तत्र तस्यैव' इस सूत्र के द्वारा वति का विधान हो जायेगा । कुमुदम्—कौ मोदते—'मुद हर्षे' धातु से 'मूलविभुजादिभ्यः कः' से क प्रत्यय । "कुमुदं कैरवे रक्तपद्मे स्त्री कुम्भिकौषधौ । गम्भीर्यां पुंसि दिङ्नागे नाग-

शाखामृगान्तरे ॥"—मेदिनीकोश । अर्हसि--अर्ह् धातु लट् लकार म०पु० ए०व० । धैर्यात्--धीरस्य भावः कर्म वा धैर्यम्, तस्मात् । धीर+ष्यञ् । धैर्यात् का अर्थ धैर्यमाश्रित्य किये जाने से 'ल्यब्लोपे कर्मण्यधिकरणे च' से पञ्चमी हुई है । मल्लिनाथ ने धैर्य का अर्थ धाष्टर्य किया है जो कि प्रकृत अर्थ के अनुकूल नहीं है । मोघीकर्तुम्—अमोघानि मोघानि यथा सम्पद्यन्ते तथा कर्तुम्--मोघ+च्वि+कृ+तुमुन् । चटुलशफरोद्वर्तनप्रेक्षितानि—शफराणाम् उद्वर्तनानि शफरोद्वर्तनानि, चटुलानि च तानि शफरोद्वर्तनानि चटुलशफरोद्वर्तनानि (कर्मधारय), चटुलशफरोद्वर्तनानि एव प्रेक्षितानि, तानि । उद्वर्तनम्--उत्+वृत्+ल्युट् । प्रेक्षितम्—प्र+ईक्ष्+क्त । 'त्रिपु स्याच्चटुलं शीघ्रम्' —विश्वकोश । इस श्लोक से नायक-नायिका परक एक अन्य अर्थ भी ध्वनित होता है । गम्भीरा नदी से नायिका अर्थ अभिव्यञ्जित होता है जिस प्रकार प्रसन्न चित्त के समान गम्भीरा नामक नदी के निर्मल जल में निसर्ग सुन्दर मेघ का प्रतिबिम्ब रूप शरीर प्रवेश करता है उसी प्रकार किसी उत्कण्ठिता नायिका के निर्मल अन्तःकरण में उसके निसर्ग सुन्दर प्रियतम का स्वरूप भी प्रविष्ट हो जाता है और वह अपने उस प्रियतम पर चञ्चल चितवनों को डालती है । इधर कुमुद के समान धवल, चञ्चल मछलियों की उछाल रूपी चितवनों के द्वारा गम्भीरा मेघ के प्रति अपने विलास को अभिव्यक्त कर रही है उधर कुमुद के समान धवल और मछलियों की तरह चञ्चल नेत्रों से नायिका अपने प्रियतम पर कटाक्ष कर रही है । यक्ष का कथन है कि जिस प्रकार नायिका के कटाक्षों से आहत होकर नायक व्यर्थ नहीं होने देता है उसी प्रकार तुम्हें भी धीरता का अवलम्बन कर उसके प्रयासों को विफल नहीं करना चाहिये, अन्यथा अनुरक्ता नायिका के परित्याग से धूर्तत्व दोष आ जायेगा । धूर्त का लक्षण इस प्रकार है—"विलश्नाति नित्यं गमितां कामिनी-मतिसुन्दरः । उपैत्यरक्तां यत्नेन रक्तां धूर्तो विमुञ्चति ॥" इस श्लोक में पयः का चेतः के साथ, प्रेक्षितानि का कुमुदविशदानि के साथ साम्य होने से उपमा शाब्द तथा गम्भीरा का नायिका के साथ साम्य होने से उपमा आर्थ है अतः एकदेशविवर्तिनी उपमा है । कुमुदविशदानि में लुप्तोपमा है । उद्वर्तनों में

प्रेक्षितों के आरोप होने से रूपक है । नायक–नायिका के व्यवहारों की अभिव्यक्ति होने से समासोक्ति की भी व्यञ्जना हो रही है। प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति तथा मन्दाक्रान्ता छन्द है ॥४४॥

प्रसङ्ग---यक्ष कहता है कि हे मेघ ! वेत्र की शाखाओं तक पहुँचे हुये अतएव कुछ हाथ में पकड़े गये के समान तट रूप नितम्ब का परित्याग किये हुये उस गम्भीरा नामक नदी के नीले जल रूपी वस्त्र को हटाकर झुके हुये तुम्हारा वहाँ से आगे प्रस्थान अत्यन्त कठिन होगा क्योंकि सुरतरसविलासों से परिचित ऐसा कौन पुरुष होगा जो कि खुली हुयी जाँघों वाली ललना का रसास्वादन किये विना परित्याग कर दे—

तस्याः किञ्चित्करधृतमिव प्राप्तवानीरशाखं
हृत्वा नीलं सलिलवसनं मुक्तरोधोनितम्बम् ।
प्रस्थानं ते कथमपि सखे लम्बमानस्य भावि
ज्ञातास्वादो विवृतजघनां को विहातुं समर्थः ॥४५॥

पदच्छेद---तस्याः किञ्चित् करधृतम् इव प्राप्तवानीरशाख हृत्वा नीलं सलिलवसनं मुक्तरोधोनितम्बम् । प्रस्थानं ते कथम् अपि सखे लम्बमानस्य भावि ज्ञातस्वादः विवृतजघनां कः विहातुं समर्थः ॥४५॥

अन्वय—सखे ! प्राप्तवानीरशाखं किञ्चित् करधृतम् इव मुक्तरोधोनितम्बं तस्याः नीलं सलिलवसनं हृत्वा लम्बमानस्य ते प्रस्थान कथम् अपि भावि । ज्ञातास्वादः कः विवृतजघनां विहातुं समर्थः ॥४५॥

शब्दार्थ—सखे=हे मित्र, प्राप्तवानीरशाखं=वेत्र की शाखाओं तक पहुंचे हुये, किञ्चित् करधृतमिव=कुछ हाथ में पकड़े गये के समान, मुक्तरोधोनितम्बम्=तटरूप नितम्ब को छोड़ने वाले, तस्याः=उस गम्भीरा के, नीलम्=नीले, सलिलवसनम्=जलरूपी वस्त्र को, हृत्वा=हटाकर, लम्बमानस्य=झुके हुये, ते=तुम्हारा, प्रस्थानम्=(वहाँ से) प्रस्थान, कथमपि=बड़ी कठिनाई से, भावि=होगा, ज्ञातास्वादः=(रति के) सुख का अनुभव कर चुकने वाला, कः=कौन, विवृतजघनाम्=खुली हुयी जाँघों वाली को,

विहातुम्=परित्याग करने में, समर्थः=समर्थ होगा ।।४५।।

हिन्दी अनुवाद--हे मित्र ! वेत्र की शाखाओं तक पहुंचे हुये और हाथ से कुछ पकड़े गये के समान तटरूप नितम्ब को छोड़ने वाले उस (गम्भीरा) के नीले जलरूपी वस्त्र को हटाकर झुके हुये तुम्हारा (वहाँ से) प्रस्थान किसी प्रकार (बड़ी कठिनाई से) होगा क्योंकि (सुरत) सुख का अनुभव कर चुकने वाला ऐसा कौन (पुरुष होगा जो) खुली हुयी जाँघों वाली (सुन्दरी) को (बिना उपभोग किये) छोड़ देने में समर्थ होगा ।।४५।।

संस्कृत व्याख्या - सखे=हे मित्र, प्राप्तवानीरशाखं=आसादितवेतसविटपम्, किञ्चित् करधृतं=ईषद्हस्तावलम्बितम्, तस्याः=गम्भीरायाः, इव=यथा, मुक्तरोधोनितम्बं=परित्यक्ततटकटि, नील=नीलवर्णम्, सलिलवसनं=जलवसनम्, हृत्वा=अपनीय, लम्बमानस्य=अवस्रंसमानस्य, ते=तव, प्रस्थानं=प्रयाणम्, कथमपि=महता कष्टेन, भावि=भविष्यति, ज्ञातास्वादः=अनुभूतसुरतरसः, कः=पुरुषः, विवृतजघनां=प्रकटितजघनस्थलाम्, विहातुं=परित्यक्तुम्, समर्थः=शक्तः । अर्थान्तरन्यासोऽलङ्कारः । मन्दाक्रान्ता वृत्तम् ।।४५।।

आलोक

करधृतम्--करेण धृतम्, तत् करधृतम् (तृतीया तत्पुरुष) । धृतम्—धृ+क्त । प्राप्तवानीरशाखम्--प्राप्ता वानीरशाखा येन तत् (बहुव्रीहि) । प्राप्तः—प्र+आप्+क्त । हृत्वा—हृ+क्त्वा । सलिलवसनम्—सलिलमेव वसनं सलिलवसनम् (कर्मधारय) । मुक्तरोधोनितम्बम्—रोधः एव नितम्बः रोधोनितम्बः, मुक्तः रोधोनितम्बः येन तत् (बहुव्रीहि) । मुक्तः—मुच्+क्त । रोधः—रुणद्धि इति—'रुधिर् आवरणे' धातु से असुन् प्रत्यय । 'कूलं रोधश्च तीरं च प्रतीरं च तटं त्रिषु'—अमरकोश । नितम्बः—'नितम्बः पश्चिमे श्रोणिभागेऽद्रिकटके कटौ'—यादवकोश । प्रस्थानम्—प्र+स्था+ल्युट् । लम्बमानस्य—लम्ब+शानच् । भावि—भविष्यति इति--भू+णिनि । ज्ञातास्वादः--ज्ञातः आस्वादः येन सः (बहुव्रीहि) । ज्ञातः--ज्ञा+क्त । विवृतजघनाम्—विवृत जघनं यस्याः, ताम् (बहुव्रीहि) । विवृतम्--वि+वृ+क्त । विहातुम्--

वि+हा+तुमुन् । यहाँ शृङ्गाररस की सरस व्यञ्जना हुई है। जिस प्रकार नायिका नितम्बभाग से वस्त्र के खिसकने पर उसे अपने हाथ से पकड़ कर संभालती है उसी प्रकार गम्भीरा नदी रूपी नायिका तटरूपीनितम्ब से नील जलरूपी वस्त्र के खिसकने पर वेत्र रूपी हाथों से पकड़ कर संभालने की चेष्टा करती है। इस प्रकार यहाँ गम्भीरा नामक नदी में नायिका के व्यवहारों को प्रस्तुत किया गया है। यक्ष का मेघ से कथन है कि गम्भीरा की ऐसी गम्भीर स्थिति में तुम्हारा उलझ जाना स्वाभाविक ही है क्योंकि कोई भी सुरतसुखानुभवी पुरुष अनावृत जघन वाली सुन्दरी का परित्याग नहीं कर सकता है। यहाँ लीला तथा विलास नामक नायिका के अलङ्कारों की व्यञ्जना हो रही है। लीला--"अङ्गैर्वेषैरलङ्कारैः प्रेमभिर्वचनैरपि । प्रीतिप्रयोजितैर्लीलां प्रियस्यानुकृतिं विदुः ॥" विलास--"यानस्थानासनादीनां मुखनेत्रादि--कर्मणाम् । विशेषस्तु विलासः स्यादिष्टसंदर्शनादिना ॥" कुछ विद्वान् यहाँ विभ्रम की स्थिति मानते हैं। विभ्रम--"त्वरया हर्षरागादेर्दयितागमनादिषु । अस्थाने विभ्रमादीनां विन्यासो विभ्रमो मतः ॥" सम्भोग शृङ्गार की सुन्दर योजना है। सम्भोग--"दर्शनस्पर्शनादीनि निषेवेते विलासिनौ । यत्रानुरक्तावन्योन्यं सम्भोगोऽयमुदाहृतः ॥" करधृतमिव में उत्प्रेक्षा है। रोध में नितम्ब का, सलिल में वसन का आरोप करने से शाब्दरूपक और गम्भीरा नदी में नायिका का आरोप आर्थ होने के कारण एकदेशविवर्ति रूपक है। चतुर्थ चरण के द्वारा प्रथम तीन चरणों के अर्थ के समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है। नायक-नायिका के व्यवहारों के अभिव्यञ्जन होने से समासोक्ति की भी व्यञ्जना हो रही है। प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति तथा मन्दाक्रान्ता छन्द है ॥४५॥

प्रसङ्ग—यक्ष कहता है कि हे मेघ ! तुम्हारी वृष्टि से फूली हुई पृथ्वी की सुगन्ध से सुगन्धित, हाथियों की सूँड़ों के द्वारा सादर पी जाती हुई तथा जङ्गली गूलरों को पकाने वाली शीतल सदागति देवगिरि के समीप जाने की इच्छा करने वाले तुम्हारे नीचे से वहेगी—

त्वन्निष्यन्दोच्छ्वसितवसुधागन्धसम्पर्करम्यः
स्रोतोरन्ध्रध्वनितसुभगं दन्तिभिः पीयमानः ।
नीचैर्वास्यत्युपजिगमिषोर्देवपूर्वं गिरिं ते
शीतो वायुः परिणमयिता काननोदुम्बराणाम् ॥ ४६ ॥

पदच्छेद—त्वन्निष्यन्दोछ्वसितवसुधागन्धसम्पर्करम्यः स्रोतोरन्ध्रध्वनित-सुभग दन्तिभिः पीयमानः । नीचैः वास्यति उपजिगमिषोः देवपूर्वं गिरिं ते शीतः वायुः परिणमयिता काननोदुम्बराणाम् ॥ ४६ ॥

अन्वय—त्वन्निष्यन्दोच्छ्वसितवसुधागन्धसम्पर्करम्यः दन्तिभिः स्रोतोरन्ध्र-ध्वनितसुभगं पीयमानः काननोदुम्बराणां परिणमयिता शीतः वायुः देवपूर्वं गिरिम् उपजिगमिषोः ते नीचैः वास्यति ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ—त्वन्निष्यन्दोच्छ्वसितवसुधागन्धसम्पर्करम्यः=तुम्हारे बरसने से फूली हुई भूमि की सुगन्ध के सम्पर्क से सुगन्धित (रम्य), दन्तिभिः= हाथियों द्वारा, स्रोतोरन्ध्रध्वनितसुभगम्=सूँड़ के छिद्रों के शब्द से सुन्दर रूप में, पीयमानः=पिया जाता हुआ, काननोदुम्बराणाम्=जङ्गली गूलरों को, परिणमयिता=पकाने वाला, शीतः=शीतल, वायुः=पवन, देवपूर्वं गिरिं=देवगिरि के, उपजिगमिषोः=समीप जाने के इच्छुक, ते=तुम्हारे, नीचैः=नीचे, वास्यति=वहेगी ॥ ४६ ॥

हिन्दी अनुवाद—तुम्हारे बरसने से फूली हुई भूमि की सुगन्ध के सम्पर्क से सुगन्धित (रम्य), हाथियों के द्वारा सूँड़ के छिद्रों के शब्द से सुन्दर रूप में पिया जाता हुआ जङ्गली गूलरों को पकाने वाला शीतल पवन देवगिरि के समीप जाने के इच्छुक तुम्हारे नीचे वहेगा ॥ ४६ ॥

संस्कृत व्याख्या—त्वन्निष्यन्दोच्छ्वसितवसुधागन्धसम्पर्करम्यः=त्वद्वृष्टि-प्रफुल्लितावनिगन्धसंसर्गरमणीयः, दन्तिभिः=करिभिः, स्रोतोरन्ध्रध्वनितसुभगं =नासिकाग्रकुहरशब्दमनोरमम्, पीयमानः=क्रियमाणपानः, काननोदुम्बराणां =विपिनजन्तुफलानाम्, परिणमयिता=परिपाकयिता, शीतः=शीतलः, वायुः =पवनः. देवपूर्वं गिरिं=देवगिरिम्, उपजिगमिषोः=उपगन्तुमिच्छोः, ते

=तव, नीचैः=अधस्तात्, वारयति=गमिष्यति । स्वभावोक्तिरलङ्कारः । मन्दाक्रान्ता वृत्तम् ॥ ४६ ॥

आलोक

त्वन्निष्यन्दोच्छ्वसितवसुधागन्धसम्पर्करम्यः—तव निष्यन्दः त्वन्निष्यन्दः (षष्ठी तत्पुरुष), तेन उच्छ्वसिता (तृतीया तत्पुरुष) । त्वन्निष्यन्दोच्छ्वसिता चासौ वसुधा (कर्मधारय), तस्याः गन्धः (षष्ठी तत्पुरुष), तस्य सम्पर्कः (षष्ठी तत्पुरुष), तेन रम्यः (तृतीया तत्पुरुष) । निष्यन्दः–निष्यन्दनम् इस अर्थ में भाव में घञ् प्रत्यय होता है- नि+ष्यन्द्+घञ् । उच्छ्वसितः–उत्+श्वस्+क्त । सम्पर्कः–सम्+पृच्+घञ् । 'वसुधोर्वी वसुन्धरा'—अमरकोश । स्रोतोरन्ध्रध्वनितसुभगम्—स्रोतसः रन्ध्राणि स्रोतोरन्ध्राणि (षष्ठी तत्पुरुष), तेषां ध्वनितम् (षष्ठी तत्पुरुष), तेन सुभगं यथा तथा (तृतीया तत्पुरुष) । यहाँ स्रोत शब्द का प्रयोग घ्राण के अर्थ में हुआ है। 'स्रोतोऽम्बुवेगेन्द्रिययोः' इस अमरकोश के वचन के अनुसार यहाँ स्रोत शब्द इन्द्रियवाची है परन्तु लक्षणया घ्राण अर्थ लिया जायेगा । दन्तिभिः—दन्त+इनि । पीयमानः–पा+शानच् (कर्मणि) । वास्यति–वा धातु लृट् लकार प्र० पु० ए० व० । उपजिगमिषोः—उपगन्तुमिच्छुः उपजिगमिषुः, तस्य । उप+गम्+सन्+उ । देवपूर्वं—देवः पूर्वः यस्मिन् तम् (बहुव्रीहि) । गिरिम्–'अद्रिगोत्रगिरिग्रावाचलशैलशिलोच्चयाः'–अमरकोश । शीतः–शीतमस्यास्तीति इस अर्थ में 'अर्श आदिभ्योऽच्' से अच् प्रत्यय । परिणमयिता–परिणमयति इति-परि+नम्+णिच्+तृच् । वायुः–वाति इति इस विग्रह से 'कृवापाजिमि–स्वदिसाध्यशूभ्य उण्' इस सूत्र से उण् प्रत्यय तथा 'आतो युक्-चिण्कृतोः' इस सूत्र से युक् प्रत्यय । काननोदुम्बराणाम्–कानने उदुम्बराः काननोदुम्बराः, तेषाम् (षष्ठी तत्पुरुष) । 'उदुम्बरो जन्तुफलो यज्ञाङ्गो हेमदुग्धकः'–अमरकोश । इस श्लोक में प्रयुक्त देवगिरि को कुछ विद्वान् आधुनिक देवगढ़ मानते हैं जो कि चम्बल के दक्षिण, मालव के मध्य और झाँसी के दक्षिण पश्चिम में स्थित है । जल वृष्टि होने से भूमि का फूलना और उस प्रफुल्लित भूमि के गन्ध के संसर्ग से सुगन्धित, हाथियों के द्वारा सूँघा गया और जङ्गल के गूलरों को पकाने वाला वायु यहाँ स्वाभाविक रूप में

चित्रित किया गया है अतएव स्वभावोक्ति अलङ्कार है। प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति तथा मन्दाक्रान्ता छन्द है ।। ४६ ।।

प्रसङ्ग—यक्ष कहता है कि हे मेघ! उस देवगिरि पर शिववालक स्वामिकार्तिकेय का स्थायी निवास है अतएव तुम्हें चाहिये कि उनको वहाँ भलीभाँति स्नान करा दें। स्वामि कार्तिकेय का तेज सूर्य का भी अतिक्रमण कर देने वाला है-

तत्र स्कन्दं नियतवसतिं पुष्पमेघीकृतात्मा
पुष्पासारैः स्नपयतु भवान्व्योमगङ्गाजलार्द्रैः ।
रक्षाहेतोर्नवशशिभृता वासवीनां चमूना-
मत्यादित्यं हुतवहमुखे संभृतं तद्धि तेजः ।। ४७ ।।

पदच्छेद—तत्र स्कन्दं नियतवसतिं पुष्पमेघीकृतात्मा पुष्पासारैः स्नपयतु भवान् व्योमगङ्गाजलार्द्रैः । रक्षाहेतोः नवशशिभृता वासवीनां चमूनां अत्यादित्यं हुतवहमुखे संभृतं तत् हि तेजः ।। ४७ ।।

अन्वय—पुष्पमेघीकृतात्मा भवान् व्योमगङ्गाजलर्द्रैः पुष्पासारैः तत्र नियतवसतिं स्कन्दं स्नपयतु हि तत् वासवीनां चमूनां रक्षाहेतोः नवशशिभृता हुतवहमुखे सम्भृतम् अत्यादित्य तेजः ।। ४७ ।।

शब्दार्थ—पुष्पमेघीकृतात्मा=अपने को पुष्पों का मेघ बनाये हुये, भवान्=आप, व्योमगङ्गाजलार्द्रैः=आकाशगङ्गा के जल से भीगे, पुष्पासारैः=फूलों की लगातार बौछारों से, तत्र=वहाँ, नियतवसतिम्=स्थायी रूप मे निवास करने वाले, स्कन्दं=कार्तिकेय को, स्नपयतु=स्नान करा दें, हि=क्योंकि, तत्=वह, वासवीनां=इन्द्र की, चमूनां=सेनाओं, रक्षाहेतोः=रक्षा के लिये, नवशशिभृता=नवीन चन्द्रमा को धारण करने वाले (भगवान् शङ्कर) के द्वारा, हुतवहमुखे=अग्नि के मुख में, सम्भृतं=सञ्चित, अत्यादित्यम्=सूर्य का भी अतिक्रमण करने वाला, तेजः=तेज है ।। ४७ ।।

हिन्दी अनुवाद—अपने को पुष्पों का मेघ बनाये हुये आप आकाशगङ्गा के जल से भीगे फूलों की लगातार बौछारों से वहाँ (देवगिरि पर) स्थायी

रूप से निवास करने वाले कार्तिकेय को स्नान करा दें क्योंकि वह (देवराज) इन्द्र की सेनाओं की रक्षा के लिये नवीन चन्द्रमा को धारण करने वाले (भगवान् शिव) के द्वारा अग्नि के मुख में सम्भृत (डाला गया) सूर्य का अतिक्रमण करने वाला तेज है ॥ ४७ ॥

संस्कृत व्याख्या--पुष्पमेघीकृतात्मा=प्रसूनजलदीकृतविग्रहः, भवान्=त्वम्, व्योमगङ्गाजलार्द्रैः=आकाशगङ्गासलिलक्लिन्नैः, पुष्पासारैः=प्रसून-सम्पातैः तत्र=देवगिरौ, नियतवसतिं=निश्चलावासम्, स्कन्दं=कार्तिकेयम्, स्नपयतु=अभिषिञ्चतु, हि=यतः, तत्=स्कन्दरूपं तेजः, वासवीनां=ऐन्द्री-णाम्, चमूनां–सेनानाम्, रक्षाहेतोः=रक्षाणार्थम्, नवशशिभृता नूतनसुधांशु-धारिणा, हुतवहमुखे=वह्निमुखे, सम्भृतं=सञ्चितम्, अत्यादित्यं=दिवाकरा-तिशायि, तेजः=प्रतापः, अस्तीति शेषः । अर्थान्तरन्यासोऽलङ्कारः । मन्दाक्रान्ता वृत्तम् ।।४७।।

आलोक

तत्र–तद्+त्रल् । स्कन्दम्-स्कन्दति इति–स्कन्द+अच् । (पचाद्यच) । "कार्तिकेयो महासेनः शरजन्मा षडाननः । पार्वतीनन्दनः स्कन्दः सेनानीरग्नि-भूर्गुहः ॥" नियतवसतिम्–नियता वसतिः यस्य सः, तम् ; (बहुव्रीहि) । नियता–नि+यम्+क्त+टाप् । स्वामिकार्तिकेय देवगिरि पर नियत रूप से निवास करते थे । पौराणिक कथा है कि पूर्वकाल में तारकासुर के विनाश से प्रसन्न होकर भगवान् स्कन्द देवताओं की प्रार्थना से 'इस देवगिरि पर्वत पर मैं शिव और पार्वती के साथ निवास कर रहा हूँ' यह कहकर रहने लगते हैं । पुष्पमेघीकृतात्मा–पुष्पाणां मेघः पुष्पमेघः (षष्ठी तत्पुरुष) । अपुष्पमेघः पुष्पमेघः यथा सम्पद्यते तथा कृतः पुष्पमेघीकृतः । पुष्पमेघ+च्वि+कृ+क्त । पुष्पमेघीकृतः आत्मा येन सः (बहुव्रीहि) । 'आत्मा यत्नो धृतिर्बुद्धिः स्वभावो ब्रह्म वर्ष्म च'--अमरकोश । पुष्पासारैः--पुष्पाणाम् आसाराः पुष्पासाराः, तैः (षष्ठी तत्पुरुष) । स्नपयतु–स्ना+णिच्+लोट् प्र० पु० ए० व० । व्योम-गङ्गाजलार्द्रैः--व्योमगङ्गायाः जलं व्योमगङ्गाजलम् (षष्ठी तत्पुरुष), तेन आर्द्राः व्योमगङ्गाजलार्द्राः (तृतीया तत्पुरुष), तैः । रक्षाहेतोः--रक्षायाः हेतोः

(षष्ठी तत्पुरुष) । 'हेतुर्ना कारणं बीजं निदानं त्वादिकारणम्'—अमरकोश । नवशशिभृता—नवश्चासौ शशी नवशशी (कर्मधारय) । नवशशिन विभर्ति इति नवशशिभृत्, तेन । नवशशिन्+भृ+क्विप् । 'हिमांशुश्चन्दमाश्चन्द्रः शशी चन्दो हिमद्युतिः'—शब्दार्णव । वासवीनाम्—वासवस्य इमाः वासव्यः, तासाम् । वासव+अण् । ङीप् । 'सुत्रामा: गोत्रभिद्वज्री वासवो वृत्रहा वृषः'—अमरकोश । अत्यादित्यम्—आदित्यम् अतिक्रान्तम् अत्यादित्यम्, 'अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया' से समास । आदित्यः–अदितेरपत्यं पुमान् इस अर्थ में अदिति शब्द से 'दित्यदिव्यादिव्यप्रयुत्तरपदाण्यः' इस सूत्र से ण्य प्रत्यय । हुतवहमुखे—हुतवहस्य मुखं हुतवहमुखम् (षष्ठी तत्पुरुष), तस्मिन् । हुतवहः--वहतीति वहः, वह+अच् । हुतस्य वहः हुतवहः (षष्ठी तत्पुरुष) । सम्भृतम्—सम्+भृ+क्त । हुतवहमुख में मुख पद का ग्रहण शुद्धता को सूचित करता है जैसा कि शम्भुरहस्य में कहा गया है—'गवां पश्चाद् द्विजस्याङ्घ्रिर्योगिनां हृत्कवेर्वचः । परं शुचितमं विद्यान्मुखं स्त्रीवह्नि-वाजिनाम् ।' यहाँ यक्ष मेघ को स्वयं ही स्कन्द के पूजन के लिए कहता है क्योंकि स्वयं पूजा का फल श्रेष्ठ होता है । शम्भुरहस्य में कहा भी गया है—"स्वयं यजति चेद् देवमुत्तमा सोदरात्मजैः । मध्यमा या यजेद् भृत्यैरधमा याजनक्रिया ।" ऐसी कथा है कि तारकासुर के वध के लिए देवताओं ने भगवान् शिव से प्रार्थना की । उनकी प्रार्थना को स्वीकार कर भगवान् शङ्कर ने पार्वती में अपने वीर्य का आधान किया । पार्वती उस वीर्य को धारण करने में असमर्थ हुई । ऐसी स्थिति में भगवान् शङ्कर ने उस वीर्य को अग्नि के मुख में रख दिया । अग्नि भी उसे धारण करने में समर्थ नहीं हुई तो उन्होंने उसे गङ्गातट स्थित शरों के वन में रख दिया । छः कृत्तिकाओं ने उसका पालन पोषण किया था अतएव उनका नाम कार्तिकेय पड़ा तथा शरों के वन में जन्म लेने से उन्हें शरजन्मा कहा जाता है । देवताओं के सेनापति होने से वे सेनापति तथा छः मुख वाले होने से षड्मुख या षडानन कहलाते हैं । यहाँ अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है । प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति तथा मन्दाक्रान्ता छन्द है ।।४७।।

प्रसङ्ग—यक्ष कहता है कि हे मेघ । पुत्रस्नेह के कारण पार्वती जी स्वामि-

कार्तिकेय के वाहन जिस मयूर के पंख को आभूषण के रूप में कान में पहनती हैं, ऐसे उस शङ्कर के चन्द्रमा की कान्ति से धवल नेत्रप्रान्त वाले मयूर को तुम पर्वत पर पहुँचकर अपने बढ़े हुये गर्जनों से नचा देना—

ज्योतिर्लेखावलयि गलितं यस्य बर्हं भवानी
पुत्रप्रेम्णा कुवलयदलप्रापि कर्णे करोति ।
धौतापाङ्गं हरशशिरुचा पावकेस्तं मयूरं
पश्चादद्रिग्रहणगुरुभिर्गर्जितैर्नर्तयेथाः ॥४८॥

पदच्छेद—ज्योतिर्लेखावलयि गलितं यस्य बर्हं भवानी पुत्रप्रेम्णा कुवलयदलप्रापि कर्णे करोति । धौतापाङ्गं हरशशिरुचा पावकेः तं मयूरं पश्चात् अद्रिग्रहणगुरुभिः गर्जितैः नर्तयेथाः ॥४८॥

अन्वय—ज्योतिर्लेखावलयि गलितं यस्य बर्हं भवानी पुत्रप्रेम्णा कुवलयदलप्रापि कर्णे करोति हरशशिरुचा धौतापाङ्गं तं पावकेः मयूरं पश्चाद् अद्रिग्रहण गुरुभिः गर्जितैः नर्तयेथाः ॥४८॥

शब्दार्थ—ज्योतिर्लेखावलयि=जिस (मयूर) की कान्ति की रेखाओं के मण्डलों से युक्त, गलितं=गिरे हुये, बर्हम्=पंख को, भवानी=पार्वती, पुत्रप्रेम्णा=सुतस्नेह से, कुवलयदलप्रापि=नीलकमल की पंखुड़ियों को प्राप्त कराती हुई, कर्णे=कान में, करोति=धारण करती हैं, हरशशिरुचा=भगवान् शङ्कर के चन्द्रमा की कान्ति से, धौतापाङ्गम्=धुले हुये नेत्रप्रान्तों वाले, तं=उस, पावकेः=कार्तिकेय के, मयूरम्=मोर को, पश्चाद्=बाद में, अद्रिग्रहणगुरुभिः=पर्वत पर पहुँचने से बढ़े हुये, गर्जितैः=गर्जनों के द्वारा, नर्तयेथाः=नचा देना ॥४८॥

हिन्दी अनुवाद—जिस मयूर की कान्ति की रेखाओं के मण्डलों से युक्त गिरे हुये पंख को पार्वती पुत्रस्नेह (स्वामिकार्तिकेय के प्रेम) के कारण कमल की पंखुड़ियों को प्राप्त कराती हुई (पुत्र प्रेम के कारण कमल की पंखुड़ियों को न धारण कर मयूरपंख को कान में धारण करने से उसे ही कमल पंखुड़ी का स्थान देती हुई) कान में धारण करती हैं। शङ्कर के (मस्तकस्थित)

चन्द्रमा की चन्द्रिका से धुले हुये नेत्र प्रान्तों वाले उस कार्तिकेय के मयूर को (तुम) बाद में पर्वत पर पहुँचने से (गुफाओं में प्रतिध्वनित होने से) बढ़े हुये गर्जनों के द्वारा नचा देना ।।४८।।

संस्कृत व्याख्या--ज्योतिर्लेखावलयि=तेजःपंक्तिमण्डलसंयुक्तम्, गलितं= पतितम्, यस्य = मयूरस्य, बर्हं =पिच्छम्, भवानी=शिवा, पुत्रप्रेम्णा=सुत-स्नेहेन, कुवलयदलप्रापि=नीलकमलपत्रप्रापकं यथा स्यात्तथा, कर्णे=श्रोत्रे, करोति=धारयति, हरशशिरुचा=शिवशिरश्चन्द्रिकया, धौतापाङ्गं=धवलित-नयनप्रान्तम्, पावकेः=कार्तिकेयस्य, तं=पूर्वोक्तम्, मयूरं=शिखिनम्, पश्चाद्=अनन्तरम्, अद्रिग्रहणगुरुभिः=पर्वतसक्रमणमहद्भिः, गर्जितैः=स्तनितैः नर्तयेथाः=नृत्यं कारय । स्वभावोक्तिरलङ्कारः । मन्दाक्रान्ता वृत्तम् ।।४८।।

आलोक

ज्योतिर्लेखावलयि--ज्योतिषः लेखाः ज्योतिर्लेखाः (षष्ठी तत्पुरुष), तासां वलयम् (षष्ठी तत्पुरुष), ज्योतिर्लेखावलयम् अस्यास्तीति--ज्योति-र्लेखावलय+इनि । यह बर्हम् का विशेषण है । गलितम्—गल्+क्त (कर्तरि) । बर्हम्--बर्हति इति इस अर्थ में 'बृह वृद्धौ' धातु से अच् प्रत्यय । 'शिखण्डश्च पिच्छबर्हे नपुंसके'–अमरकोश । भवानी–'शिवा भवानी रुद्राणी शर्वाणी सर्वमङ्गला'--अमरकोश । पुत्रप्रेम्णा—पुत्रस्य प्रेम पुत्रप्रेम, तेन (षष्ठी तत्पुरुष) । कुवलयदलप्रापि—कुवलयस्य दलं कुवलयदलम् (षष्ठी तत्पुरुष), कुवलयदलं प्राप्नोति इति तद् यथा स्यात्तथा—कुवलयदल+प्र+ आप्+णिनि । अथवा कुवलयदलं प्राप्नोतीति कुवलयप्राप्, तस्मिन् । कुवल-यम्--कौ वलते इति इस अर्थ में पचाद्यच् । 'स्यादुत्पलं कुवलयम्'–अमरकोश । धौतापाङ्गम्--धौतौ अपाङ्गौ यस्य, तम् (बहुव्रीहि) । 'अपाङ्गौ नेत्रयोरन्तौ'–अमरकोश । हरशशिरुचा--हरस्य शशी हरशशी तस्य रुक्, तया (षष्ठी तत्पुरुष) । हरः—हरतीति हरः । हृ+अच् । 'हरः स्मरहरो भर्गस्त्र्यम्बकस्त्रि-पुरान्तकः'—अमरकोश । रुक्–रोचते इति–'रुच् दीप्तौ' धातु से क्विप् प्रत्यय, 'रुक् शोभाकिरणेच्छासु'--हेमचन्द्र । "स्युः प्रभारुग्रुचिस्त्विड्भा भाश्छविद्युति-दीप्तयः । रोचिः शोचिरुभे क्लीबे ।"–अमरकोश । पावकेः—पावकस्य अपत्यं

पुमान् पावकिः, तस्य । यहाँ 'अत इञ्' से इञ् प्रत्यय हुआ है । अद्रिग्रहणगुरुभिः---अद्रेः ग्रहणम् अद्रिग्रहणम् (षष्ठी तत्पुरुष), तेन गुरूणि, तैः (तृतीया तत्पुरुष) । 'अद्रिगोत्रगिरिग्रावाचलशैलशिलोच्चयाः'--अमरकोश । ग्रहणम्–ग्रह् + ल्युट् । गर्जितैः–गर्ज् + क्त । नर्तयेथाः–नृत् + णिच् + विधिलिङ् म०पु० ए० व० । महामहोपाध्याय मल्लिनाथ ने कुवलयदलप्रापि के स्थान पर कुवलयदलक्षेपि ऐसा पाठ माना है । इसका विग्रह इस प्रकार होगा---कुवलयदलं क्षिपति अपसारयति इति तच्छीलम्–कुवलयदल + क्षिप् + णिनि । अर्थात् नीलकमल के पत्ते की निन्दा करने वाला । इस प्रकार यह बर्ह का विशेषण हो जायेगा । सरस्वतीतीर्थ ने स्पर्धिपाठ माना है । इसका विग्रह इस प्रकार होगा---कुवलयदलं स्पर्धते तच्छीलम्–कुवलयदल + स्पर्ध् + णिनि । अर्थात् नीलकमल के पत्ते से स्पर्धा रखने वाला । पुत्रप्रेम्णा---इस पद के द्वारा कवि ने मातृत्ववात्सल्य की सुन्दर व्यञ्जना की है । देवी पार्वती अपने पुत्र कार्तिकेय के प्रति स्नेह के कारण उनके वाहन मयूर के पंख को कुवलय के स्थान पर अपने कान में खोंस लेती है । स्वामि कार्तिकेय के वाहन मयूर के नाचने के द्वारा उसका प्रसादन अभिव्यञ्जित हो रहा है । वाहन के प्रसादन से स्वामिकार्तिकेय के प्रति भक्तिभाव झलक रहा है । स्वभावोक्ति अलङ्कार है । प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति तथा मन्दाक्रान्ता छन्द है ॥४८॥

प्रसङ्ग---यक्ष मेघ से निवेदन करता है कि स्वामिकार्तिकेय की भक्ति करने के पश्चात् जब तुम आगे की ओर चलोगे तो सिद्धों के जोड़े तुम्हारे मार्ग से इसलिए दूर हो जायेंगे कि तुम्हारी वृष्टि से उनकी वीणा के तार न भीग जायें । इसके पश्चात् थोड़ी ही दूर चलकर तुम चर्मण्वती नामक नदी का सम्मान करते हुये वहाँ उतर जाना--

आराध्यैनं शरवणभवं देवमुल्लङ्घिताध्वा
सिद्धद्वन्द्वैर्जलकणभयाद्वीणिभिर्मुक्तमार्गः ।
व्यालम्बेथाः सुरभितनयालम्भजां मानयिष्य–
न्स्रोतोमूर्त्या भुवि परिणतां रन्तिदेवस्य कीर्तिम् ॥४९॥

पदच्छेद—आराध्य एनं शरवणभवं देवम् उल्लङ्घिताध्वा सिद्धद्वन्द्वैः जलकणभयात् वीणिभिः मुक्तमार्गः । व्यालम्वेथाः सुरभितनयालम्भजां मानयिष्यन् स्रोतोमूर्त्या भुवि परिणतां रन्तिदेवस्य कीर्तिम् ॥४९॥

अन्वय—शरवणभवम् एनं देवम् आराध्य वीणिभिः सिद्धद्वन्द्वैः जलकणभयात् मुक्तमार्गः उल्लङ्घिताध्वा सुरभितनयालम्भजां भुवि स्रोतोमूर्त्या परिणतां रन्तिदेवस्य कीर्तिं मानयिष्यन् व्यालम्वेथाः ॥४९॥

शब्दार्थ—शरवणभवम्—सरकण्डों से उत्पन्न, एनम्=इन, देवम्=देव (स्वामिकार्तिकेय) को, आराध्य=आराधना करके, वीणिभिः=वीणाधारी, सिद्धद्वन्द्वैः=सिद्धों के जोड़ों के द्वारा, जलकणभयात्=जलकणों के भय से, मुक्तमार्गः=छोड़े गये मार्ग वाले (तुम), उल्लङ्घिताध्वा=कुछ मार्ग पार करके, सुरभितनयालम्भजाम्=सुरभि की पुत्रियों की बलि (आलम्भन) से उत्पन्न, भुवि= पृथ्वी पर, स्रोतोमूर्त्या=नदी के रूप में, परिणताम्= परिणत, रन्तिदेवस्य=रन्तिदेव की, कीर्तिम्=कीर्ति का, मानयिष्यन् = समादर करते हुये, व्यालम्बेथाः=झुक जाना ॥४९॥

हिन्दी अनुवाद-सरकण्डों में उत्पन्न इन देव (स्वामिकार्तिकेय) की आराधना करके वीणाधारी सिद्धों के जोड़ों के द्वारा पानी की बूंदों के भय से छोड़े गये मार्ग वाले (तुम) कुछ मार्ग पार करके सुरभि की पुत्रियों (गायों) के वध (आलम्भन) से उत्पन्न पृथ्वी पर नदी के रूप में परिणत रन्तिदेव की कीर्ति का समादर करते हुये झुक जाना (उतर जाना) ॥४९॥

संस्कृत व्याख्या—शरवणभवं=बाणतृणोत्पन्नम्, एनं=पूर्वोक्तम्, देवं= कार्तिकेयम्, आराध्य=पूजयित्वा, वीणिभिः=वीणाधारिभिः, सिद्धद्वन्द्वैः= सिद्धमिथुनैः, जलकणभयात् = सलिललवभीतेः, मुक्तमार्गः= परित्यक्तपथः, उल्लङ्घिताध्वा=अतिक्रान्तमार्गः, सुरभितनयालम्भजां= गोमारणजाताम्, भुवि=धरायाम्, स्रोतोमूर्त्या = प्रवाहरूपेण, परिणतां=रूपान्तरं प्राप्ताम् रन्तिदेवस्य=एतदाख्यस्य राज्ञः, कीर्ति=यशः, मानयिष्यन्=सत्कारयिष्यन्, व्यालम्बेथाः = आलम्ब्य अवतरेः । अतिशयोक्तिरलङ्कारः । मन्दाक्रान्ता वृत्तम् ॥४९॥

आलोक

आराध्य--आङ्+राध्+क्त्वा→ल्यप् । एनम्--अन्वादेश में इदम् शब्द के स्थान पर एन का आदेश हुआ है। शरवणभवम् शराणां वनं शरवणम् (षष्ठी तत्पुरुष) । यहाँ 'प्रनिरन्तःशरेक्षुप्लक्षाऽऽम्रकार्ष्यखदिर-पीयूक्षाभ्योऽसंज्ञायामपि' इस सूत्र से णत्व का विधान हुआ है। भवः-भवनं भवः, भू+अप । यहाँ 'ऋदोरप्' से अप् प्रत्यय हुआ है। 'भवः क्षेमेशसंसारे सत्तायां प्राप्तिजन्मनोः'—मेदिनीकोश । शरवणात् भवः (जन्म) यस्य सः, तम् (व्यधिकरण बहुव्रीहि) । वामनाचार्य के 'अवर्ज्यो बहुव्रीहिर्व्यधिकरणो जन्माद्युत्तरपदः' इस नियम के अनुसार यहाँ व्यधिकरण बहुव्रीहि सिद्ध होती है। अग्निदेव ने भगवान् शिव के वीर्य को शरों के वन में छोड़ दिया था। वहीं से स्वामिकार्तिकेय की उत्पत्ति हुई थी अतः उन्हें शरवणभव कहा जाता है। देवन्—दीव्यति इति—दिव+अच् । 'अमरा निर्जरा देवास्त्रिदशा विबुधाः सुराः'—अमरकोश । उल्लङ्घिताध्वा—उल्लङ्घितः अध्वा येन सः (बहुव्रीहि) । उल्लङ्घितः—उत्+लङ्घ्+क्त । सिद्धद्वन्द्वैः–सिद्धानां द्वन्द्वानि सिद्धद्वन्द्वानि, तैः (षष्ठी तत्पुरुष) । "विद्याधराऽप्सरो-यक्ष-रक्षो-गन्धर्व-किंनराः । पिशाचो गुह्यक सिद्धो भूतोऽमी देवयोनयः ॥"--अमरकोश । जल-कणभयात्--जलकणेभ्यः भयं जलकणभयम्, तस्मात् (पञ्चमी तत्पुरुष) । यहाँ 'हेत्वर्थं' में पञ्चमी हुई है। 'भीतिर्भीः साध्वसं भयम्'—अमरकोश । वीणिभिः--वीणा अस्ति येषां ते वीणिनः, तैः । 'वीणा + इनि' यहाँ 'व्रीह्यादिभ्यश्च' इस सूत्र से इनि प्रत्यय का विधान होता है। मुक्तमार्गः--मुक्तः मार्गः यस्य सः (बहुव्रीहि) । मुक्तः--मुच्+क्त । व्यालम्बेथाः—वि +आङ्+लम्ब्+विधिलिङ् लकार म० पु० ए० व० । सुरभितनयालम्भ-जाम्—सुरभेः तनया सुरभितनया (षष्ठी तत्पुरुष), सुरभितनयानाम् आलम्भः सुरभितनयालम्भः (षष्ठी तत्पुरुष), तस्मात् जाता सुरभितनयालम्भजा, ताम् । सुरभितनयालम्भ+जन्+ड । 'आत्मजस्तनयः सूनुः'—अमरकोश । सुरभिः—सुष्ठु रमते रम्यते वा 'रभ राभस्ये' धातु से 'सर्वधातुभ्य इन्' से इन्

प्रत्यय । "सुरभिः शल्लकीमातृभिन्मुरागोपु योषिति । चम्पके च वसन्ते च तथा जातीफले पुमान् । स्वर्णे गन्धोत्पले क्लीवं सुगन्धिकान्तयोस्त्रिषु । (विख्याते सचित्रे धीरे चैत्रेऽपि च पुमानयम्" —मेदिनीकोश । पौराणिक कथा है कि प्राचीन समय में महाराज रन्तिदेव के यज्ञानुष्ठान में गौवों के आलम्भन कर्म में चर्मराशि से वहते हुये रुधिर से जो नदी निकली थी उसका नाम चर्मण्वती पड़ गया था । आजकल इसे चम्बल कहते हैं । मानयिष्यन्—मान+णिच्+शतृ । स्रोतोमूर्त्या—स्रोतसः मूर्तिः स्रोतोमूर्तिः, तया । परिणताम्—परि+नम्+क्त+टाप् । रन्तिदेवस्य कीर्तिम्—प्राचीन काल में दशपुर में राजा रन्तिदेव राज्य करते थे । वे भरतवंशीय संस्कृति के प्रिय पुत्र थे । वे अत्यन्त तेजस्वी, दानी और याज्ञिक थे । स्वयं कई दिनों तक सपरिवार भूखे रहकर दूसरों को दान करते थे । अतएव उनकी कीर्ति लोकलोकान्तर में फैल गई थी । 'यशः कीर्तिः समज्ञा च'—अमरकोश । इस श्लोक में कीर्ति और चर्मण्वती नामक नदी का भेद होने पर भी अभेद का अध्यवसाय है, अतः अतिशयोक्ति अलङ्कार है । अतिशयोक्ति का लक्षण—सिद्धत्वेऽध्यवसायस्यातिशयोक्तिर्निगद्यते । प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति तथा मन्दाक्रान्ता छन्द है ॥४९॥

प्रसङ्ग—यक्ष कहता है कि हे मेघ ! तुम श्यामले वर्ण के हो । जब तुम जल लेने के लिये उस चर्मण्वती नामक नदी पर झुकोगे तो आकाश में विचरण करने वाले देवगण उसे ध्यानपूर्वक देखेंगे तो उन्हें ऐसा प्रतीत होगा कि चर्मण्वती नदी की धारा पृथ्वी रूपी नायिका का एक लड़ वाला हार हो और उसके ऊपर झुके हुये तुम हार के बीच में पिरोई गई इन्द्रनील नामक मणि हो—

त्वय्यादातुं जलमवनते शार्ङ्गिणो वर्णचौरे
तस्याः सिन्धोः पृथुमपि तनुं दूरभावात्प्रवाहम् ।
प्रेक्षिष्यन्ते गगनगतयो नूनमावर्ज्य दृष्टी—
रेकं मुक्तागुणमिव भुवः स्थूलमध्येन्द्रनीलम् ॥५०॥

पदच्छेद—त्वयि आदातुं जलम् अवनते शार्ङ्गिणः वर्णचौरे तस्याः सिन्धोः

पृथुम् अपि तनुं दूरभावात् प्रवाहम् । प्रेक्षिष्यन्ते गगनगतयः नूनम् आवर्ज्य दृष्टीः एकं मुक्तागुणम् इव भुवः स्थूलमध्येन्द्रनीलम् ॥५०॥

अन्वय—गगनगतयः शार्ङ्गिणः वर्णचौरे त्वयि जलम् आदातुम् अवनते पृथुम् अपि दूरभावात् । तनुं तस्याः सिन्धोः प्रवाहम् एकं स्थूलमध्येन्द्रनीलं भुवः मुक्तागुणम् इव नूनं दृष्टीः आवर्ज्य प्रेक्षिष्यन्ते ॥५०॥

शब्दार्थ-गगनगतयः=आकाश में विचरण करने वाले, शार्ङ्गिणः= कृष्ण के, वर्णचौरे=वर्ण को चुराने वाले, त्वयि=तुम्हारे, जलम्=जल को, आदातुम्=लेने के लिये, अवनते=झुकने पर, पृथुमपि=विशाल होते हुए भी, दूरभावात्=दूर होने के कारण, तनुम्=कृश [पतली लगने वाली], तस्याः सिन्धोः=उस नदी चर्मण्वती के, प्रवाहम्=प्रवाह को, एकम्= एक [लड़ वाले], स्थूलमध्येन्द्रनीलम्=बीच में स्थूल इन्द्रनील मणि वाले, भुवः=पृथ्वी के, मुक्तागुणमिव=मोतियों के हार के समान नूनम्=अवश्य ही, दृष्टी.=दृष्टि को, आवर्ज्य=लगाकर, प्रेक्षिष्यन्ते= देखेंगे ॥५०॥

हिन्दी अनुवाद —गगन में विचरग करने वाले (सिद्धादि) कृष्ण के वर्ण को चुराने वाले तुम्हारे जल ग्रहण करने के लिये झुकने पर विशाल होते हुये भी दूर होने के कारण कृश (पतली लगने वाली) उस (चर्मण्वती) नदी की धारा को एक (लड़ी वाले) मध्य में मोटी इन्द्रनील मणि से युक्त पृथ्वी के मोतियों के हार के समान अवश्य ही दृष्टि को लगाकर देखेंगे ॥५०॥

सस्कृत व्याख्या—गगनगतयः=आकाशचारिणः, शार्ङ्गिणः=कृष्णस्य, वर्णचौरे=वर्णापहारके, त्वयि=भवति, जलं=सलिलम्, आदातुं=ग्रहीतुम् अवनते=लम्बमाने (सति), पृथुमपि=स्थूलमपि, दूरभावात्=विप्रकृष्टत्वात्, तनुं=कृशम्, तस्याः=चर्मण्वत्यः, सिन्धोः=सरितः, प्रवाहं=स्रोतः, एकं= एकयष्टिकम्, स्थूलमध्येन्द्रनीलं=स्थूलमध्यमणीभूतेन्द्रनीलम्, भुवः=पृथिव्याः, मुक्तागुणमिव=मुक्ताहारमिव, नूनं=सत्यम्, दृष्टीः=नयनानि, आवर्ज्य= नियम्य, प्रेक्षिष्यन्ते=विलोकयिष्यन्ति । उत्प्रेक्षालङ्कारः मन्दाक्रान्ता वृत्तम् ॥५०॥

आलोक

आदातुम्—आ + दा + तुमुन्, अवनते–अव + नम् + क्त (भावे सप्तमी)। शार्ङ्गिणः = शृङ्गस्य विकारः शार्ङ्गम्, 'तस्य विकारः' से अण्। शार्ङ्गम् अस्यास्तीति शार्ङ्गी, तस्य। शार्ङ्ग + इनि। यहाँ 'अत इनिठनौ' से इनि प्रत्यय हुआ है। 'दैत्यारिः पुण्डरीकाक्षो गोविन्दो गरुडध्वजः। पीताम्बरोऽच्युतः शार्ङ्गी विष्वक्सेनो जनार्दनः"—अमरकोश। वर्णचौरे–वर्णस्य चौरः वर्णचौरः, तस्मिन् (षष्ठी तत्पुरुष)। सिन्धोः—स्यन्दन्ते आपोऽत्र इस विग्रह से 'स्यन्दू प्रस्रवणे' धातु से "स्यन्देः सम्प्रसारणं धश्च" से उ प्रत्यय सम्प्रसारण तथा दकार को धकार हो जाता है। 'सिन्धुर्वमथुदेशाब्धिनदे नासरिति स्त्रियाम्'–विश्वकोश। दूरभावात्–दूरस्य भावः दूरभावः, तस्मात् (षष्ठी तत्पुरुष)। भावः–भवनम्–भू + घञ्। प्रवाहम्–प्र + वह् + घञ्। 'प्रवाहस्त प्रवृत्तिः स्यात्'–अमरकोश। प्रेक्षिष्यन्ते–प्र + ईक्ष् + लृट् प्र० पु० ब० व०। गगनगतयः –गगने गतिः येषां ते (बहुव्रीहि)। गतिः—गमनमिति–गम् + क्तिन्। गगनम्–'गगनमनन्तं सुरवर्त्म खम्'–अमरकोश। आवर्ज्य- आङ् + वृज् + णिच् + क्त्वा →ल्यप्। दृष्टीः—दृश् + क्तिन्। मुक्तागुणम्–मुक्तानां गुणः मुक्तागुणः, तम् (षष्ठी तत्पुरुष)। स्थूलमध्येन्द्रनीलम्—स्थूलः मध्ये इन्द्रनीलः यस्य सः, तम् (बहुव्रीहि)। यह मुक्तागुणम् का विशेषण है। इस श्लोक में कवि ने स्थूल एवं सूक्ष्म सौन्दर्य का सहज सामञ्जस्य स्थापित किया है। नीलवर्ण का मेघ चर्मण्वती नदी को ओर कुछ झुका हुआ सा है ऐसी स्थिति में स्थूल होते हुये भी दूर होने के कारण पतली दिखाई देने वाली चर्मण्वती नदी के प्रवाह को गगनचारी सिद्धादि एक लड़ी वाली और मध्य में मेघरूप स्थूल इन्द्रनील मणि से विभूपित पृथ्वी की मोतियों की माला के समान देखते हैं। कहने का भाव यह है कि दूर से देखने के कारण चर्मण्वती नदी का प्रवाह सूक्ष्म लगने के कारण एक लड़ी वाली मोतियों की माला के समान दिखाई पड़ रहा है। उसके ऊपर मेघ विराजमान है जिससे ऐसा लगता है कि मध्य में स्थूल इन्द्र-नीलमणि पिरोया गया हो। इस प्रकार की यह मुक्तामाला मानो पृथ्वी को सुशोभित कर रही हो। इस प्रकार कवि ने स्वाभाविक दृश्य में सौन्दर्य की

अनोखी कल्पना की है। पृथ्वी रूपी नायिका मेघ रूपी इन्द्रनीलमणिखचित मुक्तामाला को धारण कर सुशोभित हो रही है। यहाँ नील वर्ण वाले मेघ से संयुक्त चर्मण्वती नदी के प्रवाह से वसुन्धरा के कण्ठ में स्थित मध्य में स्थूल इन्द्रनीलमणियुक्त मुक्ताहार की सम्भावना करने से उत्प्रेक्षा अलङ्कार है। श्लोक में प्रयुक्त नूनम् पद उत्प्रेक्षावाचक है। कहा भी गया है—'मन्ये शङ्के ध्रुवं प्रायो नूनमित्येवमादयः। उत्प्रेक्षावाचकाः शब्दा इव शब्दोऽपि तादृशः'॥ इस श्लोक में प्रयुक्त इव शब्द भी उत्प्रेक्षा का व्यञ्जक है। निरुक्तकार का यह कथन 'तत्र तत्रोपमा यत्र इव शब्दस्य दर्शनम्' यहाँ सङ्गत नहीं होता है। एक की क्रान्ति दूसरा किस प्रकार चुराता है? इस प्रकार वस्तु सम्बन्ध असम्भव होता हुआ कृष्ण के वर्ण के समान वर्ण के प्रतिपादित होने से निदर्शना अलङ्कार है। प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति तथा मन्दाक्रान्ता छन्द है ॥५०॥

प्रसङ्ग—यक्ष कहता है कि हे मेघ! चर्मण्वती नामक नदी को पार करके जब तुम आगे की ओर प्रस्थान करोगे तो भ्रूविलास कुशल श्वेत कान्ति वाले तथा भौंरों की शोभा को चुराने वाले दशपुर नगर की ललनाओं के नयनों के कौतूहल के विषय वन जाओगे अर्थात् वे रमणियाँ तुम्हें उत्सुकता-पूर्वक देखेंगी—

तामुत्तीर्य व्रज परिचितभ्रूलताविभ्रमाणां
पक्ष्मोत्क्षेपादुपरिविलसत्कृष्णसारप्रभाणाम्।
कुन्दक्षेपानुगमधुकरश्रीमुषामात्मबिम्बं।
पात्रीकुर्वन्दशपुरवधूनेत्रकौतूहलानाम् ॥५१॥

पदच्छेद—ताम् उत्तीर्य व्रज परिचितभ्रूलताविभ्रमाणां पक्ष्मोत्क्षेपात् उपरि-विलसत्कृष्णसारप्रभाणाम्। कुन्दक्षेपानुगमधुकरश्रीमुषाम् आत्मबिम्बं पात्री-कुर्वन् दशपुरवधूनेत्रकौतूहलानाम् ॥५१॥

अन्वय—ताम् उत्तीर्य आत्मबिम्बं परिचितभ्रूलताविभ्रमाणां पक्ष्मोत्क्षेपात् उपरिविलसत्कृष्णशारप्रभाणां कुन्दक्षेपानुगमधुकरश्रीमुषां दशपुरवधूनेत्रकौतूह-

लानां पात्रीकुर्वन् व्रज ॥५१॥

शब्दार्थ–ताम्=उस (चर्मण्वती) को, उत्तीर्य=पार करके, आत्मबिम्बम्=अपने शरीर को, परिचितभ्रूलताविभ्रमाणाम्=भ्रूलता के विलासों से परिचित, पक्ष्मोत्क्षेपात्=पलकों को उठाने के कारण, उपरिविलसत्कृष्णशारप्रभाणाम्=ऊपर काली और श्वेत प्रभा से सुशोभित, कुन्दक्षेपानुगमधुकरश्रीमुषाम्=कुन्द पुष्पों के चारों ओर भ्रमण करने वाले भ्रमरों की शोभा को चुराने वाले, दशपुरवधूनेत्रकौतूहलानाम्=दशपुर नगर की रमणियों के नयनों के कौतूहलों का, पात्रीकुर्वन्=विषय बनाते हुए, व्रज=जाओ ॥५१॥

हिन्दी अनुवाद-उस (चर्मण्वती नामक नदी) को पार करके (तुम) अपने शरीर को भ्रूलता (भौंह रूपी लताओं) के विलास से परिचित पलकों को ऊपर उठाने के कारण ऊपर नीली (काली) और रङ्गविरङ्गी प्रभा से समुद्भासित, कुन्द पुष्पों के चारों ओर भ्रमण करने वाले भ्रमरों की शोभा को चुराने वाले, दशपुर नगर की (विलासिनी) ललनाओं के नयनों के कौतूहलों का विषय बनाते हुये जाओ ॥५१॥

संस्कृत व्याख्या --तां=चर्मण्वतीम्, उत्तीर्य=अतिक्रम्य, आत्मबिम्बं=स्ववपुः, परिचितभ्रूलताविभ्रमाणां=विज्ञातभ्रूव्रततिविलासानाम्, पक्ष्मोत्क्षेपात्=नयनलोमोन्नमनात्, उपरिविलसत्कृष्णशारप्रभाणां=ऊर्ध्वशोभमाननीलशवलप्रभाणाम्, कुन्दाक्षेपानुगमधुकरश्रीमुषां=माध्यप्रसूनसञ्चरणानुगामिभ्रमरसदृशानाम्, दशपुरवधूनेत्रकौतूहलानां=दशपुरनगररमणीनयनकौतुकानाम्, पात्रीकुर्वन्=विषयीकुर्वन्, व्रज=गच्छ । निदर्शनालङ्कारः । मन्दाक्रान्ता वृत्तम् ॥५१॥

आलोक

उत्तीर्य=उत्+तॄ+क्त्वा→ल्यप् । व्रज—व्रज् धातु लोट्लकार म० पु० ए० व० । परिचितभ्रूलताविभ्रमाणाम्—भ्रूलतानां विभ्रमाः भ्रूलताविभ्रमाः, परिचिताः भ्रूलताविभ्रमाः येषु तानि परिचितभ्रूलताविभ्रमाणि, तेषाम् [बहुव्रीहि] । भ्रूलताः—भ्रुवोः लताः इव भ्रूलताः [उपमित कर्मधारय] ।

'वल्ली तु व्रततिर्लता'—अमरकोश । विभ्रम—"त्वरया हर्षरागादेर्दयितागमनादिषु । अस्थाने विभ्रमादीनां विन्यासो विभ्रमो मतः ।" साहित्यदर्पण ३/१०४। पक्ष्मोत्क्षेपात् —पक्ष्माणाम् उत्क्षेपः पक्ष्मोत्क्षेपः, तस्मात् । उत्क्षेपः—उत्क्षेपणम्—उत्+क्षिप्+घञ् । 'पक्ष्मसूत्रे च सूक्ष्मांशे किञ्जल्के नेत्रलोमनि'—विश्वकोश। उपरिविलसत्कृष्णशारप्रभाणाम्—उपरि विलसन्त्यः उपरिविलसन्त्यः [सुप् सुपा समास] । उपरिविलसन्त्यः कृष्णशाराः प्रभाः येषां तानि, तेषाम् [बहुव्रीहि] । कृष्णशाराः—कृष्णाश्च ताः शाराश्चेति—यहाँ 'वर्णो वर्णेन' इस सूत्र के द्वारा कर्मधारय समास हुआ है । कुछ टीकाकारों ने कृष्णशार के स्थान पर कृष्णसार पद दिया है जो कि अनुचित है क्योंकि सार शब्द का प्रयोग बल, स्थिर, अंश, न्याय, उत्तम, जल, घन इन अर्थों में होता है। जैसा कि कहा गया है—'सारो बले स्थिरांशे च मज्ज्ञि पुंसि जले घने । न्याये क्लीबं त्रिषु वरे' —मेदिनीकोश । यहाँ इस शार शब्द का प्रयोग हुआ है जिसका अर्थ चितकबरा है—'शारो वायौ स तु त्रिषु । कर्बुरे'—अमरकोश । 'शारः स्याच्छबलेः वाच्यलिङ्गः पुंसि समीरणे'—मेदिनीकोश । 'यादव ने 'कृष्णरक्तसिताः शाराः' लिखकर शार शब्द को काला, लाल और सफेद वर्ण का माना है । इस प्रकार जिन लोगों ने शार के स्थान पर सार पद का पाठ माना है वे वस्तुतः भ्रान्त हुये है । कुन्दक्षेपानुगमधुकरश्रीमुषाम्—कुन्दानां क्षेपः कुन्दक्षेपः (षष्ठी तत्पुरुष) कुन्दक्षेपस्य अनुगाः कुन्दक्षेपानुगाः (षष्ठी तत्पुरुष), कुन्दक्षेपानुगाश्च ते मधुकराः (कर्मधारय), तेषां श्रीः (षष्ठी तत्पुरुष), तां मुष्णन्ति इति, तेषाम् कुन्दक्षेपानुगमधुकर—श्री+मुष्+क्विप् । क्षेपः—क्षेपणम्—क्षिप्+घञ् । अनुगः—अनुगच्छन्तीति—अनु+गम्+ड । यहाँ 'अन्यत्रापि दृश्यत इति वक्तव्यम्' से ड प्रत्यय हुआ है । आत्मबिम्बम्—आत्मनः बिम्बः आत्मबिम्बः, तम् (षष्ठी तत्पुरुष) । पात्रीकुर्वन्—अपात्रं पात्रं यथा सम्पद्यते तथा कुर्वन्, पात्र+च्वि+कृ+शतृ । दशपुरवधूनेत्रकौतूहलानाम्—दशपुरे वध्वः दशपुरवध्वः (सप्तमी तत्पुरुष), दशपुरवधूनां नेत्राणि दशपुरवधूनेत्राणि (षष्ठी तत्पुरुष), तेषां कौतूहलानि, तेषाम् (षष्ठी तत्पुरुष) । 'कौतूहलं कौतुकं च कुतुकं च कुतूहलम्'—अमरकोश । दशपुर नगर की विलासिनी सुन्दरियाँ मेघ को देखकर हर्ष का अनुभव करेंगी अतएव वे सतृष्ण नेत्रों से उसका

अवलोकन करेंगी, इससे यहाँ विलास की सरसता अभिव्यञ्जित हो रही है। विलास—"यानस्थानासनादीनां मुखनेत्रादिकर्मणाम्। विशेषस्तु विलासः स्यादिष्टसंदर्शनादिना ॥" दशपुर मालव के पश्चिमी भाग का प्रमुख नगर है। सम्प्रति इसे मन्दसोर या दशोर कहते हैं। यहाँ एक के सौन्दर्य को दूसरे कैसे हरण कर रहे हैं? इस प्रकार वस्तुसम्बन्ध असम्भव होकर शोभा के सदृश शोभा इस सादृश्य को बोधन करने के कारण निदर्शना नामक अलङ्कार है। कुछ लोग उपमा मानते हैं। दशपुर की विलासिनी रमणियों का मेघ का अवलोकन स्वाभाविक है अतः स्वभावोक्ति की भी व्यञ्जना है। प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति तथा मन्दाक्रान्ता छन्द है ॥ ५१ ॥

प्रसङ्ग—यक्ष कहता है कि हे मेघ! इसके अनन्तर ब्रह्मावर्त नामक जनपद में अपनी छाया के द्वारा प्रवेश करते हुए क्षत्रियों के युद्धस्थल उस कुरुक्षेत्र में जहाँ गाण्डीव धर्नुधारी वीर अर्जुन ने अपने तीक्ष्ण शरों की वृष्टि क्षत्रियों के मुखों पर उसी प्रकार की थी जिस प्रकार तुम कमलों के ऊपर जलवृष्टि करते हो—

ब्रह्मावर्तं जनपदमथच्छायया गाहमानः
क्षेत्रं क्षत्रप्रधनपिशुनं कौरवं तद्भजेथाः।
राजन्यानां शितशरशतैर्यत्र गाण्डीवधन्वा
धारापातैस्त्वमिव कमलान्यभ्यवर्षन्मुखानि ॥ ५२ ॥

पदच्छेद—ब्रह्मावर्तं जनपदं छायया गाहमानः क्षेत्रं क्षत्रप्रधनपिशुनं कौरवं तत् भजेथाः। राजन्यानां शितशरशतैः यत्र गाण्डीवधन्वा धारापातैः त्वम् इव कमलानि अभ्यवर्षत् ॥ ५२ ॥

अन्वय— अथ ब्रह्मावर्तं जनपदं छायया गाहमानः क्षत्रप्रधनपिशुनं तत् कौरवं क्षेत्रं भजेथाः यत्र गाण्डीवधन्वा शितशरशतैः राजन्यानां मुखानि त्वं धारापातैः कमलानि इव अभ्यवर्षत् ॥ ५२ ॥

शब्दार्थ—अथ = इसके अनन्तर, ब्रह्मावर्तम् = ब्रह्मावर्त, जनपदम् = जनपद में, छायया = अपनी छाया के द्वारा, गाहमानः = प्रवेश करते हुए,

क्षत्रप्रधनपिशुनम् = क्षत्रियों के युद्ध के सूचक, तत् = उस, कौरवं क्षेत्रम् = कुरुक्षेत्र को, भजेथाः = जाना, यत्र = जहाँ, गाण्डीवधन्वा = गाण्डीव धनुर्धारी (अर्जुन) ने, शितशरशतैः = सैकड़ों तीक्ष्ण वाणों को, राजन्यानाम् = क्षत्रियों के, मुखानि अभ्यवर्षत् = मुखों पर बरसाया था, त्वम् इव = जिस प्रकार तुम, धारापातैः = धारासम्पातों के द्वारा, कमलानि = कमलों पर, अभ्यवर्षत् = वरसाते हो ॥ ५२ ॥

हिन्दी अनुवाद— इसके अनन्तर ब्रह्मावर्त जनपद में अपनी छाया के द्वारा प्रवेश करते हुये क्षत्रियों के युद्ध के सूचक उस कुरुक्षेत्र में जाना जहाँ गाण्डीव-धनुर्धारी (अर्जुन) ने सैकड़ों तीक्ष्ण वाणों को क्षत्रियों के मुखों पर उसी प्रकार वरसाया था जिस प्रकार तुम कमलों पर जल की धाराओं को बरसाते हो ॥ ५२ ॥

संस्कृत व्याख्या— अथ = अनन्तरम्, ब्रह्मावर्तं = एतदाख्यम्, जनपदं = देशम्, छायया = छायारूपेण, गाहमानः = प्रविशन्, क्षत्रप्रधनपिशुनं = क्षत्रिययुद्धसूचकम्, तत् = प्रसिद्धम्, कौरवं = कुरुसम्बद्धम्, क्षेत्रं = प्रदेशम्, भजेथाः = सेवस्व, यत्र = यस्मिन् कुरुक्षेत्रे, गाण्डीवधन्वा = किरीटी, शितशरशतैः = तीक्ष्णवाणशतैः, राजन्यानां = क्षत्रियाणाम्, मुखानि = वदनानि, त्वं = मेघः, धारापातैः = आसारैः, कमलानि इव = नलिनानि इव, अभ्यवर्षत् = अभिमुख वृष्टवान् । उपमालङ्कारः । मन्दाक्रान्ता वृत्तम् ॥ ५२ ॥

आलोक

ब्रह्मावर्तम् — ब्रह्मणः आवर्तः = सृष्टिः यस्मिन् सः ब्रह्मावर्तः, तम् (बहुव्रीहि) । ब्रह्मा जी ने इस देश में बैठकर सृष्टि प्रारम्भ की थी अतः इसे ब्रह्मावर्त कहते हैं । ब्रह्मा —बृंहति वर्धयति प्रजा इति — "बृंहि वृद्धौ । अन्तर्भावितण्यर्थः । बृंहेर्नोऽच्च इति मनिन् । धातोर्नस्यादादेशः । बृंहति वर्धत इति वा ।" "ब्रह्म तत्त्वतपोवेदे न द्वयोः पुंसि वेधसि । ऋत्विग्योगभिदोर्विप्रे चाध्यात्मज्ञानयोस्तथा"—मेदिनीकोश । आवर्तः—आवर्तनम्— आ+वृतु+घञ् ।

मनु ने सरस्वती और दृषद्वती देवनदियों के देवनिर्मित मध्यभाग को ब्रह्मावर्त बतलाया है—"सरस्वती–दृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदन्तरम् । तं देवनिर्मितं देशं ब्रह्मावर्तं प्रचक्षते।।" जनपदम्—जनः पदं यस्य सः, तम् (बहुव्रीहि)। 'नीवृज्जनपदः'—अमरकोश । अथ—यहाँ अनन्तर के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है—'मङ्गलानन्तरारम्भप्रश्नकार्त्स्न्येष्वथो अथ'—अमरकोश । छायया—'छाया सूर्यप्रिया कान्तिः प्रतिबिम्बमनातपः'—अमरकोश । गाहमानः—गाह् + शानच् । क्षत्रप्रधनपिशुनम्—क्षत्राणां प्रधनं क्षत्रप्रधनम् (षष्ठी तत्पुरुष), तस्य पिशुनम् (षष्ठी तत्पुरुष) । युद्धमायोधनं जन्यं प्रधनं प्रविदारणम्'—अमरकोश । पिशुन शब्द का प्रयोग यहाँ सूचक के अर्थ में हुआ है—'पिशुनौ खलसूचकौ' । तत्—यद् और तद् शब्दों का नित्य सम्बन्ध है अतएव जहाँ इनके सम्बन्ध का व्यतिक्रम होता है वहाँ अविमृष्टविधेयांश या विधयाविमर्श दोष आ जाता है परन्तु यहाँ तत् शब्द प्रसिद्ध अर्थ में प्रयुक्त हुआ है अतः उक्त दोष नहीं है । कहा भी गया है—"प्रक्रान्तप्रसिद्धाऽनुभूतार्थकस्तच्छब्दो यच्छब्दोपादानं नाऽपेक्षते ।" कौरवम्—कुरूणामिदम्–कुरु + अण् । यहाँ 'तस्येदम्' से अण् प्रत्यय हुआ है । कुरुक्षेत्र भारतियों का पवित्र स्थान है । यहाँ कौरवों और पाण्डवों में ऐतिहासिक युद्ध हुआ था । यहीं परशुराम ने २१ बार क्षत्रियों का संहार करके स्यमन्तपञ्चक नामक क्षेत्र की स्थापना की थी । यह दिल्ली के समीप है । भजेथाः—भज् धातु विधिलिङ्लकार म० पु० ए० व० । राजन्यानाम्—राज्ञाम् अपत्यानि राजन्यानि, तेषाम् राजन् + यत्—यहाँ 'राजश्वशुराद्यत्' से यत् प्रत्यय हुआ है । 'मूर्धाभिषिक्तो राजन्यो बाहुजः क्षत्रियो विराट्'– अमरकोश । शितशरशतैः—शिताश्च ते शराः शितशराः (कर्मधारय), तेषां शतानि, तैः (षष्ठी तत्पुरुष) । शितः— शो + क्त । यहाँ क्त प्रत्यय होने के बाद 'शाच्छोरन्यतरस्याम्' से इत्व हुआ है । गाण्डीवधन्वा—गाण्डी = ग्रन्थिः अस्यास्तीति—गाण्डी + व । यहाँ 'गाण्डयजगात्संज्ञायाम्' इस सूत्र से व प्रत्यय का विधान हुआ है । गाण्डीवं धनुः यस्य सः (बहुव्रीहि)। 'कपिध्वजस्य गाण्डीवगाण्डिवौ पुन्नपुंसकम्'— अमरकोश । धारापातैः—धाराणां पाताः धारापाताः, तैः

(षष्ठी तत्पुरुष) । 'धारासम्पात आसारः'—अमरकोश । अभ्यवर्षत्—अभि + वृष् + लङ् प्र०पु० ए०व० । इस श्लोक के द्वारा अर्जुन का शौर्य तथा मेघ की तेज जलवृष्टि की व्यञ्जना हो रही है । उपमा अलङ्कार है । प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति तथा मन्दाक्रान्ता छन्द है ॥५२॥

प्रसङ्ग—यक्ष कहता है कि हे मेघ ! बन्धुओं के स्नेह के कारण युद्ध से पराङ्मुख बलराम ने मदिरा का परित्याग करके जिसके जल का सेवन किया था इस प्रकार की सरस्वती के उस जल का सेवन करके तुम भी अन्तःकरण से पवित्र होकर शरीर से ही काले रह जाओगे—

हित्वा हालामभिमतरसां रेवतीलोचनाङ्कां
बन्धुप्रीत्या समरविमुखो लाङ्गली याः सिषेवे ।
कृत्वा तासामभिगममपां सौम्य ! सारस्वतीना-
मन्तःशुद्धस्त्वमपि भविता वर्णमात्रेण कृष्णः ॥५३॥

पदच्छेद—हित्वा हालाम् अभिमतरसां रेवतीलोचनाङ्कां बन्धुप्रीत्या समरविमुखः लाङ्गली याः सिषेवे । कृत्वा तासाम् अभिगमम् अपां सौम्य सारस्वतीनाम् अन्तःशुद्धः त्वम् अपि भविता वर्णमात्रेण कृष्णः ॥५३॥

अन्वय—बन्धुप्रीत्या समरविमुखः लाङ्गली अभिमतरसां रेवतीलोचनाङ्कां हालां हित्वा याः सिषेवे सौम्य ! त्वम् अपि तासां सारस्वतीनाम् अपाम् अभिगमं कृत्वा अन्तःशुद्धः वर्णमात्रेण कृष्णः भविता ॥५३॥

शब्दार्थ—बन्धुप्रीत्या=बान्धवों (कौरव और पाण्डवों) के प्रेम के कारण, समरविमुखः=युद्ध से विमुख, लाङ्गली=बलराम ने, अभिमतरसाम्=अभीष्ट स्वाद देने वाली, रेवतीलोचनाङ्काम्=(अपनी) पत्नी रेवती के नेत्रों के चिह्न वाली, हालाम्=मदिरा को, हित्वा=छोड़कर, याः=जिसका, सिषेवे=सेवन किया था, सौम्य=सुभग मेघ, त्वमपि=तुम भी, तासाम्=उस, सारस्वतीनाम्=सरस्वती के, अपाम्=जल को, अभिगमं कृत्वा=प्राप्त करके, अन्तःशुद्धः=भीतर से शुद्ध, वर्णमात्रेण=वर्णमात्र से, कृष्णः=श्यामले, भविता=रहेंगे ॥५३॥

हिन्दी अनुवाद—बान्धवों (कौरव-पाण्डवों) के स्नेह के कारण युद्ध से विमुख बलराम ने अभीष्ट स्वाद देने वाली और (अपनी पत्नी) रेवती के नेत्रों के चिह्न (छाया) वाली मदिरा का परित्याग करके जिसका सेवन किया था। हे सौम्य! (मेघ!) तुम भी उस सरस्वती के जल को प्राप्त करके भीतर (अन्तःकरण) से शुद्ध हुये वर्णमात्र से श्यामले रह जाओगे ॥५३॥

संस्कृत व्याख्या—बन्धुप्रीत्या=बान्धवप्रेम्णा, समरविमुखः=युद्धपराङ्-मुखः, लाङ्गली=हली, अभिमतरसां=अभीप्सितस्वादाम्, रेवतीलोचनाङ्कां=स्वप्रियानेत्रचिह्नाम्, हालां=सुराम, हित्वा=परित्यज्य, याः=सारस्वतीः अपः, सिषेवे=सेवितवान्, सौम्य=सुभग, त्वमपि=जलदोऽपि, तासां=पूर्वोक्तानाम्, सारस्वतीनां=सरस्वतीसम्बन्धिनीनाम्, अपां=सलिलनाम्, अभिगमं=समक्षगमनम्, कृत्वा=विधाय, अन्तःशुद्धः=अभ्यन्तरशुद्धः, वर्णमात्रेण=रूपेणैव, कृष्णः=श्यामः, भवित्रा = भविष्यसीति भावः। अनुप्रासोऽलङ्कारः। मन्दाक्रान्ता वृत्तम् ॥५३॥

आलोक

हित्वा —हा+क्त्वा। हालाम्—यद्यपि यह शब्द देशी है तथापि कवियों के द्वारा प्रयुक्त होने के कारण साधु है। इस सम्बन्ध में आचार्य वामन लिखते हैं—'अभिप्रयुक्तं देशभाषापदमि' त्यत्र सूत्रे हालेति देशभाषापदमप्यतीव कविप्रयोगात्साधु 'इत्युदाजहार वामनः।' 'सुरा हलिप्रिया हाला'—अमरकोश। अभिमतरसाम्—अभिमतः रसः यस्याः सा, ताम् (बहुव्रीहि)। रेवतीलोचनाङ्काम्—रेवत्याः लोचने रेवतीलोचने (षष्ठी तत्पुरुष), रेवतीलोचने एव अङ्कः यस्याः सा, ताम् (बहुव्रीहि)। रेवती बलराम की पत्नी का नाम है। वे भी अपने पति के साथ सुरापान करती थीं। उस समय उनके नेत्रों की छाया सुरा में पड़ती थी अतः यहाँ हालाम् के विशेषण के रूप में रेवतीलोचनाङ्काम् पद को रखा गया है। यहाँ रेवती के नेत्रों की छाया तथा मदिरा की मादकता का अभिव्यञ्जन हो रहा है। बन्धुप्रीत्या—बन्धूनां प्रीतिः बन्धुप्रीतिः, तया (षष्ठी तत्पुरुष)। महाभारत के युद्ध में बलराम ने भाग नहीं लिया

था क्योंकि उन्हें कौरवों और पाण्डवों से समान स्नेह था अतएव उन्होंने उस समय तीर्थयात्रा की थी। समरविमुखः--समरे विमुखः समरविमुखः (सप्तमी तत्पुरुष) । लाङ्गली--लाङ्गलम् अस्यास्तीति--लाङ्गल+इनि। बलराम का अस्त्र हल (लाङ्गल) है अतएव इन्हें हली या लाङ्गली भी कहते हैं। सिषेवे--सेव् धातु लिट् लकार प्र०पु० ए०व०। कृत्वा--कृ+क्त्वा। अपाम्--'आपः स्त्री भूम्नि वार्वारि सलिलं कमलं जलम्'--अमरकोश। सारस्वतीनाम्--सरांसि सन्ति यस्यां सा--सरस्+मतुप्+ङीप्, मकार को वकार। सरस्वत्याः इमाः सारस्वत्यः, तासाम्, सरस्वती+अण्+ङीप्। सरस्वती नदी का वेद पुराणों में महानदी के रूप में वर्णन हुआ है। पवित्र तीर्थराज प्रयाग में गङ्गा, यमुना और सरस्वती का संगम होता है। कुरुक्षेत्र में सरस्वती का विशेष महत्त्व है--"गङ्गा कनखले पुण्या, कुरुक्षेत्रे सरस्वती। ग्रामे वा यदि वाऽरण्ये पुण्या सर्वत्र नर्मदा ॥" सम्प्रति यह नदी लुप्त हो गई है। अभिगमम्--अभि+गम्+अप्। अन्तःशुद्धः--अन्तः शुद्धः (सुप् सुपा समास)। वर्णमात्रेण--वर्ण एव वर्णमात्रम्, तेन। 'प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम्' से तृतीया। कृष्णः--कृष्णः (वर्णः) अस्यास्तीति --कृष्ण+मतुप् तथा 'गुणवचनेभ्यो मतुपो लुगिष्टः' से मतुप् का लोप। भविता--भू धातु से तृच् प्रत्यय। यक्ष के इस कथन से यह ध्वनित होता है कि संसार में अन्तःकरण की शुद्धता प्रमुख है। बलराम ने सूतहत्या के प्रायश्चित्त के लिये सरस्वती नदी के जल का सेवन किया था अतएव हे मेघ ! तुम्हें भी सरस्वती की सेवा करनी चाहिये। मेघ के द्वारा अपने अन्तःकरण के गुणों का परित्याग कर सरस्वती के गुणों को ग्रहण करने के कारण यहाँ तद्गुण अलङ्कार की व्यञ्जना हो रही है। तद्गुण का लक्षण--'तद्गुणः स्वगुणत्यागात्'। अनुप्रास भी है। प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति तथा मन्दाक्रान्ता छन्द है ॥५३॥

प्रसङ्ग--यक्ष कहता है कि हे मेघ ! उस कुरुक्षेत्र से आगे चलकर कनखल से समीप हिमालय से निकलती हुई गङ्गा के समीप पहुँचना जिन गङ्गा ने पार्वती की भ्रूभङ्गिमाओं को अपने झाग के द्वारा हँसकर चन्द्रमा

का स्पर्श करने वाली तरङ्गरूपी करों से युक्त भगवान् शङ्कर के केशों को पकड़ लिया था—

तस्माद्गच्छेरनुकनखलं शैलराजावतीर्णां
जह्नोः कन्यां सगरतनयस्वर्गसोपानपंक्तिम् ।
गौरीवक्त्रभ्रुकुटिरचनां या विहस्येव फेनैः
शम्भोः केशग्रहणमकरोदिन्दुलग्नोर्मिहस्ता ॥५४॥

पदच्छेद--तस्मात् गच्छेः अनुकनखलं शैलराजावतीर्णां जह्नोः कन्यां सगरतनयस्वर्गसोपानपंक्तिम् । गौरीवक्त्रभ्रुकुटिरचनां या विहस्य इव फेनैः शम्भोः केशग्रहणम् अकरोत् इन्दुलग्नोर्मिहस्ता ॥५४॥

अन्वय– तस्मात् अनुकनखलं शैलराजावतीर्णां सगरतनयस्वर्गसोपान-पङ्क्तिं जह्नोः कन्यां गच्छेः या गौरीवक्त्रभ्रुकुटिरचनां फेनैः विहस्य इव इन्दुलग्नोर्मिहस्ता शम्भोः केशग्रहणम् अकरोत् ॥५४॥

शब्दार्थ—तस्मात्=वहाँ से, अनुकनखलम्=कनखल के समीप, शैल-राजावतीर्णाम्=पर्वतराज (हिमालय) से उतरी हुई, सगरतनयस्वर्गसोपान-पङ्क्तिम्=सगर के पुत्रों के लिये स्वर्ग की सीढ़ी के समान, जह्नोः=जह्नु की, कन्याम्=कन्या (गङ्गा) के, गच्छेः=पास जाना, या=जिन्होंने, गौरी-वक्त्रभ्रुकुटिरचनाम्=पार्वती के मुख के भ्रूभङ्गरचना को, फेनैः विहस्य इव=मानो फेने के द्वारा हँसकर, इन्दुलग्नोर्मिहस्ता=चन्द्रमा का स्पर्श करने वाले तरङ्गरूपी करों से युक्त, शम्भोः=शिव के, केशग्रहणम् अकरोत्=बालों को पकड़ लिया था ॥५४॥

हिन्दी अनुवाद—वहाँ (कुरुक्षेत्र) से कनखल के समीप पर्वतराज (हिमालय) से उतरी हुई तथा (राजा) सगर के पुत्रों के लिये स्वर्ग की सीढ़ी के समान जह्नु की पुत्री (गङ्गा) के समीप जाना। जिस (गङ्गा) ने पार्वती के मुख की भ्रूभङ्गरचना को मानों अपने फेने के द्वारा हँसकर चन्द्रमा का स्पर्श करने वाले तरङ्गरूपी करों से शिव के बालों को पकड़ लिया था ॥५४॥

संस्कृत व्याख्या—तस्मात्=पूर्वोक्तात् कुरुक्षेत्रात्, अनुकनखलं=कनखल-गिरिसमीपे, शैलराजावतीर्णां=हिमालयारूढ़ाम्, सगरतनयस्वर्गसोपान-पङ्क्तिं=सगरसुतनाकप्राप्तिसाधनभूतम्, जह्नोः=एतदाख्यस्य राज्ञः, कन्यां=सुताम्, गच्छेः=व्रजेः, या=जाह्नवी, गौरीवक्त्रभ्रुकुटिरचनां=पार्वतीमुख-भ्रूभङ्गनिर्मिताम्, फेनैः=डिण्डीरैः, विहस्य इव=उपहासं कृत्वा इव, इन्दुलग्नोर्मिहस्ता=चन्द्रसंलग्नतरङ्गकरा, शम्भोः=शङ्करस्य, केशग्रहणं=कचग्रहणम्, अकरोत्=कृतवती । उत्प्रेक्षालङ्कारः । मन्दाक्रान्ता वृत्तम् ॥५४॥

आलोक

गच्छेः--गम् धातु विधिलिङ्लकार म०पु० ए०व० । अनुकनखलम्—कनखलस्य समीपे अनुकनखलम्—यहाँ 'अनुर्यत्समया' इस नियम से अव्ययीभाव समास हुआ है । कनखल प्राचीन तीर्थस्थान है । यह सहारनपुर जिले में हरद्वार के समीप विद्यमान् है । स्कन्द पुराण में इसकी व्याख्या इस प्रकार की गई है—"खलः को नाऽत्र मुक्तिं वै भजते तत्र मज्जनात् । अतः कनखलं तीर्थं नाम्ना चक्रुर्मुनीश्वराः ॥" अर्थात् कौन सा खल इसमें स्नान करने से मुक्त नहीं हो जाता है अर्थात् हरेक मुक्त हो जाता है इसीलिये मुनीश्वरों ने इसका नाम कनखल रक्खा । शैलराजावतीर्णाम्--शैलानां राजः शैलराजः, (षष्ठी तत्पुरुष), तस्मात् अवतीर्णां (पञ्चमी तत्पुरुष) । अवतीर्णा—अव+तॄ+क्त+टाप् । जह्नोः कन्याम्—सूर्यवंश के प्रसिद्ध भूपति जह्नु ने एक यज्ञ का अनुष्ठान किया था । गङ्गा ने उनकी यज्ञशाला को जलाप्लावित कर दिया इस पर क्रुद्धित होकर राजा जह्नु ने अपने तपोबल से गङ्गा को पी लिया । देवताओं के द्वारा प्रार्थना किये जाने पर उन्होंने अपने कर्णछिद्र से गङ्गा जी को बाहर निकाल दिया । तभी से गङ्गा जाह्नवी कहलायीं । सगरतनयस्वर्गसोपानपङ्क्तिम्--सगरस्य तनयः सगरतनयः (षष्ठी तत्पुरुष) । सोपानानां पङ्क्तिः सोपानपङ्क्तिः (षष्ठी तत्पुरुष) । स्वर्गस्य सोपानपङ्क्तिः स्वर्गसोपानपङ्क्तिः (षष्ठी तत्पुरुष) । सगरतनयानां स्वर्गसोपानपङ्क्तिः सगरतनयस्वर्गसोपानपङ्क्तिः, ताम् । राजा सगर सूर्यवंश के अत्यन्त प्रभावी

भूपति थे । जब ये गर्भ में स्थित थे उस समय इनकी सौतेली माँ ने इनकी माँ को गर (जहर) दे दिया था परन्तु एक तपस्वी मुनि की कृपा से इनका सकुशल जन्म हुआ । तभी से इनका नाम सगर पड़ गया । इनके केशिनी और सुमति नाम की दो रानियाँ थीं । मुनि के वरदान से केशिनी से असमञ्जस नामक एक पुत्र और सुमति से साठ हजार पुत्र उत्पन्न हुये । महाराज सगर ने इन्द्रपद को प्राप्त करने के लिये सौवें अश्वमेघ यज्ञ का शुभानुष्ठान किया जिससे भयभीत होकर इन्द्र ने इनके अश्वमेघीय अश्व को चुराकर पाताल में कपिलमुनि के पास बाँध दिया । सगर के साठ हजार पुत्र अश्व के अन्वेषण में लग गये । खोजते-खोजते वे पाताल लोक पहुँचे और वहाँ उन्होंने देखा कि अश्व कपिलमुनि के समीप बँधा हुआ है । कपिलमुनि को चोर समझकर उन्होंने उनका अपमान किया । इससे क्रुद्धित होकर कपिलमुनि ने उन्हें भस्म कर दिया । भस्म हुये अपने पूर्वजों के उद्धार के लिये अंशुमान आदि राजाओं ने गङ्गा को मनुष्यलोक में लाने के लिये प्रयास किये परन्तु वे सब असफल रहे । इससे पश्चात् सगरवंश में उत्पन्न राजा भगीरथ ने कठोर तपस्या करके गङ्गा को मर्त्यलोक में लाकर अपने पूर्वपुरुषों का उद्धार किया । तभी से गङ्गा जी का नाम भागीरथी पड़ गया है । गौरीवक्त्रभ्रुकुटिरचनाम्--गौर्याः वक्त्रं गौरीवक्त्रम् (षष्ठी तत्पुरुष) भ्रुकुटेः रचना भ्रुकुटिरचना (षष्ठी तत्पुरुष) गौरीवक्त्रे भ्रुकुटिरचना गौरीवक्त्रभ्रुकुटिरचना, ताम् (सप्तमी तत्पुरुष) । गौरी--"उमा कात्यायनी गौरी काली हैमवतीश्वरी ।"--अमरकोश । भ्रुकुटिः--'भ्रुकुटिः भ्रूकुटिः स्त्रियाम्' - अमरकोश । जब पृथ्वी गङ्गा के भार को धारण करने में असमर्थ हुई तो भगीरथ की प्रार्थना से प्रसन्न शिव ने गङ्गा को अपनी जटाओं में धारण कर लिया । गङ्गारूपी सौतस्त्री को अपने पति के शिर में स्थित देख कर ईर्ष्या से अपनी भौंहें चढ़ा ली परन्तु गङ्गा ने उनकी परवाह न कर अपने फेनरूपी हास के द्वारा उनका उपहास कर तरङ्गरूपी करों को चन्द्रमा के ऊपर लगाते हुये शङ्कर जी के केशों को पकड़ लिया । विहस्य--वि + हस् + क्त्वा → ल्यप् । शम्भोः--'शम्भुरीशः पशुपतिः शिवः शूली महेश्वरः'--अमरकोश । केशग्रहणम्--

केशानां ग्रहणं केशग्रहणम् (षष्ठी तत्पुरुष) । अकरोत्--कृ धातु लङ् लकार परस्मैपद प्र०पु० ए०व० । इन्दुलग्नोर्मिहस्ता--ऊर्मयः एव हस्ताः ऊर्महस्ताः (रूपक समास), इन्दौ लग्नाः इन्दुलग्नाः (सप्तमी तत्पुरुष), इन्दुलग्नाः ऊर्मिहस्ताः यस्याः सा (बहुव्रीहि) । 'हिमांशुश्चन्द्रनाश्चन्द्र इन्दुः कुमुदबान्धवः' —अमरकोश । यहाँ इस श्लोक के द्वारा प्रौढ़ नायिका का व्यवहार ध्वनित हो रहा है । जिस प्रकार से कोई प्रौढ़ा नायिका अपनी सौत को न सहती हुई अपने ऊपर पति के प्रेमभाव को प्रकट करती हुई शिरोरत्न के साथ पति के कचों में आकर्षण करती है उसी प्रकार गङ्गा भी पार्वती की ईर्ष्या से भगवान् शङ्कर के मस्तक पर स्थित चन्द्रमा में तरङ्गरूपी करों को लगाकर भगवान् शिव के केशों को ग्रहण कर लेती हैं । इस प्रकार यहाँ प्रगल्भा नायिका के व्यवहारों की व्यञ्जना हो रही है । प्रगल्भा नायिका का लक्षण— "स्मरान्धा गाढ़तारुण्या समस्तरतकोविदा । भावोन्नता दरव्रीडा प्रगल्भाक्रान्त-नायका ।।" भावसाम्य के लिये मुद्राराक्षस के इस श्लोक को देखें—"धन्या केयं स्थिता ते शिरसि शशिकला, किं नु नामैतदस्या, नामैवास्यास्तदेतत्परि-चितमपि ते विस्मृतं कस्य हेतोः । नारीं पृच्छामि नेन्दुं कथयतु विजया न प्रमाणं यदीन्दुर्देव्या निह्नोतुमिच्छोरिति सुरसरितं शाठ्यमव्याद्विभोर्वः ।।" यहाँ 'विहस्य इव' में उत्प्रेक्षा तथा 'इन्दुलग्नोर्मिहस्ता' में रूपक अलङ्कार है । प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति तथा मन्दाक्रान्ता छन्द है ।।५४।।

प्रसङ्ग--यक्ष कहता है कि हे मेघ ! दिग्गज की तरह आकाश में पिछले आधे भाग से लटके हुये तुम जब गङ्गा के निर्मल जल को तिरछे होकर पीने के लिये उद्यत होगे तो तुम्हारी कृष्ण कान्ति गङ्गा के श्वेत जल पर पड़ेगी जिससे गङ्गा प्रयाग के विना भी यमुना के सङ्गम को प्राप्त होकर सुन्दर लगने लगेगी—

तस्याः पातुं सुरगज इव व्योम्नि पश्चार्धलम्बी
त्वं चेदच्छस्फटिकविशदं तर्कयेस्तिर्यगम्भः ।
संसर्पन्त्या सपदि भवतः स्रोतसि च्छाययासौ
स्यादस्थानोपगतयमुना सङ्गमेवाभिरामा ।।५५।।

पदच्छेद—तस्याः पातुं सुरगजाः इव व्योम्नि पश्चार्धलम्बी त्वं चेत् अच्छस्फटिकविशदं तर्कयेः तिर्यक् अम्भः । संसर्पन्त्या सपदि भवतः स्रोतसि छायया असौ स्यात् अस्थानोपगतयमुनासङ्गमा इव अभिरामा ॥५५॥

अन्वय—सुरगजः इव व्योम्नि पश्चार्धलम्बी त्वं चेत् तस्याः अच्छस्फटिकविशदम अम्भः तिर्यक् पातुं तर्कयेः, असौ सपदि स्रोतसि संसर्पन्त्या भवतः छायया अस्थानोपगतयमुनासङ्गमा इव अभिरामा स्यात् ॥५५॥

शब्दार्थ— सुरगजः इव=ऐरावत के समान, व्योम्नि=आकाश में, पश्चार्धलम्बी=पिछले अर्ध भाग से लटके हुये, त्वं=तुम, चेत्=यदि, तस्याः=उस (गङ्गा) के, अच्छस्फटिकविशदम्=स्वच्छ फटिकमणि के समान निर्मल, अम्भः=जल को, तिर्यक्=तिरछे होकर, पातुम्=पीने के लिये, तर्कयेः=सोचोगे, असौ=वह गङ्गा, सपदि=उसी क्षण, स्रोतसि=धारा में, संसर्पन्त्या=सरकती हुई, भवतः=आपकी, छायया=छाया सें, अस्थानोपगतयमुनासङ्गमा इव=विना स्थान (प्रयाग) के यमुना के साथ सङ्गम को प्राप्त हुई की तरह, अभिरामा स्यात्=सुन्दर हो जायेगी ॥५५॥

हिन्दी-अनुवाद—ऐरावत के समान गगन में पिछले अर्ध भाग से लटके हुये तुम यदि उस (गङ्गा) के स्वच्छ स्फटिकमणि के समान निर्मल सलिल को तिरछे होकर पीने की सोचेगे (तो) वह (गङ्गा) उसी क्षण धारा में सरकती हुई तुम्हारी (कृष्ण) कान्ति से विना स्थान (प्रयाग) के यमुना के साथ सङ्गम को प्राप्त हुई की तरह सुन्दर हो जायेगी ॥५५॥

संस्कृत व्याख्या—सुरगजः इव = ऐरावतः इव, व्योम्नि=गगने पश्चार्धलम्बी=पश्चिमार्धलम्बी, त्वं=भवान्, चेत्=यदि, तस्याः=गङ्गायाः अच्छस्फटिकविशदं=स्वच्छस्फटिकनिर्मलम्, अम्भः=सलिलम्, तिर्यक्= तिरश्चीनं यथा स्यात्तथा, पातुं=पानं कर्तुम्, तर्कयेः=विचारयेः, असौ=गङ्गा, सपदि =झटिति, स्रोतसि = प्रवाहे, संसर्पन्त्या = संक्रामन्त्या, भवतः = तव, छायया = कृष्णकान्त्या, अस्थानोपगतयमुनासङ्गमा इव = प्रयागभिन्नस्थानप्राप्तकालिन्दीसमागमा इव, अभिरामा = मनोज्ञा, स्यात् = भवेत् । उपमालङ्कारः । मन्दाक्रान्ता वृत्तम् ॥५५॥

आलोक

पातुम्—पा + तुमुन् । सुरगजः—सुराणां गजः (षष्ठी तत्पुरुष) । सुरगज पद से यहाँ ऐरावत नामक गज लिया जायेगा । ऐरावत आठ दिग्गजों में से एक है । आठ दिग्गज ये हैं—"ऐरावतः पुण्डरीको वामनः कुमुदोऽञ्जनः । पुष्पदन्तः सार्वभौमः सुप्रतीकश्च दिग्गजाः ॥" व्योम्नि—व्ययति इति 'व्येञ् संवरणे' धातु से 'नामन्सीमन्' इत्यादि सूत्र से मन् प्रत्यय होकर निपातनात् व्योम शब्द बनाता है । 'द्यौदिवौ द्वे स्त्रियामभ्रं व्योम पुष्करमम्बरम्'—अमरकोश । पश्चार्धलम्बी—अपर च तत् अर्धं चेति पश्चार्धम् (कर्मधारय) पश्चार्धेन लम्बते तच्छीलः—पश्चार्ध + लम्ब् + णिनि । अच्छस्फटिकविशदम् = अच्छश्चासौ स्फटिकः अच्छस्फटिकः (कर्मधारय), अच्छस्फटिकः इव विशदम् अच्छस्फटिकविशदम्, तत् । यहाँ 'उपमानानि सामान्यवचनैः' से समास हुआ है । तर्कयेः—तर्क + णिच् + विधिलिङ् म० पु० ए० व० । तिर्यक्—तिरः = वक्रम् अञ्चति = गच्छति इति – तिरस् + अञ्च् + क्विन् । अम्भः—'अम्भोऽर्णस्तोयपानीयनीरक्षीराम्बुशंवरम्'—अमरकोश । संसर्पन्त्या—सम् + सृप् + शतृ + ङीप् । सपदि—'सद्यः सपदि तत्क्षणे'—अमरकोश । अस्थानोपगतयमुनासङ्गमा—न स्थानम् अस्थानम् (नञ् समास) । अस्थाने उपगतः अस्थानोपगतः (सप्तमी तत्पुरुष) । स्थानोपगतः यमुनासङ्गमः यस्याः सा । 'कालिन्दी सूर्यतनया यमुना शमनस्वसा'—अमरकोश । अभिरामा—अभि + रम् + घञ् । स्यात्—अस् धातु लिङ्लकार प्र० पु० ए० व० । गङ्गा और यमुना का सङ्गम प्रयाग में होता है अतएव अन्य स्थान इन दोनों नदियों के सङ्गम के अस्थान हैं परन्तु गङ्गा के ऊपर मेघ की चलती हुई कृष्ण कान्ति गङ्गा के जल में प्रतिबिम्बित होकर ऐसे दृश्य को उपस्थित कर देती है कि मानो गङ्गा और यमुना का सङ्गम हो रहा हो । इस श्लोक में सुरगज के साथ मेघ की समानता बतलाने के कारण श्रौती उपमा, 'अच्छस्फटिकविशदम्' में लुप्तोपमा तथा 'अस्थानोपगतयमुनासङ्गमा इव' में उत्प्रेक्षा अलङ्कार है । इनकी निरपेक्ष स्थिति होने से संसृष्टि है । प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति तथा मन्दाक्रान्ता छन्द है ॥५५॥

प्रसङ्ग—यक्ष कहता है कि हे मेघ ! बैठे हुये कस्तूरी मृगों की नाभि की गन्ध से सुगन्वित पत्थरों से युक्त गङ्गा के उत्पत्तिस्थान हिमशुभ्र हिमालय पर्वत पर पहुँच कर उसकी चोटी पर बैठे हुये तुम भगवान् शङ्कर के सफेद बैल के द्वारा विदारित कीचड़ की तरह कान्ति को धारण कर लोगे—

आसीनानां सुरभितशिलं नाभिगन्धैर्मृगाणां
तस्या एव प्रभवमचलं प्राप्य गौरं तुषारैः ।
वक्ष्यस्यध्वश्रमविनयने तस्य शृङ्गे निषण्णः
शोभां शुभ्रत्रिनयनवृषोत्खातपङ्कोपमेयाम् ।। ५६ ।।

पदच्छेद—आसीनानां सुरभितशिलं नाभिगन्धैः मृगाणां तस्याः एव प्रभवम् अचलं प्राप्य गौरं तुषारैः । वक्ष्यति अध्वश्रमविनयने तस्य शृङ्गे निषण्ण । शोभां शुभ्रत्रिनयनवृषोत्खातपङ्कोपमेयाम् ।। ५६ ।।

अन्वय—आसीनानां मृगाणां नाभिगन्धैः सुरभितशिलं तस्याः एव प्रभवं तुषारैः गौरम् अचलं प्राप्य अध्वश्रमविनयने तस्य शृङ्गे निषण्णः शुभ्रत्रिनयनवृषोत्खतपङ्कोपमेयां शोभां वक्ष्यसि ।। ५६ ।।

शब्दार्थ—आसीनानाम्=बैठे हुये, मृगाणाम्=हरिणों की, नाभिगन्धैः =नाभि की गन्ध से, सुरभितशिलम्=सुगन्धित शिलाओं वाले, तस्याः= उस (गङ्गा) के, एव=ही, प्रभवम्=उत्पत्तिस्थान, तुषारैः=हिम से, गौरम्=श्वेत, अचलम्=पर्वत को, प्राप्य=प्राप्त कर, अध्वश्रमविनयने =मार्ग के परिश्रम को दूर करने वाले, तस्य=उसके, शृङ्गे=शिखर पर, निषण्णः=बैठे हुये, शुभ्रत्रिनयनवृषोत्खातपङ्कोपमेयां=(भगवान्) शिव के श्वेत बैल के द्वारा विदारित कीचड़ के समान, शोभाम्=शोभा को, वक्ष्यसि =धारण करोगे ।। ५६ ।।

हिन्दी अनुवाद—बैठे हुये हरिणों की नाभि की सुगन्ध से (कस्तूरी की गन्ध से) सुगन्धित शिलाओं से युक्त उस (गङ्गा) के उत्पत्तिस्थान हिम से धवल पर्वत (हिमालय) को प्राप्त करके मार्ग के परिश्रम को दूर करने वाले उसके शिखर पर बैठे हुये तुम (भगवान्) शिव के श्वेत वृषभ के द्वारा

विदारित कीचड़ के समान शोभा को धारण करोगे ॥ ५६ ॥

संस्कृत व्याख्या–आसीनानां=उपविष्टानाम्, मृगाणां=कस्तूरिकामृगाणाम्, नाभिगन्धैः=कस्तूरीसुगन्धैः, सुरभितशिलं=सुगन्धितप्रस्तरम्, तस्याः एव=गङ्गायाः एव, प्रभवं=कारणम्, तुषारैः=तुहिनैः, गौरं=शुभ्रम्, अचलं=गिरिम्, प्राप्य=आसाद्य, अध्वश्रमविनयने=मार्गपरिश्रमापनयने, तस्य=पूर्वोक्तस्य पर्वतस्य, शृङ्गे=शिखरे, निषण्णः=उपविष्टः, शुभ्रत्रिनयनवृषोत्खातपङ्कोपमेयां = श्वेतशङ्करवृषभविदारितकर्दमतुल्याम्, शोभां=द्युतिम्, वक्ष्यसि=धारयिष्यसि । उपमालङ्कारः । मन्दाक्रान्ता वृत्तम् ॥ ५६ ॥

आलोक

आसीनानाम्—आसते इति आसीनाः, तेषाम् । आस्+शानच् । यहाँ 'ईदासः' इस सूत्र से शानच् के आकार के स्थान पर ईकारादेश होता है । सुरभितशिलम्—सुरभिताः शिलाः यस्य सः, तम् । सुरभिता–सुरभिः सञ्जाता यस्यां सा–सुरभि+इतच्+टाप् । यहाँ 'तदस्य सञ्जातं तारकादिभ्य इतच्' इस सूत्र से इतच् प्रत्यय हुआ है । 'सुरभिर्घ्राणतर्पणः'–अमरकोश । नाभिगन्धैः–नाभीनां गन्धाः नाभिगन्धाः, तैः (षष्ठी तत्पुरुष) । नाभि शब्द का प्रयोग यहाँ कस्तूरिकामद के अर्थ में हुआ है– 'नाभिर्मुख्यनृपे चक्रमध्यक्षत्रिययोः पुमान् । द्वयोः प्राणिप्रतीके स्यात्स्त्रियां कस्तूरिकामदे'–मेदिनीकोश । मृगाणाम्–इस पद के नाभिगन्धैः से सम्बन्धित होने के कारण मृग का अर्थ यहाँ कस्तूरीमृग होगा । प्रभवम्–प्रभवति अस्मात् इति –प्र+भू+अप् । अचलम्—न चलः अचलः, तम् (नञ् तत्पुरुष) । चलः –चल्+अच् । प्राप्य–प्र+आप्+क्त्वा→ल्यप् । गौरम्–'अवदातः सितो गौरो वलक्षो धवलोऽर्जुनः'–अमरकोश । तुषारैः–तुषारस्तुहिनं हिमम्–अमरकोश । वक्ष्यसि–वह् धातु लृट् लकार म० पु० ए० व० । अध्वश्रमविनयने–अध्वनः श्रमः अध्वश्रमः, अध्वश्रमस्य विनयनम् अध्वश्रमविनयनम्, तस्मिन् (षष्ठी तत्पुरुष) । विनयनम्—विनीयते अनेन–वि+नी+ल्युट् । निषण्णः—नि+सद्+क्त । शोभाम्—शोभयति–'शुभ शुम्भ शोभायां' धातु से पचाद्यच् । 'शो ॥ कान्ति-

द्युतिश्छविः'---अमरकोश । शुभ्रत्रिनयनवृषोत्खातपङ्कोपमेयाम्--त्रिनयनस्य वृषः त्रिनयनवृषः (षष्ठी तत्पुरुष), शुभ्रश्चासौ त्रिनयनवृषः शुभ्रत्रिनयनवृषः (कर्मधारय), तेन उत्खातः शुभ्रत्रिनयनवृषोत्खातः (तृतीया तत्पुरुष) स चासौ पङ्कः, तेन उपमेया, ताम् (तृतीया तत्पुरुष) । त्रिनयन—त्रीणि नयनानि यस्य सः (बहुव्रीहि) । सूर्य, चन्द्र और अग्नि ये तीन भगवान् शङ्कर के नेत्र हैं । अग्निरूप नेत्र उनके ललाट में स्थित है जो कि प्रलयकाल में खुलता है और जिसके द्वारा संहार हो जाता है । उत्खात---उत्+खन् +क्त । वृषः---यहाँ महादेव के वाहन के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है । इस वृष को धर्म का रूप माना गया है—'सुकृते वृषभे वृषः'---अमरकोश । उपमेयः---उपमातुं योग्यः--उप+मा+यत् । यहाँ 'अचोयत्' से यत् प्रत्यय तथा 'ईद्यति' से आकार को ईकारादेश । यहाँ कवि ने एक रुचिर कल्पना प्रस्तुत की है---जिस प्रकार देवाधिदेव महादेव के श्वेत वृषभ के द्वारा कीचड़ उछाल कर सिर के ऊपर रख लिया जाता है उसी प्रकार कृष्ण वर्ण का मेघ जब हिमाच्छादित अतएव श्वेत हिमालय पर स्थित होता है तो उस शोभा से युक्त हो जाता है । यहाँ उपमा अलङ्कार है । प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति तथा मन्दाक्रान्ता छन्द है ।। ५६ ।।

प्रसङ्ग—यक्ष कहता है कि हे मेघ ! पवन के द्वारा हिलाये गये चीड़ वृक्षों के तनों के रगड़ने से उत्पन्न अग्नि के द्वारा यदि हिमालय पर्वत को पीड़ित किया जा रहा हो तो आप अपनी हजारों जल की धाराओं के द्वारा उस वनाग्नि को शान्त कर दें क्योंकि श्रेष्ठ पुरुषों की सम्पत्तियाँ विपत्तिग्रस्त लोगों के कष्टों को दूर करने के लिये होती हैं---

तं चेद्वायौ सरति सरलस्कन्धसङ्घट्टजन्मा
बाधेतोल्काक्षपितचमरीबालभारो दवाग्निः ।
अर्हस्येनं शमयितुमलं वारिधारासहस्रै-
रापन्नार्तिप्रशमनफलाः सम्पदो ह्युत्तमानाम् ।। ५७ ।।

पदच्छेद—तं चेत् वायौ सरति सरलस्कन्धसङ्घट्टजन्मा बाधेत उल्काक्षपित-

चमरीवालभारः दवाग्निः । अर्हसि एनं शमयितुम् अलम् वारिधारासहस्रैः आपन्नार्तिप्रशमनफलाः सम्पदः हि उत्तमानाम् ।। ५७ ।।

अन्वय —वायौ सरति सरलस्कन्धसङ्घट्टजन्मा उल्काक्षपितचमरीबालभारः दवाग्निः तं बाधेत चेत् एनं वारिधारासहस्रैः अलं शमयितुम् अर्हसि, हि उत्तमानां सम्पदः आपन्नार्तिप्रशमनफलाः (भवन्ति) ।। ५ ।।

शब्दार्थ—वायौ= पवन के, सरति=चलने पर, सरलस्कन्धसङ्घट्टजन्मा =सरल (चीड़) वृक्षों के तनों की रगड़ से उत्पन्न, उल्काक्षपितचमरीबा-लभारः=ज्वालाओं से चमरी गायों के बालों को जलाने वाली, दवाग्निः =वनाग्नि, तं बाधेत चेत्=यदि उस हिमालय को पीड़ित करे, एनम् = (तो) इसे, वारिधारासहस्रैः=सहस्रों जलधाराओं के द्वाराः, अलम् =विधिवत्, शमयितुम् अर्हसि=शान्त करना चाहिये, हि=क्योंकि, उत्तमानाम् =श्रेष्ठ लोगों की, सम्पदः=सम्पत्तियाँ, आपन्नार्तिप्रशमनफलाः=पीड़ित लोगों के पीड़ा के निवारणरूप फल वाली, (भवन्ति=होती हैं) ।। ५७ ।।

हिन्दी अनुवाद—पवन के बहने पर सरल (चीड़) वृक्षों के तनों की रगड़ से उत्पन्न और ज्वालाओं से चमरी गायों के बाल समूह को जला देने वाली वनाग्नि यदि उसे (हिमालय को) पीड़ित करे (तो तुम्हें) इस (अग्नि) को सहस्रों जल की धाराओं के द्वारा विधिवत् शान्त कर देना चाहिए क्योंकि श्रेष्ठ पुरुषों की सम्पत्तियाँ आपत्तिग्रस्त लोगों के कष्टों के निवारणरूप फल वाली होती हैं ।। ५७ ।।

संस्कृत व्याख्या— वायौ=पवने, सरति=वाति सति, सरलस्कन्धसङ्घट्टजन्मा =पीतद्रुकाण्डसङ्घर्षणोत्पन्नः, उल्काक्षपितचमरीबालभारः=स्फुलिङ्गदग्धचमरीकुन्तलनिचयः, दवाग्नि=वनाग्निः, तं=हिमालयम्, बाधेत= पीडयेत्, चेत्=यदि (तर्हि) एनं=वनाग्निम्, वारिधारासहस्रैः=सलिलधारासहस्रैः, अलं=पर्याप्तं यथा स्यात्तथा, शमयितुम् अर्हसि=निर्वापयितुं योग्योऽसि, हि=यतः, उत्तमानां=श्रेष्ठानाम्, सम्पदः=सम्पत्तयः, आपन्नार्तिप्रशमनफलाः=विपत्तिग्रस्तजनपीडानिवारणपराः, भवन्तीति शेषः । अर्थान्तरन्यासोऽलङ्कारः । मन्दाक्रान्ता वृत्तम् ।। ५७ ।।

आलोक

वायौ –वाति इति वायुः, तस्मिन्। वा धातु से 'कृवापाजि'—इत्यादि सूत्र से उण् प्रत्यय तथा 'आतो युक्'–इत्यादि सूत्र से युगागम। 'श्वसनः स्पर्शनो वायुर्मातरिश्वा सदागतिः'–अमरकोश। सरति–सृ+शतृ (सप्तमी एकवचन)। सरलस्कन्धसङ्घट्टजन्मा–सरलानां स्कन्धः सरलस्कन्धाः (षष्ठी तत्पुरुष)। सरलस्कन्धानां सङ्घट्टः सरलस्कन्धसङ्घटः (षष्ठी तत्पुरुष), सरलस्कन्धसङ्घट्टात् जन्म यस्य सः (बहुव्रीहि)। 'अस्त्री प्रकाण्डः स्कन्धः स्यान्मूलाच्छाखाऽवधेस्तरोः'–अमरकोश। 'पीतद्रुः सरलः पूतिकाष्ठं च'—अमरकोश। बाधेत–बाध् धातु विलिङ्लकार प्र० पु० ए० व०। उल्काक्षपितचमरीबालभारः—उल्काभिः क्षपिताः उल्काक्षपिताः [तृतीया तत्पुरुष)। उल्काक्षपिताः चमरीवालभाराः येन सः (बहुव्रीहि)। 'उल्का स्यान्निर्गतज्वाला'–अमरकोश। क्षपित–क्षै+णिच्+क्त। दवाग्निः–दव एव अग्निः दवाग्निः अथवा दवस्य अग्निः दवाग्निः। 'वने च वनवह्नौ च दवो दाव इतीष्यते'–यादवकोश। वारिधारासहस्रैः–वारीणां धाराः वारिधाराः[षष्ठी तत्पुरुष],तासां सहस्राणि, तैः (षष्ठी तत्पुरुष)। 'आपः स्त्री भूम्नि वार्वारि सलिलं कमलं जलम्'–अमरकोश। शमयितुम्–शम्+णिच्+तुमुन्। अलम्—अलति–'अल भूषणादौ' धातु से अम् प्रत्यय। 'अलं भूषणपर्याप्तिवारणेषु निरर्थके। अलं शक्तौ च निर्दिष्टम्'–विश्वकोश। यहाँ पर्याप्त के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। आपन्नार्तिप्रशमनफलाः–आपन्नानाम् आर्तिः आपन्नार्तिः, आपन्नार्तीनां प्रशमनं आपन्नार्तिप्रशमनम् (षष्ठी तत्पुरुष) आपन्नार्तिप्रशमनमेव फलं यासां ताः (बहुव्रीहि)। आपन्न–आङ्+पद्+क्त। 'आपन्न आपत्प्राप्तः स्यात्'–अमरकोश। आर्तिः—आङ्+ऋ+क्तिन्। प्रशमनम्—प्र+शम्+ल्युट्। इस भाव को कवि ने शाकुन्तल में भी इस प्रकार प्रस्तुत किया है–'आपन्नाभयसत्रेषु दीक्षिताः खलु पौरवाः'। कहने का भाव यह है कि श्रेष्ठ पुरुषों की सम्पत्तियाँ स्वयं के लिए न होकर दूसरों के लिये होती हैं। अन्यत्र भी कहा गया है–

'पिबन्ति नद्यः स्वयमेव नाम्भः, स्वयं न खादन्ति फलानि वृक्षाः।
नादन्ति शस्यं खलु वारिवाहाः, परोपकाराय सतां विभूतयः॥'

यहाँ चतुर्थ चरण के द्वारा तृतीय चरण के अर्थ के समर्थित होने से अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है। प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति तथा मन्दाक्रान्ता छन्द है ॥५७॥

प्रसङ्ग--हिमालय पर्वत पर स्थित शरभ नामक पशुओं के मार्ग को यद्यपि तुम छोड़ दोगे फिर भी वे क्रोधाभिभूत होकर वेगपूर्वक छलांग लगायेंगे तो अपने ही अङ्गों को तोड़ लेंगे। यदि वे तुम्हारा अतिक्रमण करना चाहें तो तुम ओलों की भीषण वर्षा के द्वारा उन्हें तितर-बितर कर देना—

ये संरम्भोत्पतनरभसाः स्वाङ्गभङ्गाय तस्मिन्
मुक्ताध्वानं सपदि शरभा लङ्घयेयुर्भवन्तम् ।
तान्कुर्वीथास्तुमुलकरकावृष्टिपातावकीर्णान्
के वा न स्युः परिभवपदं निष्फलारम्भयत्नाः ॥५८॥

पदच्छेद--ये संरम्भोत्पतनरभसाः स्वाङ्गभङ्गाय तस्मिन् मुक्ताध्वानं सपदि शरभाः लङ्घयेयुः भवन्तम् । तान् कुर्वीथाः तुमुलकरकावृष्टिपातावकीर्णान् के वा न स्युः परिभवपदं निष्फलारम्भयत्नाः ॥५८॥

अन्वय--तस्मिन् संरम्भोत्पतनरभसाः ये शरभाः मुक्ताध्वानं भवन्तं सपदि स्वाङ्गभङ्गाय लङ्घयेयुः तान् तुमुलकरकावृष्टिपातावकीर्णान् कुर्वीथाः निष्फलारम्भयत्नाः के वा परिभवपदं न स्युः ॥५८॥

शब्दार्थ--तस्मिन्=उस (हिमालय पर्वत) पर, संरम्भोत्पतनरभसाः=क्रोध के कारण उछलने में वेग वाले, ये=जो, शरभाः=शरभ, मुक्ताध्वानम्=मार्ग को छोड़ देने वाले, भवन्तम्=आपको, सपदि=तुरन्त, स्वाङ्गभङ्गाय=अपने अङ्गों के टूटने के लिए, लङ्घयेयुः=लाँघे, तान्=उन्हें, तुमुलकरकावृष्टिपातावकीर्णान्=भयङ्कर ओलों की वर्षा करके तितर-बितर, कुर्वीथाः=कर देना, निष्फलारम्भयत्नाः=निष्फल कार्य में प्रयत्न करने वाले, के वा=कौन, परिभवपदम्=तिरस्कार के विषय, न स्युः=नहीं होते हैं ॥ ५८ ॥

हिन्दी अनुवाद—उस (हिमालय पर्वत) पर क्रोध के कारण वेग से

उछलने वाले जो शरभ मार्ग छोड़ देने वाले आपको तुरन्त अपने अङ्गों के टूट जाने के लिये लाँघें (तो) उन्हें भयङ्कर ओलों की वर्षा करके तितर-बितर कर देना। अथवा, निष्फल कार्यों में प्रयास करने वाले कौन लोग तिरस्कार के पात्र नहीं होते ?॥५८॥

संस्कृत व्याख्या--तस्मिन् = हिमालये, संरम्भोत्पतनरभसाः = क्रोधोत्प्लवनवेगवन्तः, ये शरभाः = अष्टापदमृगविशेषाः, मुक्ताध्वानं = परित्यक्तमार्गम्, भवन्तं = त्वाम्, सपदि = सद्यः, स्वाङ्गभङ्गाय = स्वशरीरावयवविनाशाय, लङ्घयेयुः = अतिक्रमेयुः, तान = शरभान्, तुमुलकरकावृष्टिपातावकीर्णान् = भयङ्करवर्षोपलवृष्टिनिक्षिप्तान, कुर्वीथाः = कुरुष्व, निष्फलारम्भयत्नाः = निष्फलकर्मप्रयासाः, के वा = जनाः, परिभवपदं = पराभवभाजनम्, न स्युः = नो भवेयुः। अर्थान्तरन्यासोऽलङ्कारः। मन्दाक्रान्ता वृत्तम् ॥५८॥

आलोक

संरम्भोत्पतनरभसाः—संरम्भेण उत्पतनं संरम्भोत्पतनम् (तृतीया तत्पुरुष)। संरम्भोत्पतने रभसः येषां ते (बहुव्रीहि)। संरम्भः--सम् + रम् + घञ्। उत्पतनम्--उत् + पत् + ल्युट्। संरम्भः सम्भ्रमे कोपे'–शब्दार्णव। 'रभसो वेगहर्षयोः'–अमरकोश। स्वाङ्गभङ्गाय--स्वस्य अङ्गानि स्वाङ्गानि (षष्ठी तत्पुरुष), तेषां भङ्गः, तस्मै (षष्ठी तत्पुरुष)। मुक्ताध्वानम्–मुक्तः अध्वा येन, तम् (बहुव्रीहि)। मुक्ताः–मुच् + क्त। शरभाः–आठ चरणों वाले मृग को शरभ कहते हैं। सम्प्रति यह मृग मिलता नहीं है। ऐसा कहा जाता है कि इसके चार पैर नीचे को और चार पैर ऊपर को होते हैं। यह सिंह का भी संहार कर डालता है। पौराणिक कथा है कि भगवान् विष्णु ने नृसिंह रूप को धारण कर हिरण्यकशिपु नामक दैत्य को अपने नाखूनों से विदीर्ण कर मार डाला। इतने पर भी उनका क्रोध शान्त नहीं हुआ। ऐसी स्थिति में उनके क्रोध से लोक संहार का भय समुपस्थित हुआ। अतएव देवताओं ने महादेव से प्रार्थना की। देवताओं की प्रार्थना को स्वीकार कर महादेव ने शरभ के रूप को धारण कर नृसिंह को लोकरक्षण के लिए परास्त किया। पुराणों और तान्त्रिक ग्रन्थों में शरभ की उपासना पर प्रकाश डाला गया है। प्रो० विल्सन ने शरभ का अर्थ टिड्डा (Grasshopper) किया है

परन्तु विद्वान् इससे सहमत नहीं हैं। प्रकृत सन्दर्भ में मृग अर्थ ही अधिक संगत है। अमरकोश में इसे एक मृगभेद वतलाया गया है–'गन्धर्वः शरभो रामः सृमरो गवयः शशः। इत्यादयो मृगेन्द्राद्या गवाद्याः पशुजातयः ॥" "शरभः शलभे चाष्टापदे प्रोक्तो मृगान्तरे"—विश्वकोश। लङ्घयेयुः—लङ्घ+णिच्+विधिलिङ् लकार म० पु० व० व०। भगवन्तम्—भा+डवतु। कुर्वीथाः—कृ धातु विधिलिङ् लकार म० पु० ए० व०। तुमुलकरकावृष्टिपातावकीर्णान्—तुमुलाश्च ताः करकाः तुमुलकरकाः (कर्मधारय), तासां वृष्टिः (षष्ठी तत्पुरुष), तस्याः पातः (षष्ठी तत्पुरुष), तेन अवकीर्णाः, तान् (तृतीया तत्पुरुष)। 'वर्षोपलस्तु करका'—अमरकोश। अवकीर्णः—अव+कॄ+क्त। परिभवपदम्—परिभवस्य पदम् (षष्ठी तत्पुरुष)। परिभव—परि+भू+अप्। 'अनादरः परिभवः परीभावस्तिरस्क्रिया'—अमरकोश। पद का प्रयोग यहाँ स्थान के अर्थ में हुआ है—'पदं व्यवसितत्राणस्थानलक्ष्माङ्घ्रिवस्तुषु'—अमरकोश। निष्फलारम्भयत्नाः—आरम्भस्य यत्नः आरम्भयत्नः (षष्ठी तत्पुरुष), निष्फलः आरम्भयत्नः येषां ते। आरम्भः—आङ्+रम्+घञ्। कहने का भाव यह है कि जो लोग इस प्रकार के कार्य में प्रयत्न करते हैं जिसका कोई फल ही नहीं होता इस प्रकार फलरहित कार्य को करने वाले लोग फलानुपलब्धि से तिरस्कार की पात्रता को प्राप्त कर लेते हैं। चतुर्थ चरण के द्वारा तृतीय चरण के अर्थ से समर्थित होने से अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है। 'के वा परिभवपदं न स्युः' अर्थात् इस प्रकार के कौन लोग तिरस्कार के पात्र नहीं होते हैं, भाव यह है कि ऐसे सभी लोग तिरस्कार के भाजन होते हैं। इस प्रकार यहाँ काकु है। काकु का लक्षण—'भिन्नकण्ठध्वनिर्धीरैः काकुरित्यभिधीयते'—साहित्यदर्पण। प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति तथा मन्दाक्रान्ता छन्द है ॥५८॥

प्रसङ्ग—यक्ष कहता है कि हे मेघ! हिमालय पर्वत की एक शिला पर भगवान् शिव का चरणचिह्न वना हुआ है जिसकी शिवगण सदैव पूजा करते हैं। तुम भी उस शिव के चरणचिह्न की भक्ति से विनम्र होकर प्रदक्षिणा कर लेना क्योंकि जो लोग उस चरणचिह्न का दर्शन कर लेते हैं वे पापरहित होकर

शरीर त्यागने के बाद स्थायी रूप से शिव के गण हो जाते हैं—

तत्र व्यक्तं दृषदि चरणन्यासमर्धेन्दुमौलेः
शश्वत्सिद्धैरुपचितबलिं भक्तिनम्रः परीयाः ।
यस्मिन् दृष्टे करणविगमादूर्ध्वमुद्धूतपापाः
कल्पिष्यन्ते स्थिरगणपदप्राप्तये श्रद्दधानाः ॥५९॥

पदच्छेद—तत्र व्यक्तं दृषदि चरणन्यासम् अर्धेन्दुमौलेः शश्वत् सिद्धैः उपचितबलिं भक्तिनम्रः परीयाः । यस्मिन् दृष्टे करणविगमात् ऊर्ध्वम् उद्धूतपापाः कल्पिष्यन्ते स्थिरगणपदप्राप्तये श्रद्दधानाः ॥५९॥

अन्वय—तत्र दृषदि व्यक्तं सिद्धैः शश्वत् उपचितबलिम्, अर्धेन्दुमौलेः चरणन्यासं भक्तिनम्रः परीयाः यस्मिन् दृष्टे उद्धूतपापाः श्रद्दधानाः करणविगमात् ऊर्ध्वं स्थिरगणपदप्राप्तये कल्पिष्यन्ते ॥५९॥

शब्दार्थ—तत्र=वहाँ (हिमालय पर), दृषदि=शिला में, व्यक्तम्=प्रकट, सिद्धैः=सिद्धों के द्वारा, शश्वत्=निरन्तर, उपचितबलिम्=उपहार भेंट किये गये, अर्धेन्दुमौलेः=भगवान् शिव के, चरणन्यासम्=चरणचिह्न की, भक्तिनम्रः=भक्ति से नम्र होकर, परीयाः=प्रदक्षिणा करना, यस्मिंन्=जिसके, दृष्टे=देख लेने पर, उद्धूतपापाः=नष्ट हुये पाप वाले, श्रद्दधानाः=श्रद्धालु लोग, करणविगमात्=शरीर त्याग के, ऊर्ध्वम्=पश्चात्, स्थिरगणपदप्राप्तये=स्थायी शिवगण के पद को प्राप्त करने में, कल्पिष्यन्ते=समर्थ हो जाते हैं ॥५९॥

हिन्दी अनुवाद—वहाँ (उस हिमालय पर्वत पर) शिला में प्रकट (स्पष्ट और) सिद्धों के द्वारा निरन्तर उपहार भेंट किये गये (पूजा किये गये) भगवान् शिव के चरणचिह्न की भक्ति से विनम्र होकर प्रदक्षिणा करना जिस (चरणचिह्न) को देख लेने पर नष्ट हुये पाप वाले श्रद्धालुजन शरीरत्याग के अनन्तर स्थायी रूप से शिवगण के पद को प्राप्त करने में समर्थ हो जाते हैं ॥५९॥

संस्कृत व्याख्या—तत्र=तस्मिन् हिमालये, दृषदि=शिलायाम्, व्यक्तं=

स्पष्टम्, सिद्धैः=सिद्धदेवैः, शश्वत्=सर्वदा, उपचितबलिं=रचितपूजाविधिम्, अर्धेन्दुमौलेः=चन्द्रशेखरस्य, चरणन्यासं=पादविन्यासम्, भक्तिनम्रः=भक्तिभावेन नमनशीलः, परीयाः=प्रदक्षिणां कुरु, यस्मिन्=पूर्वोक्ते चरणन्यासे, दृष्टे=विलोकिते सति, उद्धूतपापाः=निरस्तपापाः, श्रद्दधानाः=श्रद्धालुजनाः करणविगमात्=शरीरत्यागात्, ऊर्ध्वं=अनन्तरम्, स्थिरगणपदप्राप्तये=शाश्वतप्रमथपदलाभाय, कल्पिष्यन्ते=समर्थाः भविष्यन्ति । उदात्तमलङ्कारः । मन्दाक्रान्ता वृत्तम् ॥५९॥

आलोक

तत्र—तद्+त्रल् । व्यक्तम्—वि+अञ्ज्+क्त । दृषदि—'पाषाणप्रस्तरग्रावोपलाऽश्मानः शिला दृषत्'—अमरकोश । चरणन्यासम्—चरणयोः न्यासः चरणन्यासः, तम् (सप्तमी तत्पुरुष) । 'पादाङ्घ्रिश्चरणोऽस्त्रियाम्'—अमरकोश । न्यासः—नि+अस्+घञ् । अर्धेन्दुमौलेः—अर्धश्चासौ इन्दुः अर्धेन्दुः (कर्मधारय), अर्धेन्दुः मौलौ यस्य सः, तस्य (बहुव्रीहि) । यहाँ 'गड्वादेः परा सप्तमी' इस वार्तिक से सप्तम्यन्त मौलि पद का परनिपात हुआ है । 'इन्दुः कुमुदबान्धवः'—अमरकोश । शश्वत—'अभीक्ष्णं शश्वदनारते'—अमरकोश । यह अव्ययपद है अतएव इसके रूप नहीं चलेंगे । कहा भी गया है—'सदृशं त्रिपु लिङ्गेषु सर्वासु च विभक्तिषु । वचनेषु च सर्वेषु यन्न व्येति तदव्ययम्' । सिद्धैः—सिध्+क्त । यहाँ सिद्धपद से योगसिद्धि को पाने वाले या देवयोनि विशेष दोनों ही अर्थ लिये जा सकते हैं । 'सिद्धो व्यासादिके देवयोनौ निष्पन्नमुक्तयोः । नित्ये प्रसिद्धे'—हेमचन्द्र । 'सिद्धिर्निष्पत्तियोगयोः'—विश्वकोश । उपचितबलिम्—उपचितः बलिः यस्य सः तम् (बहुव्रीहि) । उपचितः—उप+चि+क्त । 'बलिः पूजोपहारयोः'—यादवकोश । कहीं-कहीं उपहृतबलिम् ऐसा भी पाठ है । भक्तिनम्रः—भक्त्या नम्रः भक्तिनम्रः (तृतीया तत्पुरुष) । भक्तिः—भज्+क्तिन् । नम्रः—नम्+र । परीयाः—परि+इण्+विधिलिङ्लकार म० पु० ए० व० । दृष्टे—दृश्+क्त । करणविगमात्—करणस्य विगमात् करणविगमात् (षष्ठी तत्पुरुष) । करण शब्द का प्रयोग यहाँ गात्र के अर्थ में हुआ है—'करणं साधक-

तंमं क्षेत्रगात्रेन्द्रियेष्वपि'–अमरकोश । विगमः–वि + गम् + अप् । यहाँ ऊर्ध्वं-पद के योग में पञ्चमी हुई है । उद्धूतपापाः–उद्धूतं पापं येभ्यः ते (बहुव्रीहि) उद्धूतः–उत् + धू + क्त । कल्पिष्यन्ते–क्लृप् धातु लृट् लकार प्र० पु० व० व० । स्थिरगणपदप्राप्तये–गणानां पदं गणपदम् (षष्ठी तत्पुरुष), स्थिरं च तत् गणपद स्थिरगणपदम् (कर्मधारय), स्थिरगणपदस्य प्राप्तिः, तस्यै (षष्ठी तत्पुरुष) । श्रद्दधानाः–श्रत् + धा + शानच् । यहाँ 'श्रदन्तरोरुपसर्गवद्वृत्तिः' इस वार्तिक से श्रत् अव्यय का उपसर्गत्व का अतिदेश होने के कारण शानच् का विधान हुआ है । 'गणाः प्रमथसंख्यौघाः' वैजयन्तीकोश । यक्ष मेघ से कहता है कि हे मेघ ! यद्यपि हमारे सन्देश को ले जाने में आपको अनेक कष्ट होंगे फिर भी मार्ग में लाभों का भी पूर्ण अभाव नहीं रहेगा । मार्ग में भगवान् शिव के चरणचिह्नों की प्रदक्षिणा करके आप स्थायी गणपद की प्राप्ति कर सकेंगे । यहाँ कवि का भगवान् शिव के प्रति भक्तिभाव भी अभिव्यञ्जित हो रहा है । भगवान् शङ्कर ने अपने चरणविन्यास को हिमालय पर्वत पर किया है इसका उल्लेख शम्भु-रहस्य में हुआ है—"अव्यक्तं व्यञ्जयामास शिवः श्रीचरणद्वयम् । हिमाऽद्रौ शाम्भवादीनां सिद्धये सर्वकर्मणाम् ।। दृष्ट्वा श्रीचरणं सम्यक् साधकः स्थिर-येत्तनुम् । इच्छाऽधीनशरीरो हि विचरेच्च जगत्त्रयम् ।।" यहाँ उदात्त अलङ्कार है । प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति तथा मन्दाक्रान्ता छन्द है ।।५९।।

प्रसङ्ग—वहाँ वायु से परिपूर्ण कीचक (शब्द करने वाले बाँस) मधुर शब्द कर रहे होंगे । किन्नरियाँ त्रिपुरविजय का गीत गा रही होंगी । ऐसे समय पर तुम्हारा शब्द मृदङ्ग का कार्य करे तो वहाँ भगवान् शिव के पूजन के लिये चाही गई सङ्गीत की समस्त सामग्री पूरी हो जायेगी—

शब्दायन्ते मधुरमनिलैः कीचकाः पूर्यमाणाः
संरक्ताभिस्त्रिपुरविजयो गीयते किन्नरीभिः ।
निर्ह्लादस्ते मुरज इव चेत्कन्दरेषु ध्वनिः स्यात्
सङ्गीतार्थो ननु पशुपतेस्तत्र भावी समग्रः ।।६०।।

पदच्छेद—शब्दायन्ते मधुरम् अनिलैः कीचकाः पूर्यमाणाः । संरक्ताभिः

त्रिपुरविजयः गीयते किन्नरीभिः । निर्ह्रादः ते मुरजे इव चेत् कन्दरेषु ध्वनिः स्यात् सङ्गीतार्थः ननु पशुपतेः तत्र भावी समग्रः ॥६०॥

अन्वय–अनिलैः पूर्यमाणाः कीचकाः मधुरं शब्दायन्ते । संरक्ताभिः किन्नरीभिः त्रिपुरविजयः गीयते । कन्दरेषु ते निर्ह्रादः मुरजे ध्वनिः इव स्यात् चेत् तत्र पशुपतेः सङ्गीतार्थः ननु समग्रः भावी ॥६०॥

शब्दार्थ—अनिलैः=वायु से, पूर्यमाणाः=भरे जाते हुये, कीचकाः=शब्द करने वाले बाँस, मधुरम्=मधुर, शब्दायन्ते=शब्द करते हैं, संरक्ताभिः=अनुरक्त, किन्नरीभिः=किन्नरियों के द्वारा, त्रिपुरविजयः=त्रिपुरविजय, गीयते=गाया जा रहा है, कन्दरेषु=गुफाओं में, ते=तुम्हारा, निर्ह्रादः=शब्द, मुरजे ध्वनिः इव=मृदङ्ग में होने वाले शब्द के समान, स्यात्=हो जाये, चेत्=यदि, तत्र=वहाँ, पशुपतेः=भगवान् शिव की, सङ्गीतार्थः=सङ्गीत की सामग्री, ननु=निश्चय ही, समग्रः=पूर्ण, भावी=हो जायेगी ॥६०॥

हिन्दी अनुवाद—वायु के द्वारा भरे जाते हुये शब्द करने वाले बाँस (कीचक) मधुर शब्द करते हैं। अनुरक्त किन्नर सुन्दरियाँ त्रिपुरविजय का गान कर रही हैं। यदि गुफाओं में तुम्हारा गर्जन नगाड़े के शब्द के समान हो जाये तो वहाँ भगवान् शिव की सङ्गीत की सामग्री निश्चय ही पूर्ण हो जायेगी ॥६०॥

संस्कृत व्याख्या—अनिलैः=पवनैः, पूर्यमाणाः=क्रियमाणपूरणाः, कीचकाः=वेणुविशेषाः, मधुरं=श्रुतिसुखं यथा स्यात्तथा, शब्दायन्ते=शब्दं कुर्वन्ति, संरक्ताभिः=अनुरक्ताभिः, किन्नरीभिः=किन्नरकामिनीभिः, त्रिपुरविजयः=त्रिपुरदाहप्रबन्धः, गीयते=गानं क्रियते, कन्दरेषु=दरीषु, ते=तव, निर्ह्रादः=निर्घोषः, मुरजे=मृदङ्गे, ध्वनिः इव=शब्दः इव, स्यात्=भवेत्, चेत्=यदि, तत्र=शिवचरणचिह्नसमीपे, पशुपतेः=शिवस्य, सङ्गीतार्थः=सङ्गीतवस्तु, नूनं=अवश्यमेव, समग्रः=समस्तः, भावी=भविष्यति । उपमालङ्कारः । मन्दाक्रान्ता वृत्तम् ॥६०॥

आलोक

शब्दायन्ते—शब्द+क्यङ्+लट् लकार प्र० पु० ब० व० । यहाँ 'शब्दवैरकलहाऽभ्रकण्वमेघेभ्यः करणे' से क्यङ् प्रत्यय हुआ है। मधुरम्—यह क्रिया

विशेषण है। अनिलैः—अनिति अनेन इति अनिलः—अन धातु से 'सलिकल्पनि'–से इलच् प्रत्यय। 'अनिलो वसुवातयोः'—मेदिनीकोश। कीचकाः–वायु के भर जाने से जो बाँस शब्द करने लगते हैं, उन्हें 'कीचक' कहते हैं—'वेणवः कीचकास्ते स्युर्ये स्वनन्त्यनिलोद्धताः'—अमरकोष। 'कीचको दैत्यभेदे स्याच्छुष्कवंशे द्रुमान्तरे'—विश्वकोष। पूर्यमाणाः—पूर्+णिच्+शानच्। सरक्ताभिः–सम+रञ्ज्+क्त+टाप्। किन्हीं २ पुस्तकों में 'संसक्ताभिः' यह पाठ है। त्रिपुरविजयः—त्रिपुरस्य विजयः (षष्ठी तत्पुरुष)। त्रिपुरम्—त्रयाणां पुराणां समाहारः—यहाँ 'तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च' से समास तथा 'संख्यापूर्वो द्विगुः' से द्विगुत्व। मय नामक दानव के द्वारा निर्मित तीन पुरों को त्रिपुर कहते हैं। पौराणिक कथा है कि मय नामक दानव ने दैत्यों की रक्षा के लिये सोने, चाँदी और लोहे से तीन पुरों की रचना की थी। इस प्रकार के त्रिपुर में निवास कर दैत्य देवताओं को पीड़ित करने लगे। देवताओं ने आशुतोष भगवान् शिव की प्रार्थना की, जिससे प्रसन्न होकर शिव ने उन दैत्यों के ऊपर बाण बरसाये। भगवान् शिव की बाणवृष्टि से दैत्य निर्जीव होकर गिर पड़े। मय ने त्रिपुर में विद्यमान सिद्धामृतरसकूप में दैत्यों को डाल दिया जिससे वे पुनः जीवित होकर देवताओं को सताने लगे। इसके पश्चात् विष्णु और ब्रह्मा ने गाय और बछड़े का रूप धारण कर त्रिपुर में प्रवेश किया और वहाँ के अमृत को पी लिया। भगवान् विष्णु की माया से मोहित दैत्यों ने उन्हें रोका नहीं। इसके बाद सभी देवताओं ने भगवान् शङ्कर के लिये युद्ध की सामग्री प्रस्तुत की। भगवान् शङ्कर ने धनुष पर बाण को चढ़ाकर रथारूढ़ होकर मध्याह्नकाल में त्रिपुर का दाह किया। इसलिये भगवान् शिव को त्रिपुरारि भी कहा जाता है। गीयते—गै धातु लट्लकार कर्मवाच्य प्र० पु० ए० व०। किन्नरीभिः—कुत्सिताः नराः किन्नराः। किन्नराणां स्त्रियः किन्नर्यः, ताभिः। यहाँ 'पुंयोगादाख्यायाम्' इस सूत्र से ङीष् प्रत्यय हुआ है। किन्नर देवताओं का ही एक भेद है। इसके दो प्रकार हैं—१—एक प्रकार के किन्नर ऐसे होते हैं जिनके मुँह तो मनुष्य के समान होते हैं और शेष अङ्ग घोड़े के समान होते हैं। २—दूसरे प्रकार के किन्नर ऐसे होते हैं जिनके मुँह घोड़े के

समान होते हैं शेष अङ्ग मनुष्य के समान होते हैं। किन्नर जाति गाने में अत्यन्त प्रख्यात है। अमरकोश में इन्हें देवयोनि के अन्तर्गत रक्खा गया है—"विद्याधराऽप्सरो-यक्ष-रक्षो-गन्धर्व-किन्नराः। पिशाचो गुह्यकः सिद्धो भूतोऽमी देवयोनयः। निर्ह्रादः—निर्+ह्राद्+घञ्। सङ्गीतार्थः—सङ्गीतम् एव अर्थः (रूपक समास)। सङ्गीतम्—सम्यक् गीतं सङ्गीतम्। 'तौर्यत्रिकं तु सङ्गीतं न्यायारम्भे प्रसिद्धके। तूर्याणां त्रितये च'—शब्दार्णव। 'अर्थोऽभिधेयरैवस्तु प्रयोजननिवृत्तिषु'—अमरकोश। भावी—भू+णिनि। यहाँ 'भविष्यति गम्यादयः' इस नियम से भविष्यत् के अर्थ में णिनि का विधान हुआ है। गीत, वाद्य और नृत्य को सङ्गीत कहते हैं—'गीतं वाद्यं च नृत्यं च सङ्गीतं त्रयमुच्यते'। यहाँ कीचकों के द्वारा तथा मेघगर्जन रूपी शब्द के द्वारा वाद्य तथा किन्नर सुन्दरियों के द्वारा गायन इस प्रकार सङ्गीत के दो साधन तो प्रस्तुत हो गये परन्तु नृत्य शेष रह गया, अतः 'सङ्गीतार्थः ननु समग्रः भावी' (सङ्गीत की सामग्री अवश्य ही पूरी हो जायगी) इस कथन के साथ विरोध हो जाता है। भगवान् शङ्कर के नृत्य के अध्याहृत कर लेने से उक्त विरोध का परिहार हो जाता है अथवा किन्नरियों के गायन के द्वारा नृत्य भी उपलक्षित होने से विरोध परिहृत हो जायेगा। ननु—यहाँ निश्चय के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है—'प्रश्नाऽवधारणाऽनुज्ञाऽनुनयाऽऽमन्त्रणे ननु'—अमरकोश। इस श्लोक से तुलना करें—'स कीचकैर्मारुतपूर्णरन्ध्रैः कूजद्भिरापादितवंशकृत्यम्। शुश्राव कुञ्जेषु यशः स्वमुच्चैरुद्गीयमानं वनदेवताभिः॥' रघुवंश २-१२। यहाँ कीचक का मधुर शब्द किन्नरगायन और मेघनिर्ह्राद इन तीनों का शिवचरणचिह्न क्रम से स्थित होने के कारण पर्यायोक्ति अलङ्कार है। पर्यायोक्ति का लक्षण—'क्वचि—देकमनेकस्मिन्ननेकं चैकगं क्रमात्। भवति क्रियते वा चेत्तदा पर्याय इष्यते॥' मुरज इव में श्रौती उपमा है। दोनों का अङ्गाङ्गिभाव सङ्कर है। प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति तथा मन्दाक्रान्ता छन्द है॥६०॥

प्रसङ्ग—यक्ष कहता है कि हे मेघ! हिमालय पर्वत के तट के समीपवर्ती अनेक दर्शनीय पदार्थों को लाँघकर हंसों के मानसरोवर जाने का मार्ग तथा परशुराम के यश का मार्ग क्रौञ्च नामक पर्वत का छेद मिलेगा। जब तुम

उस छिद्र से निकलोगे तो उसी प्रकार से तिरछे और लम्बे होकर शोभा दोगे जिस प्रकार बलि को बाँधने के लिये उद्यत भगवान् विष्णु का कृष्णचरण सुशोभित हुआ था--

प्रालेयाद्रेरुपतटमतिक्रम्य तांस्तान्विशेषान्
हंसद्वारं भृगुपतियशोवर्त्म यत्क्रौञ्चरन्ध्रम् ।
तेनोदीचीं दिशमनुसरेस्तिर्यगायामशोभी
श्यामः पादो बलिनियमनाभ्युद्यतस्येव विष्णोः ।.६१।।

पदच्छेद--प्रालेयाद्रेः उपतटम् अतिक्रम्य तान् तान् विशेषान् हंसद्वारं भृगुपतियशोवर्त्म यत् क्रौञ्चरन्ध्रम् । तेन उदीचीं दिशम् अनुसरेः तिर्यगाया-मशोभी श्यामः पाद. बलिनियमनाभ्युद्यतस्य विष्णोः ।।६१।।

अन्वय—प्रालेयाद्रेः उपतटं तान् तान् विशेपान् अतिक्रम्य यत् हंसद्वारं भृगुपतियशोवर्त्म क्रौञ्चरन्ध्रं तेन बलिनियमनाभ्युद्यतस्य विष्णोः श्यामः पादः इव तिर्यगायामशोभी उदीचीं दिशम् अनुसरेः ।।६१।।

शब्दार्थ—प्रालेयाद्रेः = हिमालय पर्वत के, उपतटम् = तट के समीप, तान् तान् = उन उन, विशेषान् = विशेपों (द्रष्टव्य पदार्थों) को, अतिक्रम्य = लाँघकर, यत = जो, हंसद्वारम् = हंसों के मार्ग, भृगुपतियशोवर्त्म = परशुराम के यश का मार्ग, क्रौञ्चरन्ध्रम् = क्रौञ्च पर्वत का छिद्र है, तेन = उससे, बलिनियमनाभ्युद्यतस्य = वलि नामक दैत्य के बन्धन के लिये समुद्यत, विष्णोः = विष्णु के, श्यामः = श्यामले, पादः इव = चरण के समान, तिर्यगायामशोभी = तिरछे विस्ताररूप में सुशोभित होते हुये, उदीचीम् = उत्तर, दिशम् अनुसरेः = दिशा की ओर जाना ।।६१।।

हिन्दी अनुवाद--हिमालय पर्वत के तट के समीप उन उन विशेषों (द्रष्ट-व्य पदार्थों) को लाँघकर जो हंसों का मार्ग तथा परशुराम के यश का मार्ग क्रौञ्च पर्वत का छिद्र है उससे (उसमें से होकर) वलि नामक दैत्य के बन्धन के लिये समुद्यत विष्णु के श्यामले चरण के समान तिरछे विस्ताररूप में सुशोभित होते हुये उत्तर दिशा की ओर जाना ।।६१।।

संस्कृत व्याख्या—प्रालेयाद्रेः=हिमालयस्य, उपतटं=तीरसमीपे, तान् तान्=प्रसिद्धान्, विशेषान्=दर्शनीयपदार्थान्, अतिक्रम्य=उल्लङ्घ्य, हंसद्वारं=हंसमार्गम्, भृगुपतियशोवर्त्म=परशुरामसमज्ञामार्गम्, यत्=प्रसिद्धम्, क्रौञ्चरन्ध्रं=क्रौञ्चपर्वतच्छिद्रम्, तेन्=क्रौञ्चरन्ध्रेण, बलिनियमनाभ्युद्यतस्य=वलिबन्धनसन्नद्धस्य, विष्णोः=नारायणस्य, श्यामः=कृष्णवर्णः, पादः इव=चरणः इव, तिर्यगायामशोभी=तिरश्चीनदैर्घ्यशोभी सन्, उदीचीं उत्तराम्, दिशं=काष्ठाम्, अनुसरेः=अनुगच्छ । रूपकमलङ्कारः । मन्दाक्रान्ता वृत्तम् ॥६१॥

आलोक

प्रालेयाद्रेः—प्रालेयस्य अद्रिः प्रालेयाद्रिः (षष्ठी तत्पुरुष), तस्य । प्रालेयम्—प्रलीयन्ते पदार्थाः अत्र—प्र+ली+अच् । प्रलयाद् आगतम्—'प्रलय+अण्' यहाँ 'तत आगतः' से अण् प्रत्यय तथा 'केकयमित्रयुप्रलयानां यादेरियः' से इयादेश । 'अद्रिगोत्रगिरिग्रावाचलशैलशिलोच्चयाः'—अमरकोष । उपतटम्—तटस्य समीपम् (अव्ययीभाव समास) । अतिक्रम्य—अति+क्रम्+क्त्वा→ल्यप् । तान् तान्—यहाँ वीप्सा में द्वित्व हुआ है । विशेषान्—यहाँ द्रष्टव्य उत्तम वस्तु के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है—'विशेषोऽवयवे द्रव्ये द्रष्टव्योत्तमवस्तुनि'—शब्दार्णव । हंसद्वारम्—हंसानां द्वारं हंसद्वारम् (षष्ठी तत्पुरुष) । ऐसी कवि प्रसिद्धि है कि वर्षा के समय में मानसरोवर को प्रस्थान करने वाले हंस क्रौञ्च पर्वत के छिद्र से संचरण करते हैं । इसीलिये यहाँ क्रौञ्चरन्ध्र को हंसद्वार के रूप में प्रस्तुत किया गया है । भृगुपतियशोवर्त्म—भृगूणां पतिः भृगुपतिः (षष्ठी तत्पुरुष), तस्य यशः भृगुपतियशः, तस्य वर्त्म (षष्ठी तत्पुरुष) । परशुराम भगवान् शिव से धनुर्विद्या की शिक्षा ग्रहण करते थे । स्वामिकार्तिकेय के प्रति स्पर्धा के कारण परशुराम ने क्रौञ्चपर्वत को छेद दिया था अतएव भगवान् परशुराम की कीर्तिकौमुदी चारों ओर छा गई थी । क्रौञ्चरन्ध्रम्—क्रौञ्चस्य रन्ध्रं क्रौञ्चरन्ध्रम् (षष्ठी तत्पुरुष) । क्रौञ्चपर्वत का वर्णन पुराणों में आया है । इसकी भौगोलिक स्थिति के विषय में कुछ भी कह सकना कठिन है । महाभारत में क्रौञ्च पर्वत को मैनाक या

हिमवान् का पुत्र बतलाया गया है। अनुसरेः--अनु + सृ + विधिलिङ् लकार म० पु० ए० व०। दिशम्--'दिशस्तु ककुभः काष्ठा आशाश्च हरितश्च ताः'--अमरकोश। तिर्यगायामशोभी--तिर्यक् चासौ आयामः (कर्मध रय) तिर्यगायामः, तेन शोभते तच्छीलः। तिर्यगायाम + शुभ् + णिनि। आयामः--आङ् + यम् + घञ्। बलिनियमनाभ्युद्यतस्य--बलेः नियमनं बलिनियमनम् (षष्ठी तत्पुरुष), बलिनियमने अभ्युद्यतः बलिनियमनाभ्युद्यतः, तस्य (सप्तमी तत्पुरुष)। नियमनम्--नि + यम् + ल्युट्। अभ्युद्यत--अभि + उत् + यम् + क्त। पौराणिक कथा है कि दैत्यराज बलि ने अपने आतङ्क से देवताओं को अत्यधिक पीड़ित किया और देवराज इन्द्र को स्वर्ग से निर्वासित कर दिया। इस पर देवताओं ने भगवान् विष्णु की प्रार्थना की जिससे प्रसन्न होकर भगवान् विष्णु ने वामन ब्राह्मण के रूप में अवतार लिया और राजा बलि के पास जाकर उनसे तीन पग भूमि माँगी जिसे बलि ने स्वीकार कर लिया। भगवान् वामन ने अपने एक चरण से भूलोक को और दूसरे चरण से द्युलोक को नाप लिया। एक चरण की समस्या रह गई। भगवान् वामन ने अपना तीसरा चरण बलि दैत्य के मस्तक पर रख कर उसे पाताल लोक पहुँचा दिया। विष्णोः--वेवेष्टि इति--विष् + नु = विष्णुः, तस्य। 'विष्णुर्नारायणः कृष्णो वैकुण्ठो विष्टरश्रवाः'--अमरकोष। उदीचीम्--उत् + अञ्च् + क्विन् + ङीप्। 'उत्तरा दिगुदीची स्यात्'--अमरकोष। विष्णोः श्यामः पादः इव--भगवान् विष्णु के श्यामले चरण के समान। मेघ भी भगवान् विष्णु के चरण के समान श्यामला है। मेघ जब क्रौञ्चरन्ध्र से निकलेगा तो उसे अपने शरीर को पतला करना पड़ेगा। ऐसी स्थिति में लम्बा हो जायेगा। उस समय मेघ इस प्रकार से सुशोभित होगा जिस प्रकार बलि को बाँधने के लिये समुद्यत भगवान् विष्णु के द्वारा आगे को बढ़ाया गया चरण हो। इस श्लोक के 'यशोवर्त्म' पद में रूपक तथा 'विष्णोः पादः इव' में श्रौती उपमा है। दोनों की निरपेक्ष स्थिति होने से संसृष्टि है। कवि का वर्णन सौन्दर्य सर्वथा स्पृहणीय है। प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति तथा मन्दाक्रान्त छन्द है ।।६१।।

प्रसङ्ग--यक्ष कहता है कि हे मेघ क्रौञ्चरन्ध्र से निकलने के पश्चात्

तुम ऊपर की ओर जाकर रावण की भुजाओं के द्वारा जिसके जोड़ शिथिल कर दिये गये हैं, जो देवाङ्गनाओं का दर्पण है तथा प्रतिदिन एकत्रित हुये भगवान् शिव के अट्टहास के समान है, ऐसे उस कैलास पर्वत के अतिथि बनना—

गत्वा चोर्ध्वं दशमुखभुजोच्छ्वासितप्रस्थसन्धेः
कैलासस्य त्रिदशवनितादर्पणस्यातिथिः स्याः ।
शृङ्गोच्छ्रायैः कुमुदविशदैर्यो वितत्य स्थितः खं
राशीभूतः प्रतिदिनमिव त्र्यम्बकस्याट्टहासः ॥६२॥

पदच्छेद—गत्वा च ऊर्ध्वं दशमुखभुजोच्छ्वासितप्रस्थसन्धेः कैलासस्य त्रिदशवनितादर्पणस्य अतिथिः स्याः । शृङ्गोच्छ्रायैः कुमुदविशदैः यः वितत्य ख राशीभूतः प्रतिदिनम् इव त्र्यम्बकस्य अट्टहासः ॥६२॥

अन्वय—ऊर्ध्वं च गत्वा दशमुखभुजोच्छ्वासितप्रस्थसन्धेः त्रिदशवनितादर्पणस्य कैलासस्य अतिथिः स्याः । यः कुमुदविशदैः शृङ्गोच्छ्रायैः खं वितत्य प्रतिदिनं राशीभूतः त्र्यम्बकस्य अट्टहासः इव स्थितः ॥६२॥

शब्दार्थ—ऊर्ध्वं च=और ऊपर, गत्वा=जा करके, दशमुखभुजोच्छ्वासितप्रस्थसन्धेः=दशमुख वाले रावण की भुजाओं के द्वारा जिसके शिखरों के जोड़ शिथिल किये गये हैं, त्रिदशवनितादर्पणस्य=देवों की वनिताओं के दर्पण, कैलासस्य=कैलास पर्वत के, अतिथिः=अतिथि, स्याः=होना, यः=जो कैलास, कुमुदविशदैः=कुमुदों के समान विशद, शृङ्गोच्छ्रायैः=ऊँचे शिखरों के द्वारा, खं=गगन को, वितत्य=व्याप्त करके, प्रतिदिनम्=प्रतिदिन के, राशीभूतः=एकत्रित हुये, त्र्यम्बकस्य=भगवान् शिव के, अट्टहासः इव=अट्टहास के समान, स्थितः=स्थित है ॥६२॥

हिन्दी अनुवाद—और (उस क्रौञ्चरन्ध्र से बाहर निकलकर) ऊपर की ओर जाकर दशमुख वाले (रावण) की भुजाओं के द्वारा ढीले किये गये शिखरों के जोड़ वाले और देवताओं की वनिताओं के दर्पण कैलास (पर्वत) के अतिथि होना जो कुमुदों के समान श्वेत उन्नत शिखरों के द्वारा गगन को

अभिव्याप्त करके प्रतिदिन के एकत्रित हुये महादेव के अट्टहास के समान स्थित है ॥६२॥

संस्कृत व्याख्या--ऊर्ध्वं च=उपरि च, गत्वा=व्रजित्वा, दशमुखभुजोच्छ्वासितप्रस्थसन्धेः=रावणभुजविघटितसानुसन्धेः, त्रिदशवनितादर्पणस्य=देवाङ्गनामुकुरस्य, कैलासस्य=एतदाख्यस्य पर्वतस्य, अतिथिः=अभ्यागतः, स्याः=भवेः, यः=कैलासः, कुमुदविशदैः=कैरवनिर्मलैः, शृङ्गोच्छ्रायैः=शिखरौन्नत्यैः, खं=गगनम, वितत्य=व्याप्य, प्रतिदिन=दिनं दिनं प्रति, राशीभूतः=पुञ्जीभूतः, त्र्यम्बकस्य=शिवस्य, अटटहासः इव=अतिहासः इव, स्थितः=अवस्थितः अस्ती.त शेषः । उपमालङ्कारः । मन्दाक्रान्ता वृत्तम् ॥६२॥

आलोक

गत्वा--गम्+क्त्वा । दशमुखभुजोच्छ्वासितप्रस्थसन्धेः—दशमुखस्य भुजाः दशमुखभुजाः (षष्ठी तत्पुरुष), तैः उच्छ्वासिताः (तृतीया तत्पुरुष), दशमुखभुजोच्छ्वासिताः प्रस्थसन्धयः यस्य सः, तस्य (बहुव्रीहि)। दशमुखः—दश मुखानि यस्य सः (बहुव्रीहि) । 'आननं लपनं मुखम्'—अमरकोश । उच्छ्वासितः---उत्+श्वस्+णिच्+क्त । प्रस्थसन्धिः---प्रस्थानां सन्धिः (षष्ठी तत्पुरुष) । 'स्नुः प्रस्थः सानुरस्त्रियाम्'—अमरकोष । सन्धिः--सम्+धा+कि । वाल्मीकि रामायण के उत्तरकाण्ड में यह कथा आती है कि रावण अपने दर्प से उन्मत्त होकर भगवान् शङ्कर को लङ्कापुरी ले जाने के लिए कैलाश पर्वत को ही अपनी भुजाओं के द्वारा उठा लिया । इससे पर्वत पर हलचल मच गयी । भयभीत पार्वती ने महादेव का प्रगाढ़ आलिङ्गन कर लिया । भगवान् शिव ने रावण के गर्व को नष्ट करने के लिए कैलाश पर्वत को अपने पैर से दबा दिया । उमापति महादेव के चरणभार ने रावण को भी पर्वत से दबा दिया । ऐसी स्थिति में रावण ने सामवेद की सहस्रशाखाओं के द्वारा भगवान् शिव की स्तुति की, जिससे प्रसन्न होकर शिव ने उसे अभय कर दिया । महाकवि माघ ने भी लिखा है—"समुत्क्षिपन्यः पृथिवीभृतां वरं वरप्रदानस्य चकार शूलिनः । त्रसत्तुषाराऽद्रिसुतासमसम्भ्रमस्वयंग्रहाऽश्लेषसुखेन निष्क्रियम् ॥" कैलासस्य–लसनं

लासः—लस्+घञ् । के=जले लासः अस्य सः केलासः (बहुव्रीहि) यहाँ 'हलदन्तात् सप्तम्याः संज्ञायाम्' से सप्तमी का अलुक् । केलासस्य (स्फटिकस्य) अयम्—केलास+अण्=कैलासः । अथवा केलीनां समूहः कैलम्—केलि+अण्=कैलम् । कैलेन आस्यते अस्मिन्—कैल+आस्+घञ्=कैलासः । कैलास पर्वत पर भगवान् शङ्कर का रमणीक निवास स्थान है । त्रिदशवनितादर्पणस्य—त्रिदशानां वनिताः त्रिदशवनिताः (षष्ठी तत्पुरुष), त्रिदशवनितानां दर्पणः, तस्य (षष्ठी तत्पुरुष) । त्रिदशः—तिस्रः दशाः येषां ते (बहुव्रीहि) । यहाँ समासान्त डच् प्रत्यय हुआ है । बाल्य, कौमार्य और यौवन नाम की देवताओं की तीन दशायें होती हैं अथवा देवताओं की तृतीय यौवन नाम की ही अवस्था रहती है इसलिये उन्हें त्रिदश कहते हैं—'अमरा निर्जरा देवास्त्रिदशा विबुधाः सुराः'—अमरकोश । अतिथिः—अविद्यमाना तिथिः यस्य सः (बहुव्रीहि) । अतिथि शब्द की मीमांसा करते हुये महर्षि मनु लिखते हैं—'अनित्य हि स्थितो यस्मात्तस्मादतिथिरुच्यते' । स्याः—अस् धातु विधिलिङ्लकार म० पु० ए० व० । शृङ्गोच्छ्रायैः—शृङ्गाणाम् उच्छ्रायाः शृङ्गोच्छ्रायाः, तैः (षष्ठी तत्पुरुष) । श्रायः—श्रि+घञ् । उन्नतः श्रायः उच्छ्रायः यहाँ 'कुगति—प्रादयः' से समास हुआ है । कुमुदविशदैः-कुमुदानि इव विशदाः कुमुदविशदाः, तैः । वितत्य—वि+तन्+क्त्वा - ल्यप् । प्रतिदिनम्—दिनं दिनं प्रति (अव्ययीभाव) । स्थितः—स्था+क्त । खम्—'गगनमनन्तं सुरवर्त्म खम्'—अमरकोश । राशीभूतः—अराशिः राशिः यथा सम्पद्यते तथाभूतः—राशि+च्वि+भू+क्त । त्र्यम्बकस्य—त्र्यम्बक शब्द की मीमांसा करते हुये भानुजिदीक्षित इस प्रकार लिखते हैं—"त्रीण्यम्बकान्यस्य । त्रिष्वम्बकमस्येति वा । 'अम्बकं नयनं दृष्टिः'—इति हलायुधः । त्रयाणां लोकानामम्बकः पिता इति । त्रीन्वेदानम्बते शब्दायते वा । अबि शब्दे (भ्वा० आ० से०) । कर्मण्यण् । संज्ञायाम्—इति कः । त्रिषु लोकेषु कालेषु वा अम्बः शब्दो वेदलक्षणो यस्येति वा । त्रयः अकारोकारमकारा अम्बाः शब्दा वाचकाः यस्येति वा । तिस्रोऽम्बाः द्योर्भूम्यापो यस्येति तु भारतम्' ॥ "हरः स्मरहरो भर्गस्त्र्यम्बकस्त्रिपुरान्तकः'—अमरकोश । अट्टहासः—अट्टश्चासौ हासः (कर्मधारय) । 'अट्टहासो महाहासः'

--यादवकोश । हास्य को कविप्रौढोक्ति के अनुसार धवल माना गया है । कैलास पर्वत अत्यन्त श्वेतवर्ण का है । अतः कवि कल्पना करता है कि मानो ताण्डवलास आसक्त भगवान् नीलकण्ठ का प्रतिदिन का सञ्चित अट्टहास ही है । यहाँ 'कुमुदविशदैः, में उपमा तथा 'अट्टहासः इव' में उत्प्रेक्षा है । दोनों का अङ्गाङ्गिभाव सङ्कर है । प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति तथा मन्दाक्रान्ता छन्द है ॥६२॥

प्रसङ्ग--यक्ष कहता है कि हे मेघ ! चिकने और पीसे गये कज्जल के सदृश तुम जब कैलास पर्वत के शिखर पर पहुँचोगे तो हाथी के तत्काल काटे गये दाँत के टुकड़े के समान श्वेत उस पर्वत की, नीले वस्त्र को कन्धे पर डाले हुये बलराम के समान दर्शनीय शोभा हो जायेगी--

उत्पश्यामि त्वयि तटगते स्निग्धभिन्नाञ्जनाभे
सद्यःकृत्तद्विरददशनच्छेदगौरस्य तस्य ।
शोभामद्रेः स्तिमितनयनप्रेक्षणीयां भवित्री--
मंसन्यस्ते सति हलभृतो मेचके वाससीव ॥६३॥

पदच्छेद--उत्पश्यामि त्वयि तटगते स्निग्धभिन्नाञ्जनाभे कृत्तद्विरददशन-च्छेदगौरस्य तस्य । शोभाम् अद्रेः स्तिमितनयनप्रेक्षणीयां भवित्रीम् अंसन्यस्ते सति हलभृतः मेचके वाससि इव ।६३॥

अन्वय--स्निग्धभिन्नाञ्जनाभे त्वयि तटगते सद्यः कृतद्विरददशनच्छेदगौ-रस्य तस्य अद्रेः मेचके वाससि असन्यस्ते सति हलभृतः इव स्तिमितनयनप्रेक्ष-णीयां भवित्रीं शोभाम् उत्पश्यामि ॥६३॥

शब्दार्थ--स्निग्धभिन्नाञ्जनाभे=चिकने और पिसे हुए काजल के समान कान्ति वाले, त्वयि= तुम्हारे, तटगते=तट पर पहुँचने पर, सद्यःकृत्तद्विरददश-नच्छेदगौरस्य=तत्काल काटे गये गजदन्त के टुकड़े के समान सफेद, तस्य= उस, अद्रेः=पर्वत के, मेचके=नीले, वाससि=वस्त्र को, अंसन्यस्ते सति= कन्धे पर डाल लेने पर, हलभृतः इव=हलधर के समान, स्तिमितनयनप्रेक्षणी-याम्=निश्चल नेत्रों से देखी जाने योग्य, भविश्रीम्= होने वाली, शोभाम्=

शोभा की, उत्पश्यामि = सम्भावना कर रहा हूँ ।।६३।।

हिन्दी अनुवाद--चिकने और पिसे हुये काजल के समान कान्ति वाले तुम्हारे (कैलास पर्वत के) तटप्रदेश पर पहुँचने पर तत्काल काटे गये गज-दन्त के टुकड़े के समान धवल उस पर्वत की नीले वस्त्र को कन्धे पर डाले जाने पर बलराम के समान निश्चल नेत्रों के द्वारा देखी जाने योग्य होने वाली शोभा की सम्भावना कर रहा हूँ ।।६३।।

संस्कृत व्याख्या--स्निग्धभिन्नाञ्जनाभे = चिक्कणमर्दितकज्जलकान्तौ, त्वयि = भवति, तटगते = सानुगते सति, सद्यःकृत्तद्विरददशनच्छेदगौरस्य = तत्क्षणच्छिन्नकरिदन्तखण्डशुभ्रस्य, तस्य = पूर्वोक्तस्य, अद्रेः = गिरेः, मेचके = श्यामले नीले वा, वाससि = वस्त्रे, असन्यस्ते = स्कन्धसंस्थापिते, सति, हलभृतः इव = मुसलिनः इव, स्तिमितनयनप्रेक्षणीयां = निश्चलनेत्रदर्शनीयाम्, भवित्रीं = भाविनीम्, शोभां = कान्तिम्, उत्पश्यामि = तर्कयामि । श्रौतीपूर्णोपमालङ्कारः । मन्दाक्रान्ता वृत्तम् ।।६३।।

आलोक

उत्पश्यामि--उत् + दृश् + लट् उ० पु० ए० व० । तटगते—तटं गतः
तटगतः, तस्मिन् । स्निग्धभिन्नाञ्जनाभे--स्निग्धं च तद् भिन्नं स्निग्धभिन्नम्
(कर्मधारय), स्निग्धभिन्नं च तद् अञ्जन स्निग्धभिन्नाञ्जनम् (कर्मधारय),
स्निग्धभिन्नाञ्जनस्य इव आभा यस्य सः, तस्मिन् (बहुव्रीहि)। स्निग्धम्—स्निह्
+ क्त । भिन्नम्--भिद् + क्त । सद्यःकृत्तद्विरददशनच्छेदगौरस्य---सद्यः कृत्तः
सद्यःकृत्तः (सुप् सुपा समास), सद्यःकृत्तश्चासौ द्विरददशनः सद्यःकृत्तद्विरद-
दशनः (कर्मधारय), तस्य छेदः (षष्ठी तत्पुरुष) । सद्यः कृत्तद्विरददशनच्छेदः
इव गौरः, तस्य । कृत्तः—कृत् + क्त । द्विरदः--द्वौ रदौ यस्य सः । 'द्विरदोऽने-
कपो द्विपः'—अमरकोश । छेदः--छिद् + घञ् । अद्रेः---'अद्रिगोत्रगिरिग्रावा-
चलशैलशिलोच्चयाः'--अमरकोश । स्तिमितनयनप्रेक्षणीयाम्--स्तिमिते च
ते नयने स्तिमितनयने (कर्मधारय), स्तिमितनयनाभ्यां प्रेक्षणीया स्तिमित-
नयनप्रेक्षणीया, ताम् (तृतीया तत्पुरुष) । प्रेक्षणीया--प्र + ईक्ष् + अनीयर् +
टाप् । भवित्रीम्—भविष्यति इति--भू + तृच् + ङीप् । असन्यस्ते—अंसे-

न्यस्तः अंसन्यस्तः, तस्मिन् (सप्तमी तत्पुरुष) न्यस्तः-नि+अस्+क्त। हलभृतः–हलं बिभर्ति इति हलभृत्, तस्य। हल+भृ+क्विप्। मेचके–'कृष्णे नीलासितश्यामकालश्यामलमेचकाः'–अमरकोश। इस श्लोक में कैलाश पर्वत को बलराम के सदृश तथा उसके शिखर पर स्थित मेघ को उनके वस्त्र के सदृश बतलाया गया है अतएव उपमा अलङ्कार है। प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति तथा मन्दाक्रान्ता छन्द है ॥६३॥

प्रसङ्ग—यक्ष कहता है कि हे मेघ ! उस कैलास पर्वत पर सर्परूपी कङ्गन का परित्याग कर भगवान् शिव के द्वारा हाथ का सहारा देने पर जब पार्वती पैदल ही चल तो तुम अपने जलप्रवाह को रोककर शरीर को ही जीने के रूप में बदलकर मणियों के शिखरों पर चढ़ने के लिये शिव और पार्वती के लिये सीढ़ी बन जाना—

हित्वा तस्मिन् भुजगवलयं शम्भुना दत्तहस्ता
क्रीडाशैले यदि च विचरेत् पादचारेण गौरी।
भङ्गीभवत्या विरचितवपुः स्तम्भितान्तर्जलौघः
सोपानत्वं कुरु मणितटारोहणायाग्रयायी ॥६४॥

पदच्छेद—हित्वा तस्मिन् भुजगवलयं शम्भुना दत्तहस्ता क्रीडाशैले यदि च विचरेत् पादचारेण गौरी। भङ्गीभक्त्या विरचितवपुः स्तम्भितान्तर्जलौघः सोपानत्वं कुरु मणितटारोहणाय अग्रयायी ॥६४॥

अन्वय—तस्मिन् क्रीडाशैले च भुजगवलयं हित्वा शम्भुना दत्तहस्ता गौरी यदि पादचारेण विचरेत् अग्रयायी स्तम्भितान्तर्जलौघः भङ्गीभवत्या विरचित-वपुः मणितटारोहणाय सोपानत्वं कुरु ॥६४॥

शब्दार्थ—तस्मिन्=उस, क्रीडाशैले च=क्रीडा पर्वत पर, भुजगवल-यम्=सर्परूपी कङ्कण को, हित्वा=त्यागकर, शम्भुना=भगवान् शिव के द्वारा, दत्तहस्ता=हाथ का सहारा दी गई, गौरी=पार्वती, पादचारेण=पैदल चलकर, विचरेत्=विचरण करें, अग्रयायी=आगे बढ़कर, स्तम्भिता-न्तर्जलौघः=अपने भीतर जलप्रवाह को रोककर, भङ्गीभक्त्या=जीने के

रूप में, विरचितवपुः=अपने शरीर को बनाने वाले तुम, मणितटारोहणाय=मणितट पर चढ़ने के लिये, सोपानत्वं कुरु=सीढ़ी का काम करना ॥६४॥

हिन्दी अनुवाद—और उस क्रीड़ा पर्वत (कैलास) पर सर्परूप कङ्कण को छोड़कर भगवान् शिव के द्वारा हाथ का सहारा दी गईं पार्वती यदि पैदल विचरण करें तो आगे बढ़कर अपने भीतर जल प्रवाह को रोककर अपने शरीर को लहरदार जीने के रूप में परिणत कर मणिमय तट पर चढ़ने के लिए (भगवान् शिव और जगज्जननी पार्वती के लिए) सीढ़ी का काम करना ॥६४॥

संस्कृत व्याख्या—तस्मिन्=पूर्वोक्ते, क्रीडाशैले=केलिगिरौ च, शम्भुना=शङ्करेण, भुजगवलयं=सर्पकङ्कणम्, हित्वा=परित्यज्य, दत्तहस्ता=प्रदत्तकरा, गौरी=पार्वती, यदि=चेत्, पादचारेण=चरणसञ्चलनेन, विचरेत्=विहरेत, अग्रयायी=पुरोगामी, स्तम्भितान्तर्जलौघः=प्रतिरुद्धान्तरसलिलप्रवाहः, भङ्गीभक्त्या=पर्वरचनया, विरचितवपुः,=कल्पितशरीरः, मणितटारोहणाय=मणिमयशेखरारोहणाय, सोपानत्वं=सोपानभावम्, कुरु=विधेहि। रूपकमलङ्कारः। मन्दाक्रान्ता वृत्तम् ॥६४॥

आलोक

हित्वा—हा+क्त्वा, । क्रीडाशैले-क्रीडायाः शैलः क्रीडाशैलः, तस्मिन् (षष्ठी तत्पुरुष)। शम्भुरहस्य में देवाधिदेव महादेव के क्रीडापर्वतों के विषय में इस प्रकार का उल्लेख है—"कैलासः कनकाऽद्रिश्च मन्दरो गन्धमादनः। क्रीडाऽर्थं निर्मिताः शम्भोर्देवैः क्रीडाद्रयोऽभवन् ॥" भुजगवलयम्—भुजगः एव वलयः भुजगवलयः, तम् (रूपक समास)। भुजगः—भुजः सन् गच्छति, 'अन्यत्रापि' इत्यादि सूत्र से ड प्रत्यय। भुज+गम्+ड। 'सर्पः पृदाकुर्भुजगो भुजङ्गोऽहिर्भुजङ्गमः'—अमरकोश। शम्भुना—शं सुखं भवति—यहाँ 'अन्तर्भावितण्यर्थं भू' धातु से डु प्रत्यय होता है। 'शम्भुरीशः पशुपतिः शिवः शूली महेश्वरः'—अमरकोश। दत्तहस्ता—दत्तः हस्तः यस्यै सा (बहुव्रीहि)। विचरेत्—वि+चर्+विधिलिङ् लकार प्र०पु० ए०व०। किन्हीं-किन्हीं पुस्तकों मे विहरेत्

ऐसा पाठ मिलता है। पादचारेण—पदाभ्यां चारः पादचारः, तेन (तृतीया तत्पुरुष)। चारः - चरणमिति—चर्+घञ्। गौरी—गौरो वर्णो अस्ति यस्याः सा। "गौरी त्वसञ्जातरजःकन्याशङ्करभार्ययोः। रोचनीरजनीपिङ्गाप्रियंगुवसुधासु च। आपगाया विशेषेऽपि यादसांपतियोषिति। भङ्गीभक्त्या—भङ्गीनां भक्तिः भङ्गीभक्तिः (षष्ठी तत्पुरुष), तया। भक्तिः—भज्+क्तिन्। विरचितवपुः - विरचितं वपुः येन सः (बहुव्रीहि)। विरचितः—वि+रच्+णिच्+क्त। 'गात्रं संहननं वपुः'—अमरकोश। स्तम्भितान्तर्जलौघः—जलानाम् ओघः जलौघः (षष्ठी तत्पुरुष), अन्तःस्थितः जलौघः अन्तर्जलौघः। स्तम्भितः अन्तर्जलौघः येन सः (बहुव्रीहि)। सोपानत्वम्—सोपानस्य भावः—सोपान+त्वल्। कुरु—कृ धातु लोट् लकार म०पु० ए०व०। मणितटारोहणाय—मणीनां तटं मणितटम् (षष्ठी तत्पुरुष), मणितटे आरोहणं मणितटारोहणम् (सप्तमी तत्पुरुष), तस्मै। अग्रयायी-अग्रे यातीति तच्छीलः। अग्र+या+णिनि। भगवान् शिव हाथ में कङ्कण के रूप में सर्प को धारण किये हुये हैं। पार्वती जी सर्प से डरती हैं। शङ्कर पार्वती के भय को दूर करने के लिये अपने हाथ से सर्प को निकाल देते हैं और तब पार्वती को अपना हाथ पकड़ाते हैं। कवि के इस प्रसङ्ग से पार्वतीगत स्त्रीजनोचित कोमलता, भावुकता एवं तरलता अभिव्यञ्जित होती है साथ ही साथ शृङ्गार की अभिव्यञ्जना हो रही है। पूजनीय शिव और पार्वती के लिये मेघ के द्वारा सीढ़ी का कार्य करने से शिव के प्रति भक्ति ध्वनित हो रही है और उनकी भक्ति के द्वारा वह परम पद प्राप्त कर सकता है। कवि का भी भक्तिभाव ध्वनित हो रहा है जो कि कवि, पाठक एवं श्रोता सभी का कल्याणकारक है। इस पद्य में सर्प में कङ्कण का आरोप होने से रूपक अलङ्कार है। मेघ का शङ्कर-पार्वती के लिये सीढ़ी बन जाना तद्गुण को ध्वनित कर रहा है। प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति तथा मन्दाक्रान्ता छन्द है ॥६४॥

प्रसङ्ग—यक्ष कहता है कि हे मेघ! कैलास पर्वत की देवाङ्गनायें अपने कङ्गनों के अग्रभाग के छेदन से तुम्हें फव्वारा जैसा बना देंगी। यदि गर्मी में उन सुरसुन्दरियों से तुम्हें छुटकारा न मिल सके तो क्रीडा में चञ्चल उन्हें

अपने कठोर गर्जनों से डरा देना—

तत्रावश्यं वलयकुलिशोद्घट्टनोद्गीर्णतोयं
नेष्यन्ति त्वां सुरयुवतयो यन्त्रधारागृहत्वम् ।
ताभ्यो मोक्षस्तव यदि सखे घर्मलब्धस्य न स्यात्
क्रीडालोलाः श्रवणपरुषैर्गर्जितैर्भाययेस्ताः ॥६५॥

पदच्छेद—तत्र अवश्यं वलयकुलिशोद्घट्टनोद्गीर्णतोयं नेष्यन्ति त्वां सुरयुवतयः यन्त्रधारागृहत्वम् । ताभ्यः मोक्षः तव यदि सखे घर्मलब्धस्य न स्यात् क्रीडालोलाः श्रवणपरुषैः गर्जितैः भाययेः ताः ॥६५॥

अन्वय—तत्र सुरयुवतयः वलयकुलिशोद्घट्टनोद्गीर्णतोयं त्वाम् अवश्यं यन्त्रधारागृहत्वं नेष्यन्ति । सखे ! घर्मलब्धस्य तव यदि ताभ्यः मोक्षः न स्यात् क्रीडालोलाः ताः श्रवणपरुषैः गर्जितैः भाययेः ॥६५॥

शब्दार्थ—तत्र=वहाँ, सुरयुवतयः=देवाङ्गनायें, वलयकुलिशोद्घट्टनोद्गीर्णतोयम्=कङ्कनों के अग्रभागों के रगड़ने से जल निकलने वाले, त्वाम्=तुमको, अवश्यम्=अवश्य, यन्त्रधारागृहत्वम्=फव्वारे का घर, नेष्यन्ति=बना देंगी, सखे=हे मित्र, घर्मलब्धस्य=गर्मी में प्राप्त, तव=तुम्हारा, यदि ताभ्यः=यदि उनसे, मोक्षः न स्यात्=छुटकारा न हो, क्रीडालोलाः=क्रीडा में चञ्चल, ताः=उनको, श्रवणपुरुषैः=श्रुतिकठोर, गर्जितैः=गर्जनों के द्वारा, भाययेः=डरा देना ॥६५॥

हिन्दी अनुवाद—वहाँ (कैलास पर्वत पर) सुरसुन्दरियों के कङ्कनों के अग्रभागों के सङ्घर्षण (टक्कर) से जल निकालने वाले तुमको अवश्य फव्वारे का घर बना देंगी । हे मित्र ! गर्मी में प्राप्त तुम्हारा यदि उनसे छुटकारा न हो (तो) क्रीडा में चञ्चल उन (सुरसुन्दरियों) को कानों के लिये कठोर अपने गर्जनों से डरा देना ॥६५॥

संस्कृत व्याख्या—तत्र=तस्मिन् कैलासे पर्वते, सुरयुवतयः=देवाङ्गनाः, वलयकुलिशोद्घट्टनोद्गीर्णतोय=कङ्कणोद्घर्षणोत्सृष्टसलिलम्, त्वां=भवन्तम्,

अवश्यं = नूनम्, यन्त्रधारागृहत्वं = कृत्रिमधाराभवनत्वम्, नेष्यन्ति = प्रापयिष्यन्ति, सखे = मित्र, घर्मलब्धस्य = निदाघप्राप्तस्य, तव = ते, यदि = चेत्, ताभ्यः = सुरयुवतिभ्यः, मोक्ष न स्यात् = मुक्तिः न भवेत्, क्रीडालोलाः = केलिचञ्चलाः, ताः = देवाङ्गनाः, श्रवणपरुषैः = श्रुतिकठोरैः, गर्जितैः = स्तनितैः, भाययेः = त्रासयेः । स्वभावोक्तिरलङ्कारः । मन्दाक्रान्ता वृत्तम् ॥६५ ।

आलोक

तत्र—तद् + त्रल् । वलयकुलिशोदघट्टनोद्गीर्णतोयम्—वलयानां कुलिशानि वलयकुलिशानि (षष्ठी तत्पुरुष) । वलयकुलिशैः उदघट्टनानि वलयकुलिशोद्घट्टनानि (तृतीया तत्पुरुष) । वलयकुलिशोद्घट्नैः उदगीर्णं तोयं येन सः, तम् (बहुव्रीहि) । 'स्यात् कुलिश भिदुरं पविः'—अमरकोश । उदघट्टनम्—उत् + घट्ट + ल्युट् । उद्गीर्णम्—उत् + गॄ + क्त । अम्भोऽर्णस्तोयपानीयनीरक्षीराम्बुशंवरम्' —अमरकोश । नेष्यन्ति—नी धातु लृट्लकार प्र०पु० व०व० । सुरयुवतयः—सुराणां युवतयः (षष्ठी तत्पुरुष) । युवतिः—युवन् + ति । यन्त्रधारागृहत्वम्—यन्त्रधाराणां गृहत्वं यन्त्रधारागृहत्वम् (षष्ठी तत्पुरुष) । यन्त्रधाराः—यन्त्रेपु धाराः यन्त्रधाराः । गृहत्वम्—गृह + त्वल् । 'गृहं गेहोदवसितं वेश्मसद्मनिकेतनम्'- अमरकोश । ताभ्यः—यहाँ अपादान में पञ्चमी हुई है । घर्मलब्धस्य—घर्मे लब्धः धर्मलब्धः, तस्य (सप्तमी तत्पुरुष) । क्रीडालोलाः-क्रीडायां लोलाः क्रीडालोलाः,ताः (सप्तमी तत्पुरुष)। यहाँ केलि की व्यञ्जना है। केलि का लक्षण- विहारे सह कान्तेन क्रीडितं केलिरुच्यते । श्रवणपरुषैः श्रवणयोः परुषाणि श्रवण-परुषाणि, तैः (सप्तमी तत्पुरुष) । गर्जितैः—गर्ज + क्त । भाययेः—भी + णिच् + विधिलिङ् म० पु० ए० व० । यक्ष का कथन है कि धूप से सन्तप्त सुर-सुन्दरियाँ अपने कङ्कनों के अग्रभाग से तुम्हें फव्वारा बनाकर वहाँ केलि करेंगी । यदि आप को उनसे ऐसे वैसे छुटकारा न मिले तो उन मुग्धा देवाङ्गनाओं को अपनी गर्जनों के द्वारा भयभीत कर देना तथा स्वयं वहां से आगे की ओर प्रस्थान कर देना । यहाँ देवाङ्गनाओं के विलास की व्यञ्जना हो रही है । सुरसुन्दरियों तथा मेघ के स्वाभाविक विलासों एवं कार्यों के

चित्रण होने से यहाँ स्वभावोक्ति अलङ्कार है । प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति तथा मन्दाक्रान्ता छन्द है ॥६५॥

प्रसङ्ग—यक्ष कहता है कि हे मेघ ! तुम सुवर्ण कमलों को जन्म देने वाले मानसरोवर के सुन्दर सलिल को ग्रहण करते हुये ऐरावत के मुख पर वस्त्रावेष्टन के आनन्द को देते हुये कल्पवृक्ष के किसलयों को सूक्ष्म वस्त्रों के समान पवन के द्वारा हिलाते हुए इस प्रकार अनेक चेष्टाओं वाली विविध क्रीड़ाओं के द्वारा उस कैलास पर्वत का उन्मुक्त होकर उपभोग करना—

हेमाम्भोजप्रसवि सलिलं मानसस्याददानः
कुर्वन्कामं क्षणमुखपटप्रीतिमैरावतस्य ।
धुन्वन्कल्पद्रुमकिसलयान्यंशुकानीव वातै—
र्नानाचेष्टैर्जलदललितैर्निर्विशेस्तं नगेन्द्रम् ॥६६॥

पदच्छेद :—हेमाम्भोजप्रसवि सलिलं मानसस्य आददानः कुर्वन् कामं क्षण-मुखपटप्रीतिम् ऐरावतस्य । धुन्वन् कल्पद्रुमकिसलयानि अंशुकानि इव वातैः नानाचेष्टैः जलदललितैः निर्विशेः तं नगेन्द्रम् ॥६६॥

अन्वय :—जलद ! हेमाम्भोजप्रसवि मानसस्य सलिलम् आददानः ऐरावतस्य क्षणमुखपटप्रीतिं कुर्वन् कल्पद्रुमकिसलयानि अंशुकानि इव वातैः धुन्वन् नानाचेष्टैः ललितैः तं नगेन्द्रं कामं निर्विशेः ॥६६॥

शब्दार्थ—जलद = हे मेघ, हेमाम्भोजप्रसवि = सुवर्ण-कमलों को उत्पन्न करने वाले, मानसस्य = मानसरोवर के, सलिलम् = जल को, आददानः = लेते हुये, ऐरावतस्य = ऐरावत को, क्षणमुखपटप्रीतिम् कुर्वन् = क्षण भर के लिये मुख पर वस्त्र का आनन्द देते हुये, कल्पद्रुमकिसलयानि = कल्पवृक्ष के किसलयों को, अंशुकानि इव = सूक्ष्म वस्त्रों के समान, वातैः = वायु के द्वारा, धुन्वन् = हिलाते हुये, नानाचेष्टैः = अनेक चेष्टाओं वाली, ललितैः = ललितों (क्रीड़ाओं) के द्वारा, तम् = उस, नगेन्द्रम् = पर्वतराज का, कामम् = यथेच्छ, निर्विशेः = उपभोग करना ॥६६॥

हिन्दी अनुवाद—हे मेघ ! स्वर्णकमलों को उत्पन्न करने वाले मानसरोवर

के जल को लेते (पीते) हुये ऐरावत को क्षण भर के लिये मुख पर वस्त्र का आनन्द देते हुये, कल्पवृक्षों के किसलयों को सूक्ष्म वस्त्र के समान हवाओं के द्वारा हिलाते हुये अनेक प्रकार की चेष्टाओं वाले ललितों [क्रीड़ाओं] के द्वारा उस पर्वतराज (कैलास] का यथेच्छ उपभोग करना ॥६६॥

संस्कृत व्याख्या :—जलद=हे मेघ, हेमाम्भोजप्रसवि=स्वर्णकमलोत्पादकम्, मानसस्य=मानसरोवरस्य, सलिलं=जलम्, आददानः=गृह्णन्, ऐरावतस्य=इन्द्रगजस्य, क्षणमुखपटप्रीतिं=मुहूर्त्तलपनवसनप्रणयम्, कुर्वन्=विदधत, कल्पद्रुमकिसलयानि=कल्पपादपपल्लवानि, वातैः=पवनैः धुन्वन्=कम्पयन्, नानाचेष्टैः=अनेकव्यापारैः, ललितैः=विलासैः, तं=पूर्वोक्तम्, नगेन्द्रं=पर्वतराजम्, कामं=यथेष्टम्, निर्विशेः=समुपमुङ्क्ष्व । उत्प्रेक्षालङ्कारः । मन्दाक्रान्ता वृत्तम् ॥६६॥

आलोक

हेमाम्भोजप्रसवि—हेम्नः अम्भोजानि हेमाम्भोजानि, हेमाम्भोजानां प्रसवि, तत् (षष्ठी तत्पुरुष) । अम्भोजम्—अम्भसि जातम्–अम्भस्+जन्+ड (उपपद समास) । यहाँ 'सप्तम्यां जनेर्डः' से ड प्रत्यय हुआ है । प्रसवि—प्रसूते इति–प्र+सू+इनि, यहाँ 'जिदृक्षिविश्रीण्वमाव्यथाभ्यमपरिभूप्रसूभ्यश्च' इस सूत्र से इनि प्रत्यय हुआ है । 'प्रसवो जननाऽनुज्ञापुत्रेषु फलपुष्पयोः'—यादवकोश । सलिलम्—'सलिलं कमलं जलम्'—अमरकोश । आददानः—आङ्+दा+शानच् । कुर्वन्—कृ+शतृ । क्षणमुखपटप्रीतिम्-पटेन प्रीतिः पटप्रीतिः (तृतीया तत्पुरुष), मुखे पटप्रीतिः मुखपटप्रीतिः (सप्तमी तत्पुरुष), क्षणे मुखपटप्रीतिः, ताम् (सप्तमी तत्पुरुष) । 'आननं लपनं मुखम्'—अमरकोश । प्रीतिः—प्री+क्तिन् । ऐरावतस्य—इरा=जलम् अस्ति अस्मिन् स इरावान्—इरा+मतुप् । इरावति=अब्धौ भवः इस अर्थ में 'तत्र भवः' इस सूत्र से अण् प्रत्यय का विधान होता है । 'ऐरावतोऽभ्रमातङ्गे नारङ्गे लकुचद्रुमे । नागभेदे च पुंसि स्याद्विद्युत्तद्भेदयोः स्त्रियाम् ॥ नपुंसकं महेन्द्रस्य ऋजुदीर्घशरासने'—मेदिनीकोश । धुन्वन्—धुनोतीति–धु+शतृ । कल्पद्रुमकिसलयानि—कल्पद्रुमाणां किसलयानि कल्पद्रुमकिसलयानि (षष्ठी